TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL LIBRARY
OU_186102
UNIVERSAL LIBRARY

कनु को

वक्तव्य

नयी कविता पर काम करने के बाद जब मैंने घनानन्द पर काम करना शुरू किया तो कुछ अजीब-अजीब लगा, लेकिन घनानन्द की कविता पढ़ने के दौरान मेरा यह अनुभव पक्का होता गया कि दरअसल कविता का कवितापन, चाहे वह किसी भी युग का क्यों न रहा हो, ज्यादा महत्त्वपूर्ण होता है। कवितापन देश-काल की सीमाओं से आबद्ध नहीं होता, बल्कि वह घनानन्द की कविता की तरह से मुक्त और सहज होता है। इसी बात के अहसास ने मुझे घनानन्द के काव्य को समझने का अवसर दिया।

'नयी कविता में मूल्य बोध' में मैंने नयी कविता में मूल्य-प्रक्रिया को समझने की कोशिश की थी जबकि घनानन्द के काव्य को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने का प्रयास है। फिर नयी कविता को लेकर एक विशिष्ट समय की सम्पूर्ण काव्यधारा का विवेचन था तो इसमें मात्र एक कवि के काव्य-संसार को नए सिरे से समझने की कोशिश है।

मैं यह नहीं कहूँगी कि घनानन्द पर पहले कोई काम हुआ ही नहीं। काम हुआ है और अच्छा हुआ है। वह सब मेरे लिए उपयोगी भी रहा है इसके लिए उन विद्वत्-जनों का आभार। अपने इस अध्ययन में मैंने कोशिश यही की है कि विभिन्न स्तरों के पाठकों के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध हो सके। ऐसा हुआ तो अपना परिश्रम सफल मानूँगी।

हिन्दी विभाग,
माता सुन्दरी कॉलिज,
(दिल्ली विश्वविद्यालय)

शशि सहगल

विषय-सूची

जीवन वृत्त और रचनाएं : ११

रीतिमुक्त काव्यधारा : १६

घनानन्द की प्रेमाभिव्यंजना : ४८

घनानन्द और रूप-सौन्दर्य : ७१

घनानन्द और शृंगार-वर्णन : ९६

घनानन्द का विरह-वर्णन : १२५

घनानन्द और भक्ति : १७३

घनानन्द और काव्य-शिल्प : १९९

उपसंहार : २२१

१ | जीवन वृत्त और रचनाएं

रीतिकाल की तीन प्रमुख काव्यधाराओं—रीति-बद्ध, रीति-सिद्ध और रीति-मुक्त में घनानन्द अंतिम काव्यधारा के अग्रणी कवि हैं। रीतिबद्ध काव्य के प्रणेताओं के लिए आवश्यक शर्त यह थी कि उन्हें ग्रन्थ रचना के नियमों से बंधा और जकड़ा रहना पड़ता था। अपने हृदय की स्वच्छन्द भावनाओं को वे लक्षणानुसार जकड़ देते थे। जैसे केशवदास दूसरी कोटि के कवि अर्थात् रीतिसिद्ध कवियों के लिये इस प्रकार की कोई आवश्यक शर्त न थी कि उन्हें रीतिग्रन्थ ही लिखना है—परन्तु वे कवि भी स्वतंत्र भावाभिव्यक्ति के लिए उन्मुक्त न थे। यह कवि लक्षणबद्ध ग्रंथों की रचना नहीं करते थे, परन्तु इनकी काव्य रचना में रीति का पूरा-पूरा प्रभाव था जैसे बिहारी, रसनिधि इत्यादि। यह कवि रीतिबद्ध काव्य रचना के मार्ग पर नहीं चलते थे—पर उसी मार्ग के साथ-साथ ही इनको चलना पड़ता था। फलतः इनकी काव्य रचना में वे नियम कुछ शिथिल थे, जिन्हें रीतिबद्ध कवियों ने प्राणपन से अपना रखा था। तीसरे प्रकार के कवि वे थे जो न तो रीतिबद्ध थे न रीतिसिद्ध अर्थात् वे रीतिमुक्त कवि थे—जिन्हें 'रीति' के नाम से ही घृणा थी—वे रीति की छाया मात्र से भी दूर भागते थे। अपने हृदय की उमंगपूर्ण, स्वानुभूत भावनाओं को इन कवियों ने उसी रूप में अभिव्यक्त किया जैसी उनकी अनुभूति थी। फलतः अपनी स्वच्छंद वृत्ति के कारण यह कवि रीतिमुक्त कवि कहलाए। घनानन्द, बोधा, ठाकुर आदि कवि इसी धारा के सितारे हैं।

घनानन्द का जीवन-वृत्त

हिन्दी साहित्य के प्रथम तीन कालों अर्थात् आदिकाल, भक्तिकाल और रीति-काल के प्रमुख कवियों के जीवन के विषय में शायद ही कुछ ऐसा हो, जिसे दृढ़ता से कहा जा सके। लगभग इन कालों के सभी कवियों ने अपने विषय में बहुत कम लिखा है। इसे हिन्दी साहित्य का दुर्भाग्य कहा जा सकता है कि उसके जाज्वल्यमान नक्षत्रों का जीवन अस्पष्ट और अंधकारमय है। आदिकाल के 'चंद कवि' को लें या 'नरपति नाल्ह' को किसी का भी जीवन परिचय पूरा नहीं मिलता। इस काल के पश्चात् यदि

भक्तिकाल की ओर दृष्टि की जाय तो वहाँ भी यही निराशा होती है। कबीर हो या सूर अथवा तुलसी सभी कवियों ने अपने विषय में इतना कम लिखा है कि वे उनके जीवन पर पूर्ण प्रकाश डालने में असमर्थ हैं। इसी प्रकार रीतिकाल की रीतिमुक्त काव्य धारा के कवि घनानन्द भी अपवाद नहीं। उनका प्रेमवत्सल हृदय अपने प्रेमी की महिमा का वर्णन करने में ही मग्न रहता था, अपने लिए कुछ लिखने का उनके पास अवकाश ही कहाँ रहा होगा ?

'नाम' के विषय में विवाद

घनानन्द कब हुए, कहाँ हुए, यह सब लिखने से पूर्व यह आवश्यक हो जाता है कि उनका असली नाम क्या था—यह जान लिया जाय। वास्तव में हिन्दी साहित्य में केवल एक ही घनानन्द नहीं हुए, इस नाम के अन्य कवि भी मिलते हैं। इसी से स्वच्छंद काव्यधारा के घनानन्द के नाम की प्रामाणिकता का प्रश्न हमारे सामने उपस्थित होता है। इस विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। घनानन्द, आनन्द घन और आनन्द—इन तीन नामों में विवाद है कि आलोच्य घनानन्द वास्तव कौन में से हैं ?

घनानन्द के नामकरण पर यदि शोध किया जाय तो ज्ञात होगा कि विद्वानों की एक लम्बी कड़ी है जो इस विषय पर विभिन्न प्रकार से प्रकाश डालती है। वे विद्वान हैं डॉ० ग्रियर्सन, अयोध्या सिंह उपाध्याय, हरिऔध, श्री क्षतिमोहन सेन, डॉ० श्यामसुन्दर दास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी इत्यादि।

डॉ० ग्रियर्सन ने 'आनन्द' को ही रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि घनानन्द माना है। उनके मत में 'घन' शब्द आनन्द के साथ नहीं, पर वे 'आनन्द' ही घनानन्द हैं। परन्तु अत्याधुनिक शोध ने यह सिद्ध कर दिया है कि 'आनन्द' एक स्वतंत्र कवि थे, जिन्होंने 'कोकमंजरी' काव्य की रचना की थी—

कायथ कुल आनन्द कवि बासी कोट हिसार।
कोककला इहि रुचि करन जिन यह कियो बिचार ॥

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के मत में भी ग्रियर्सन वाले 'आनन्द' घनानन्द नहीं है, क्योंकि दोनों के रचना काल में लगभग चालीस वर्षों का अंतर है।

घनानन्द के नामकरण के संबंध में दूसरा मुख्य विवाद 'आनन्द-घन' नाम को लेकर है। 'आनन्द-घन' के तीन व्यक्ति मिलते हैं—

१. जैन धर्मी घन आनन्द
२. वृन्दावन के आनन्दघन
३. नंदगाँव के आनन्दघन

श्री क्षितिमोहन सेन ने नवम्बर सन् १९३८ में 'वीणा' में 'जैन-धर्मी' आनन्दघन शीर्षक के एक लेख में वृन्दावन के आनन्द-घन और जैन धर्मी घनआनन्द—दोनों एक ही व्यक्ति के नाम होने की सम्भावना प्रकट की है। श्रीमति ज्ञानदेवी त्रिवेदी ने भी दोनों को एक ही व्यक्ति माना है किन्तु आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपनी पुस्तक 'घनानंद और आनन्दघन' की भूमिका में इस विवाद को समाप्त करते हुए यह सिद्ध

किया है कि जैनधर्मी घनानन्द और वृन्दावन के आनन्दघन दोनों एक व्यक्ति नहीं थे—भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे। इस मत की पुष्टि उन्होंने इस तर्क द्वारा की है कि दोनों व्यक्तियों के काव्य रचना काल का समय एक नहीं और न ही उनके काव्य में कोई समानता ही है। मिश्र जी ने दोनों व्यक्तियों के काल में कम से कम सौ वर्ष का अन्तर माना है। जैन धर्मी घनआनन्द का समय विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। इनकी रचनाओं में 'प्रीति विमल' सं० १६७१ 'समय सुन्दर' सं० १६७२ तथा जिनराज सूरी सं० १६७८ के 'जिनस्तवन' की अनेक पंक्तियाँ मिलतीं हैं। श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने जो सौ वर्ष का अन्तर माना है। वह सम्भवतः इसी कारण है कि वृन्दावनवासी 'आनन्द घन' का समय विक्रम की १८वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ठहरता है।

जैन धर्मी 'घनआनन्द' और वृन्दावन के 'आनन्दघन' के पश्चात् तीसरा नाम शेष रहता है और वह है नंदगाँव के आनन्दघन। इनका समय श्री चैतन्य महाप्रभु का है अर्थात् यह महाप्रभु के समसामयिक कवि ठहरते हैं, जिनकी सं० १५५३ में महाप्रभु से भेंट भी हुई थी और इनके वंशज आज भी मथुरा के निकटवर्ती 'खरोट' गाँव में मिलते हैं। रीतिमुक्त काव्यधारा के घनानन्द के समय में और नंदगांव के आनंदघन में लगभग दो सौ वर्षों का अन्तर है। रीतिमुक्त घनानन्द का समय १८वीं श० है और नंदगाँव के आनन्दघन का समय १६वीं शताब्दी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिमुक्त घनानन्द का समय सं० १७४६ से १७९६ तक माना है। इस प्रकार आलोच्य घनानन्द वृन्दावन के आनन्दघन हैं। शुक्ल जी के विचार में यह नादिरशाह के आक्रमण के समय मारे गये। श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत भी इनसे मिलता है। लगता है कवि का मूल नाम आनन्दघन ही रहा होगा, परन्तु छंदात्मक लय विधान इत्यादि के कारण यह स्वयं ही आनन्दघन से घनानन्द हो गये। हिन्दी साहित्य में यह अपवाद नहीं, क्योंकि पुष्टिमार्ग के जहाज सूरदास के भी सूर, सूरजदास, सूरजश्याम और सूरज आदि नाम मिलते हैं।

जन्म-तिथि व जन्म-स्थान

घनानन्द के जीवन के लगभग सभी महत्त्वपूर्ण तथ्य विवादास्पद हैं। जैसे नाम, जन्म-स्थान, रचनाएं, जन्म-तिथि इत्यादि। इनकी जन्म-तिथि के सम्बन्ध में भी विद्वानों की विभिन्न मान्यताएँ हैं। लाला भगवानदीन के घनानन्द का जन्म सम्वत् १७१५ माना है, परन्तु शुक्ल जी ने इस जन्म सम्वत् को न मानकर सं० १७४६ में इनका जन्म माना है। इसी प्रकार अन्य आलोचकों ने इनकी जन्म-तिथि के विषय में अपने मत दिये हैं, परन्तु मजेदार बात यह है कि इनकी जन्म-तिथि का अभी तक कुछ पता नहीं चला है—केवल सम्वत् के विषय में विवाद है। अतः हम केवल जन्म के सम्वत् के विषय में ही लिख सकते हैं—जन्म-तिथि अतीत के अन्धकार में पूर्णतः लुप्त हो चुकी है। विभिन्न आलोचकों के मतों की आलोचना करने के पश्चात् डॉ० मनोहरलाल गौड़ ने अपनी पुस्तक 'घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा' में लिखा है—"सम्वत् १७३० में इनका

जन्म मान लेने पर दीक्षा के समय २६ या २९ वर्ष के ये होते हैं जो इनके जीवन-वृत्त को देखकर ठीक प्रतीत होता है।"

जन्म-तिथि की ही भाँति घनानन्द के जन्म-स्थान का विषय भी विवाद की वस्तु बना हुआ है। कुछ आलोचक इन्हें हिसार-निवासी मानते हैं तो अन्य इन्हें बुलन्दशहर का मानते हैं। अधिकांश विद्वान घनानन्द का जन्म दिल्ली और उसके आस-पास का होना मानते हैं। जगन्नाथदास रत्नाकर ने इन्हें बुलन्दशहर का निवासी माना है और श्री बहुगुणा के विचार में यह कोट-हिसार के रहने वाले थे। घनानन्द के काव्य में कहीं भी इसका संकेत नहीं मिलता कि यह कहाँ के रहने वाले थे? यह भटनागर कायस्थ थे और दिल्ली छोड़कर वृन्दावन चले गये थे—इस बात को सभी आलोचकों ने स्वीकार किया है। इन्होंने अपने काव्य में ब्रज और वृन्दावन का वर्णन जिस सजीवता के साथ किया है। उसे पढ़कर यह अवश्य लगता है कि इनका अधिकांश जीवन यहीं बीता अन्यथा उनके काव्य में (ब्रज-संस्कृति) इतना सुन्दर ब्रज का चित्रण न मिलता। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सुजान की बेवफाई के कारण ही यह वृंदावन गये होंगे।

घनानन्द और सुजान

घनानन्द के काव्य में 'सुजान' का ही वर्णन मिलता है—पर यह सुजान कौन थी? इसका विवेचन भी आवश्यक हो जाता है। घनानन्द मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में खास-कलम (प्राईवेट सैक्रेटरी) थे। अरबी-फारसी में माहिर थे—एक तो कवि और दूसरा सरस गायक। प्रतिभा सम्पन्न होने कारण बादशाह का इन पर विशेष अनुग्रह था। मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार की एक नृत्य-गायन-विद्या में निपुण सुजान नामक वेश्या से इनका प्रेम हो गया। इधर सुजान की इन पर अनुरक्ति और दूसरी ओर बादशाह के खास-कलम, इन दोनों बातों से—घनानन्द की उन्नति से सभी दरबारी मन-ही-मन ईर्ष्या करते थे। अन्ततः उन्होंने एक ऐसा षड्यन्त्र रचा जिसमें घनानन्द पूरी तरह से लुट गये। दरबारी लोगों ने मुहम्मदशाह रंगीले से कहा कि घनानन्द बहुत अच्छा गाते हैं। उनकी बात मानकर बादशाह ने एक दिन इन्हें गाने के लिए कहा, पर ये इतने स्वाभिमानी और मनमौजी व्यक्ति थे कि गाना गाने से इन्कार कर दिया। दरबारी लोगों को इस बात का पता था कि बादशाह के कहने से यह कभी गाना नहीं गायेंगे और हुआ भी वही। दरबारी लोग इसी घड़ी की तो प्रतीक्षा कर रहे थे उन्होंने बादशाह से कहा कि यदि सुजान को बुलाया जाय और घनानन्द से अनुरोध करे तो ये अवश्य गाना गायेंगे और यह हुआ भी। बादशाह की आज्ञा से सुजान वेश्या दरबार में बुलाई गई और उसके कहने पर घनानन्द ने गाना सुनाया—सुजान की ओर मुंह कर के और बादशाह की ओर पीठ करके परन्तु इतनी तन्मयता से गाना सुनाया कि बादशाह और सभी दरबारी मन्त्र-मुग्ध हो गये। परन्तु बादशाह जितने ही आनन्द विभोर गाना सुनते समय हुए थे उतने ही कुपित गाना समाप्त होने के बाद हुए। यह उनकी बेअदबी थी कि सूजान का कहा उनसे बढ़कर हो गया। फलतः क्रोधित होकर उन्होंने तत्काल

घनानन्द को दरबार व राज्य छोड़ने का आदेश दिया। दरबारियों की चाहत पूर्ण हो चुकी थी। घनानन्द ने चलते समय सुजान से साथ चलने का आग्रह किया, परन्तु उसने अपने जातीय गुण की रक्षा की और घनानन्द के साथ जाना अस्वीकार कर दिया। जान और जहान दोनों ही लुटा कर घनानन्द ने वृन्दावन की ओर मुख किया। जीवन से इन्हें पूर्ण विरक्ति हो चुकी थी। वृन्दावन में उन्होंने निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षा ली। इस सम्बन्ध में श्री शम्भुप्रसाद बहुगुणा ने लिखा है—"जीवन की विरक्ति उनके लिए प्रेमपूर्ण राधा-कृष्ण के चरणों की अनुरक्ति बन गई। मरते दम तक वे सुजान को नहीं भूल पाये। राधा-कृष्ण को उन्होंने सुजान की स्मृति बना दिया और निरन्तर सुजान के प्रेम में आँसुओं के स्वरों में ये गीत, कवित्त-सवैये लिखते रहे।" **डा० श्रीराम अवध द्विवेदी** ने लिखा है कि किसी साधारण बात से अप्रसन्न होकर उन्हें देश निकाला दे दिया गया था और इस अपमान जन्य 'भावना' के वशीभूत होकर वे वृन्दावन चले गये—और मृत्यु-पर्यन्त वहीं रहे। लाला भगवानदीन ने सुजान नामक वेश्या के प्रति घनानन्द की अनुरक्ति का खण्डन करते हुए लिखा है—सुजान की इनके प्रति विरक्ति इनके भक्त होने कारण नहीं थी अपितु ये स्वयं 'भगवान कृष्ण' के प्रति अनुरक्त होकर वृन्दावन में जाकर कृष्ण की उपासना में लग गये थे और अपने परिवार का मोह भी इन्होंने उस भक्ति के कारण त्याग दिया था। परन्तु अधिकांश विद्वानों ने घनानन्द का सुजान से प्रेम, बादशाह रंगीले द्वारा देश निकाला और सुजान के तिरस्कार को सत्य माना है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि घनानन्द के जीवन का अन्तिम समय वृन्दावन में बीता।

मृत्यु

घनानन्द की मृत्यु-तिथि भी उनकी जन्म-तिथि के समान ही विवादास्पद है। इस सम्बन्ध में पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के शोधपूर्ण तर्क एवं प्रमाणपूर्ण निष्कर्ष मान्य हैं। अन्य आलोचकों ने माना है कि घनानन्द की मृत्यु नादिरशाह के आक्रमण के समय हुई थी, परन्तु विश्वनाथप्रसाद मिश्र जी के मत से उनकी मृत्यु नादिरशाह के आक्रमण में न होकर अहमदशाह अब्दाली के मथुरा पर किये गये द्वितीय आक्रमण में सं० १८१७ (सन् १६७१) में हुई थी। इतिहास साक्षी है सं० १७६६ में नादिरशाह ने मथुरा पर नहीं, दिल्ली पर आक्रमण किया था, जबकि अहदमशाह अब्दाली ने मथुरा पर पहला आक्रमण सं० १८१३ में और दूसरा आक्रमण सं० १८१७ में किया था, इन दोनों आक्रमणों का वर्णन हमें चाचा वृन्दावन दास कृत 'हरिकला वेलि' में मिलता है—

ठारह सै सत्रहों वर्ष गत जानियै।
साढ़ वदी हरिबासर बेल बखानियै॥

बताया गया है कि इन आक्रमणों में मुगलों ने अनेक महान् हस्तियों, सन्तों का वध कर डाला था। सं० १८१७ में चाचा हितवृन्दावनदास जी ने घनानन्द का शव अपनी आँखों से देखा और उनके शव पर दुखी होते हुए इस प्रकार उसका वर्णन किया—

विरह सौं तायो तन निबाह्यो गत सांचोपन,
धन्य आनन्दघन मुख गाई सोई करी है।
एहो ब्रजराज कुँवर धन्य-धन्य तुमहूँ को,
कहा नीकी प्रभु यह जंग में बिस्तरी है।
गाढ़ो ब्रज उपासी जिन देह अन्त पूरी पारी
रज की अभिलाष सौं तहाँ ही देह धरी है॥
वृन्दावन हित रूप तुमहू हरि उड़ाई धूरि,
ऐ पै सांची निष्ठा जन ही की लखि परी है।

घनानन्द की अभिलाषा थी कि वे ब्रज रज में लोटते हुए ही अपने प्राण दें और उनकी यह इच्छा भगवान कृष्ण ने पूरी कर दी। इस बात की पुष्टि 'राधा-कृष्ण ग्रन्थावली' में एक स्थान पर मिलती है—"सुना है मथुरा में कत्लेआम करने वालों से उन्होंने कहा कि मुझे तलवार के घाव थोड़ी-थोड़ी देर तक दो। इनको ज्यों-ज्यों तलवार के घाव लगते गये, त्यों-त्यों यह ब्रजराज में लोटते रहे, ऐसे देह त्याग दी।"

सम्प्रदाय

घनानन्द प्रेमी होने के साथ-साथ एक उच्च कोटि के भक्त भी थे। सम्भवत: यह भक्ति उनके जीवन के उत्तरकाल में परिस्थितिवश आई थी। सुजान के प्रति प्रेम, सुजान का तिरस्कार यह दो बातें उनके जीवन की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटनाएँ रहीं। उनके काव्य में यत्र-तत्र वैराग्य का भाव पाया जाता है। वे स्वयं लिखते हैं—

'सब ओर तें ऐंचि कै कान्ह किसोर में
राखि भलो फिर आस करै'

अब देखना यह है कि भक्त घनानन्द किस सम्प्रदाय से सम्बन्धित रहे हैं और कहाँ उन्होंने दीक्षा ली? घनानन्द के काव्य के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि वे निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित थे। उनके ग्रन्थ 'परमहंस-वंशावली' में उन्होंने अपने गुरु की परम्परा का वर्णन किया है। निम्बार्क सम्प्रदाय में प्रेम-लक्षण अनुरागात्मिकता परमभक्ति को सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया गया है। घनानन्द की भक्ति पर इस सम्प्रदाय की अर्थात् गोपी या सखी भाव की पूर्ण छाप परिलक्षित होती है। इस सम्प्रदाय में दीक्षित होकर घनानन्द अपनी भक्ति साधना की चरम सीमा तक पहुँच गए थे। श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने अपनी पुस्तक 'घनानन्द ग्रन्थावली' की भूमिका में एक स्थल पर कहा है—"प्रेम साधना का अत्यधिक पथ पार कर वे बड़े-बड़े साधकों, सिद्धों को पीछे छोड़कर 'सुजानों' की कोटि में पहुँच गये थे। अत: सम्प्रदाय में उनका सखी भाव का नामकरण हो गया था।" यहाँ यह बात देना भी आवश्यक हो जाता है कि निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षा लेने पर भक्त को 'सखी नाम' लेना पड़ता है। अत: घनानन्द का भी सखी नाम रखा गया—और वह था—'बहुगुनी'। घनानन्द के साहित्य में कई कृतियों में इस नाम का वर्णन मिलता है, जहाँ कवि ने घनानन्द के स्थान पर 'बहुगुनी' नाम से लिखा है। जैसे—

नीको नांव बहुगुनी मेरो । बरसाने ही सुन्दर खेरो ।।
राधा नांव बहुगुनी राख्यो । सोई अरथ हिये अभिलाख्यो ।।
रीझनि बिबस होत जब जानी । तब बहुगुनी कला उर आनौ ।।
ताहि सुरहि साथ कछु बोलौं । प्रेम लपेटि गासनि खोलौं ।।
बुरी बात हुँ उप्परि परै जब । सो सुख कह्यौ न परत कछू तब ।।

—वृषभानुपुर-सुषमा-वर्णन

इसी प्रकार 'प्रिया-प्रसाद' पुस्तक में भी उनके 'बहुगुनी' सखी नाम का पता चलता है ।

राधा धरयौ बहुगुनी नाऊं । हरि लीन रह्यो बुलाए जाऊं ।।
... ...

राधा अचल सुहाग के ललित रंगीले गीत ।
रागनी-भीजी बहुगुनी रिझवति राधा मीत ।। —प्रिया-प्रसाद

घनानन्द की रचनाएं

घनानन्द ने सर्वप्रथम कौन सी रचना की अथवा शोध कर्त्ताओं की दृष्टि उनकी किस कृति पर सर्वप्रथम पड़ी—यहाँ अत्यन्त गड़बड़ झाला है। कुछ आलोचन घनानन्द की सर्वप्रथम रचना जो प्रकाश में आई वह 'घनानन्द-कवित्त' मानते हैं, जिसका संकलन 'ब्रजनाथ' ने किया और कुछ अन्य अनुसधाता इनकी सरस रचनाओं के सर्वप्रथम संग्रह का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा प्रकाशित 'सुजान-शतक' को देते हैं । इस संग्रह में कवित्त, सवैया, छप्पय मिलाकर कुल सौ से अधिक छंद हैं । घनानन्द की कृतियों की सर्वप्रथम विस्तृत सूचना मिश्र बन्धुओं ने दी है। उनके अनुसार—

"इन्होंने सुजान सागर, कोक सागर, घनानन्द-कवित्त, रसकेलि वल्ली और कृपाकाण्ड निबन्ध नामक ग्रन्थ बनाये जो खोज में मिले हैं । सरदार कवि ने आपके संग्रह में इनके प्राय: डेढ़ सौ छन्द लिखे और इनके ४२५ छन्दों का स्फुट संग्रह हमने देखा है । इसके अतिरिक्त हमको इनका ५४२ बड़े पृष्ठों का एक भारी ग्रन्थ स० १८८२ का लिखा हुआ देखा छतरपुर के पुस्तकालय में देखने को मिला, जिसमें १८११ विविध छन्दों तथा १०४४ पदों द्वारा निम्नलिखित विषय वर्णित हैं—शिवप्रसाद, ब्रज-त्यौहार, वियोग-बेलि, कृपाकन्द, निबन्ध, गिरिगाथा, भावना प्रकाश, गोकुल विनोद, ब्रजप्रसाद, धाम-चमत्कार, कृष्ण-कौमुदी, नाम माधुरी, वृन्दावन-मुद्रा, मुरलिका मोद, प्रेम-पत्रिका, ब्रज वर्णन, रस-बसन्त, अनुभव-चन्द्रिका, रंग-बधाई; परमहंस वशावली और पद । इन पदों की रचना साधारण है और उनमें भक्ति तथा ब्रजलीलाओं का वर्णन किया गया है । दूसरे वर्णन विविध छन्दों में किये गये हैं जिनमें कवित्त और सवैयों की अधिकता है। इनमें कथित विषयों का ज्ञान उनके नाम से ही प्रकट होता है।"

मिश्र बन्धुओं द्वारा दी गई घनानन्द की कृतियों की लम्बी सूची के पश्चात् परवर्ती आलोचकों ने इसी को आधार बनाकर घनानन्द की कृतियों का विस्तृत उल्लेख किया । इन आलोचकों की एक लम्बी श्रेणी हमें प्राप्त हुई है । उनमें से कुछ विद्वान

हैं—हरिऔध, रामचन्द्र शुक्ल, श्याम बिहारी वैरागी, शम्भूनाथ बहुगुणा, डा० भागीरथ मिश्र, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र और डा० मनोहर लाल गौड़ इत्यादि । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में दी हुई सूचना मिश्र बन्धु विनोद के आधार पर हैं। मिश्र बन्धुओं द्वारा प्राप्त सूचना सभा की खोज रिपोर्टों और अन्य आलोचनात्मक शोध उनके व्यक्तिगत और संस्थागत पाण्डु-लिपियों की उपलब्धि के पश्चात् आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने घनानन्द की कृतियों की प्रामाणिकता को ध्यान में रखकर उन्हें 'घनानन्द-ग्रन्थावली' के नाम से प्रकाशित किया है । उनकी नामानुक्रमणिका इस प्रकार है—

१. सुजान हित
२. कृपाकन्द
३. वियोग बेलि
४. इश्क़ लता
५. यमुना यश
६. प्रीति पावस
७. प्रेम-पत्रिका
८ प्रेम-सरोवर
९. ब्रज-विलास
१०. सरस-वसन्त
११. अनुभव चन्द्रिका
१२. रंग-वधाई
१३. प्रेम-पद्धति
१४. वृषभानुपुर सुषमा वर्णन
१५. गोकुल गीत
१६. नाम माधुरी
१७. गिरिपुजन
१८. विचार-सार
१९. दान घटा
२०. भावना-प्रकाश
२१. कृष्ण-कौमुदी
२२. धाम चमत्कार
२३. प्रिया-प्रसाद
२४. वृन्दावन मुद्रा
२५. ब्रज स्वरूप
२६. गोकुल चरित्र
२७. प्रेम पहेली
२८. रसना-यश
२९. गोकुल विनोद
३०. ब्रजप्रसाद
३१. मुरलिका मोद
३२. मनोरथ मंजरी
३७. छन्दास्टक
३८. त्रिभंगी
३९. परमहंस वंशावली
३३. ब्रज व्यवहार
३४. गिरि गाथा
३५. पदावली
३६. प्रकीर्णक (स्फुट)

उपर्युक्त सूची देने के पश्चात् मिश्र जी ने लिखा है । घनानन्द की कुल ४१ कृतियां हैं । इन ३९ के पश्चात् जो दो कृतियाँ बचती हैं—'कवित्त संग्रह' और 'ब्रज-वर्णन' कवित्त संग्रह तो 'घनानन्द-कवित्त जान पड़ता है और ब्रज वर्णन, अभी अप्राप्य है । मिश्रजी का अनुमान है कि सम्भवत: 'ब्रज-वर्णन' उनकी 'ब्रज-स्वरूप' नामक कृति का ही दूसरा नाम हो । यदि यह अनुमान सत्य निकला तो घनानन्दजी की सभी कृतियों को उपलब्ध समझना चाहिए ।

घनानन्द ग्रन्थावली—वांङ्मुख श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

२ | रीतिमुक्त काव्यधारा

हिन्दी साहित्य के रीतिकाल का यदि अनुशीलन किया जाय तो ज्ञात होगा कि रीतिकाल में भी भक्तिकाल की भांति विभिन्न साहित्यिक धाराए प्रवाहित थीं। जैसे भक्तिकाल में निर्गुण, सगुण, प्रेमाश्रयी और ज्ञानाश्रयी शाखाए उपलब्ध होती हैं। ठीक वैसे ही रीतिकाल का साहित्य भी रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त काव्य-धाराओं में विभजित है। यह तीनों भेद रचना पद्धति के आधार पर किए गए हैं।

रीतिबद्ध काव्य

रीतिबद्ध काव्य के प्रणेता वे कवि थे जो लक्षणों और उदाहरणों से युक्त काव्य रचना किया करते थे। उनका समस्त काव्य लक्षणबद्ध है। इस सम्बन्ध में एक बहुत बड़ा विनाद है—और विवाद भी महाभट्ट आलोचकों के बीच। डा० नगेन्द्र इस प्रकार की रचनाओं को रीतिबद्ध कहने के पक्ष में नहीं हैं। ऐसे कवियों को उन्होंने रीतिकार या आचार्य कवि माना है। 'आचार्य कवि' से उनका आशय सम्भवतः यह है कि वे कवि जो काव्यशास्त्र की शिक्षा के लिए काव्यशास्त्रीय लक्षणों, तत्त्वों और नियमों के आधार पर कविता करते थे। उनका उद्देश्य काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का निरूपण करना नहीं था। परन्तु उन स्थापित सिद्धान्तों की सोदाहरण काव्यमयी व्याख्या करना होता था। डा० नगेन्द्र ने उन कवियों को रीतिबद्ध कवि माना है जिन्होंने 'रीतिग्रन्थों की रचना न करके काव्य सिद्धान्तों या लक्षणों के अनुसार रचना की है। अलंकार, रस, नायिका भेद उनके ध्यान में तो रहे है परन्तु उनका प्रत्यक्ष निरूपण इन कवियों ने नहीं किया, वरन् उनके अनुसार उत्कृष्ट काव्य का सृजन किया है। ऐसी दशा में वे मूलतः कवि हैं आचार्य नहीं। इसलिए उन्हें रीतिबद्ध कवि मानना चाहिए। दूसरी ओर आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने ऐसे कवियों को रीतिसिद्ध कवि माना है—रीतिबद्ध नहीं। इस धारा के प्रमुख कवि हैं—देव, मतिराम, भिखारीदास सेनापति, रसनिधि, चिन्तामणि, सोमनाथ, रसिक गोविन्द इत्यादि।

रीतिमुक्त काव्य

रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य धारा को लेकर विद्वानों में मतभेद रहा है।

परन्तु रीतिमुक्त काव्य का अर्थ एकदम सरल और सीधा है—इसका अर्थ है ऐसी काव्यधारा जो परम्परागत रूढ़ियों और काव्य-बन्धनों से मुक्त हो। इसके लिए हिन्दी साहित्य में दो नाम मिलते हैं—पहला तो 'रीतिमुक्त काव्यधारा' और दूसरा 'स्वच्छन्द काव्यधारा'। 'रीतिमुक्त' नाम विवाद रहित है—शब्द में ही अर्थ निहित है, परन्तु 'स्वच्छन्द काव्य धारा' में स्पष्ट करने के लिए अनेक बातें हैं। क्या रीतिकाल की स्वच्छन्द काव्य धारा का सम्बन्ध पश्चिम के 'रोमांटिक काव्य' से है? परन्तु इसके लिए विशेष पृष्ठभूमि हमें नहीं मिलती। श्री रामचन्द्र शुक्ल ने एक अन्य काव्य-धारा को भी 'स्वच्छन्द काव्यधारा' कहा है जिसमें श्रीधर पाठक, माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', हरिवंशराय बच्चन आदि को गिनाया है। ये सभी अपने समय की प्रचलित साहित्यिक मान्यताओं को त्यागकर भावनाओं के मुक्त क्षेत्र में विचरण करने वाले थे। किसी ने प्रकृति के मुक्त रूप को काव्य का विषय बनाया, तो दूसरों ने छायावादी सम्प्रदाय से अपनी काव्य-कला को अप्रभावित रखा। इसलिए शुक्लजी की दृष्टि में यह सभी कवि स्वन्छदतावादी थे।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास सम्पादक, डा० नगेन्द्र)। स्वच्छन्द-काव्य धारा के विषय में डा० मनमोहन लाल गौड़ का मत है "...इसीलिए हम छायावादी साहित्य को भी स्वच्छन्द काव्य धारा' कह लेते हैं क्योंकि उसमें भी प्राचीन रूढ़ियों और पम्पराओं का त्याग है। फलतः घनानन्दावली रीतिकालीन काव्य-धारा को 'स्वच्छन्द काव्य धारा' कहना अनुचित नहीं है।"

स्वच्छन्द शब्द का प्रयोग वस्तुतः सर्वप्रथम ब्रजनाथ ने किया था—

'भाषा प्रवीण सुछन्द सदा रहे,
सो घनजी के कवित्त बखान।'

इन पंक्तियों में 'सुछन्द रहै' शब्द में रीतिमुक्त से तात्पर्य है अर्थात् जो कवि राजा की चाटुकारिता में काव्य रचना न करके अपने हृदय की अनुभूतियों की स्वच्छन्द रूप से अभिव्यक्ति करे वह स्वछन्द कवि है। इस सम्बन्ध में भी उपर्युक्त विद्वानों की मान्यताओं के समान ही आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं—"स्वच्छन्द काव्य भाव भवित होता है बुद्धि बोधित नहीं। इसलिए आन्तरिकता उसका सर्वोपरि गुण है आन्तरिकता की इस प्रवृत्ति से सारी साधन-सम्पत्ति शासित रहती है और यही वह दृष्टि है जिसके द्वारा इन कर्त्ताओं के मूल उत्स तक पहुँचा जा सकता है। बहुत आधुनिक ढंग से कहें तो कहेंगे कि स्वच्छन्द वृत्ति के कवियों की अनुभूति ही उनका मुख्य आधार है। उसी के सहारे उनकी सारी कृति की छानबीन की जा सकती है।"

रीतिमुक्त काव्य के विषय में डा० बच्चनसिंह ने कहा है—"रीतिकाल के कतिपय उन महत्त्वपूर्ण कवियों को जिन्होंने स्वच्छन्द प्रेम के भावपूर्ण उद्गार प्रकट किये है, रीति मुक्त या स्वच्छन्द काव्यधारा के कवियों में गिना गया।" इसी सम्बन्ध में श्री कृष्णचन्द्र वर्मा का मत भी दृष्टव्य है, "रीति स्वच्छन्द काव्य धारा के कवि

प्रकृति से मुक्त एवं स्वच्छन्द थे। क्या जीवन और क्या काव्य सृजन, किसी क्षेत्र में भी बाधा-बन्धन, वे पसन्द नहीं करते थे। काव्य रचना के क्षेत्र में तो वे पिटे-पिटाये मार्ग को छोड़कर चलना चाहते थे "वे अनुकरण जीवी कवियों पर रुष्ट जान पड़ते थे।" वास्तव में श्रीकृष्ण वर्मा ने शतशः ठीक लिखा है। उनके इस मत की पुष्टि, घनानन्द, बोधा ठाकुर सभी की रचनाएँ करती हैं जैसे ठाकुर कवि के शब्दों में—

सीख लीनो मीन मृग खंजन कमल नैन,
सीख लीनो जस औ प्रताप को कहानी है।

... ...

देल तो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो।

—ठाकुर

इसी प्रकार घनानन्द ने रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों की भर्त्सना की है जो 'कवित्त' बना करके 'कुछ' बने थे—

लोग हैं लागि कवित्त बनावत,
मोहि तो मेरे कवित्त बनावत

—घनानन्द

स्वाभिमानी बोधा को तो अपनी स्वच्छन्द वृत्ति पर इतना नाज था कि वे किसी का 'मगरूर' सह नहीं सकते थे—

होय मगरूर तासों दूनी मगरूरी कीजै,
लघुता ह्वै चलें तासों लघुता निबाहिये।
दाता कहा सर कहा सुन्दर प्रबीन कहा,
आप कौन चाहै ताके बाप को न चाहिए॥

—बोधा

रीतिबद्ध और रीतिमुक्त काव्य धारा में अन्तर

रीतिबद्ध और रीतिमुक्त काव्यधारा में जो अन्तर है व रीति शब्द के प्रत्ययों द्वारा स्पष्ट है। एक काव्यधारा बंधी बंधाई परिपाटी पर चलती है और दूसरी के लिए स्वच्छन्द प्रवृत्ति आवश्यक है। इसमें किसी प्रकार का बंधन नहीं, नियम नहीं अपितु अपनी अनुभूति पर ही कवि को अधिक विश्वास है—अनुभूति भी इन्द्रयानुभूति नहीं हृदयानुभूति। रीतिमुक्त ने अलंकार, रीति वक्रोक्ति, ध्वनि आदि सभी काव्य-सम्प्रदायों का विरोध किया और एक नयी लीक बनाकर चले जबकि रीतिबद्ध काव्य में इन सम्प्रदायों के आधार पर काव्य रचना की जाती थी। इस प्रकार रीतिबद्ध और रीति-मुक्त काव्य के प्रणेताओं में प्रवृत्तिगत विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। इस विभिन्नता को एक दम स्पष्ट करते हुए श्री रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में कहा है—"ये पिछले वर्ग (रीतिमुक्त) कवि प्रतिनिधि कवियों में

केवल इस बात में भिन्न हैं कि इन्होंने क्रम से रसों, भावों, नायिकाओं और अलंकारों के लक्षण कहकर उनके अन्तर्गत अपने पद्य को नहीं रखा है। अधिकांश में भी शृंगारी कवि है और इन्होंने भी शृंगार-रस के फुटकल पद कहे हैं। रचना शैली में किसी प्रकार का भेद नहीं है। कवियों में घनानन्द सर्वश्रेष्ठ हुए हैं। इस प्रकार के अच्छे कवियों की रचनाओं में प्रायः मार्मिक और मनोहर पद्यों की संख्या कुछ अधिक पाई जाती है। बात यह है कि इन्हें बंधन नहीं था। जिस भाव की कविता जिस समय सूझी लिख गये। रीतिबद्ध ग्रन्थ जो लिखने बैठते थे उन्हें प्रत्येक अलंकार और नायिका को उदाहृत करने के लिए पद्य लिखना आवश्यक था, जिनमें सब प्रसंग उसकी स्वाभाविक रुचि या प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं हो सकते थे। रसखान, घनानन्द, आलम, ठाकुर आदि जितने प्रेमोन्मत्त कवि हुए हैं किसी ने भी लक्षणबद्ध रचना नहीं की।"

रीतिबद्ध और रीतिमुक्त कवियों में भागवत तथा कलागत में पर्याप्त भेद था—जिसके कारण शुक्ल जी ने उन्हें विभिन्न माना। रीतिमुक्त कवियों ने एक ओर साहित्यिक परम्पराओं का विद्रोह किया और दूसरी ओर नैतिक मूल्यों के प्रति क्रान्तिकारी दृष्टिकोण अपनाया। इसी कारण उनके काव्य में ऐसी अभिनव गरिमा आ गई जो उन्हें रीतिकालीन काव्य से अलग करती है। वैसे तो पूरा रीतिकाल ही शृंगार की कविताओं का आगार है और सम्भवतः इसी कारण इस काल का एक नाम 'शृंगार-काल' भी है। रीतिमुक्त कवियों ने यह कालगत विशेषता अपने अंग्रेजों से पाई, (रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों से) परन्तु जहाँ रीतिबद्ध कवियों का प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण मांसल और शरीरी था—जो उन्हें मानिसक प्रेम से अलग करता था—

'जौ लहियै संग साजन तौ धरक नरक हू की ना' वह रीतिमुक्त कवि का दृष्टिकोण सूक्ष्म और मानसिक तथा अशरीरी था। रीतिबद्ध कवि प्रेम मार्ग की वक्रता, चातुरी, छल कपट को महत्त्व देते थे तो रीतिमुक्त कवि प्रेम के सीधे और सरल मार्ग का बखान करते थे—

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
यहां सूधे चलै तजि आपुनपौ, झिझकैं कपटी जे निसाक नहीं।।

—घनानन्द

रीतिमुक्त काव्यधारा की प्रमुख विशेषताएँ

१. काव्य सिद्धान्तों में भिन्नता

रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों की रचनाओं को देखें तो ज्ञात होगा कि यह कवि युग-परम्परा से हटकर चलने वाले कवि थे। इस युग में काव्य के सिद्धान्त—काव्यशास्त्र के नियमों के अनुकूल थे—कवि चाह कर भी—लक्षणबद्ध रचना की लीक से टल नहीं सकता था, परन्तु इन कवियों ने यह सिद्ध कर दिया कि लक्षणबद्ध काव्य के अतिरिक्त भी काव्य रचना हो सकती है, और वह अधिक स्वच्छ, अधिक मार्मिक तथा ज्यादा अनुभूति प्रवण होती है। कारण स्पष्ट है, रीतिबद्ध कवि अपने

लिए न लिख कर राजा को प्रसन्न करने के लिये, स्थापना के मोह में पड़कर, अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन करता था और काव्य-रचना में आकाश-पाताल एक कर देता था परन्तु रीतिमुक्त कवियों के विषय में ब्रजनाथ ने घनानन्द के काव्य की प्रशस्ति करते हुए लिखा है—

'जग की कविताई धोखे रहै, ह्यां प्रबीनन की मति छकी।'

रीतिमुक्त कवि स्थापना के मोह में पड़कर 'कवित्त' की रचना नहीं करते थे—अपितु उनका भाव-प्रवण हृदय सहज रूप से प्रेम से इतना उच्छलित था कि कवित्त स्वयं उनके मुँह से फूट पड़ते थे—

'लोग है लागि कवित्त बनाबत, मोहि तो मेरे कवित्त बनावत'

—घनानन्द

इन कवियों के काव्य में किसी प्रकार चर्वितचर्णन नहीं—नव्यता है—भव्यता है, स्वच्छन्दता के साथ स्वच्छता है। किसी काव्य सम्प्रदाय के साथ न बंधे होने से यह कवि काव्य रचना के समय आत्मविभोर हो जाया करते थे और उस भाव-दशा में इनकी वाणी से जिस रस-काव्य की रचना होती थी उसकी सुषमा नैसर्गिक थी जिसका मिलना लक्षणबद्ध काव्य में अत्यन्त कठिन हैं—

अन्तर हौ किधो अन्त रहौ, दृग फारि फिरौं कि अभागिन भीरौं।
आगि जरौं अकि पानि परौं, अब कैसी करौं हिय की बिधि धीरौं॥
जो घनानन्द ऐसी रुचि तौ कहा बस है अहो प्रानिन पीरौं।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हैं, धरनी में धंसौं कि अकासहि चीरौं॥

—घनानन्द

रीतिमुक्त कवियों के काव्य में एक प्रवृत्ति सर्वत्र मिलती है और वह है आंतरिकता का गुण। इसी के बारे में आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने लिखा है—"स्वच्छ काव्य भाव भावित होता है बुद्धि बोधित नहीं, इसलिये आन्तरिकता उसका सर्वोपरि गुण है। आन्तरिकता की इस प्रवृत्ति के कारण स्वच्छ काव्य की सारी साधन-सम्पत्ति शासित रहती है और यही वह दृष्टि है जिसके द्वारा इन कर्त्ताओं की रचना के मूल उत्स तक पहुँचा जा सकता है।" कवि ठाकुर ने अपने काव्य की सरलता और सहजता और स्वच्छता की ओर संकेत करते हुए लिखा है—

'डेल सों बनाय आय मेलत सभा के बीच
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है।

—ठाकुर

२. प्रेम का स्वच्छन्द-चित्रण

रीतिकाल में सभी कवियों की दृष्टि 'प्रेम' पर टिकी है—रीतिमुक्त कवियों ने भी प्रेम को ही अपने काव्य का विषय बनाया है परन्तु रीतिबद्ध और रीतिमुक्त प्रेम में बहुत अन्तर है। रीतिबद्ध कवियों ने प्रेम का वर्णन किया है और रीतिमुक्त कवियों ने

स्वयं प्रेम किया है। एक का प्रेम आरोपित है और दूसरे का अनुभूत। इसी एक अंतर के कारण सम्पूर्ण काव्य धारा में अन्तर आ गया है। रीतिमुक्त कवियों का प्रेम संबंधी दृष्टिकोण व्यापक और उदार है—मांसल और शरीरी नहीं। रीतिबद्ध कवियों की रचनाओं में जो प्रेम का बाह्य पक्ष दिखाई देता है जिसमें काव्य लक्षण बद्ध मार्ग का बना बनाया रास्ता है। प्रेम व्यापार के चुने-चुनाये दृश्य, लक्षण नायिकाओं की लक्षण-बद्ध प्रेम चेष्टा—इन सब चीज़ों का रीतिमुक्त काव्य में सर्वथा अभाव है। इसके स्थान पर रीतिमुक्त कवियों के काव्य में प्रेम का उन्मुक्त स्पन्दन और भावप्रवणता की स्वच्छ और सच्ची अनुभूति है। इस पथ पर चलने वालों ने समस्त मर्यादाओं को त्याग कर काव्य रचना की है। इनके प्रेम के मार्ग में कोई छल-कपट, दुराव-छिपाव, कृत्रिमता, वक्रता, और बौद्धिक चातुरी का कोई स्थान नहीं—

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
जहाँ साँचे चलैं तजि आपुनपौ झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं॥
घनआनन्द प्यारे सुजान सुनौ, इत एक ते दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन सी पाटी पढ़े हौ लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥

—घनानन्द

रीतिबद्ध कवियों में इस प्रकार का चित्रण आंशिक रूप से बिहारी, मतिराम और देव इत्यादि में मिलता है परन्तु ऐसा लगता हैं कि उन कवियों की कल्पना कीं स्वच्छंद उड़ान को 'रीति' की कैंची काट देती थी। इन कवियों की रचनाएं स्वामि-सुखाय होती थी और इन्हें काव्य चमत्कार के लिए विभिन्न प्रकार की काव्य प्रति-योगिताओं में भाग लेना पड़ता था। इन प्रतियोगिताओं में 'चमत्कार' प्रदर्शन ही मुख्य उद्देश्य होता था परन्तु रीतिमुक्त कवि ने प्रेम के क्षेत्र में लोक की लाज, परलोक की चिंता, देह से नाता—सभी को प्रेम के ऊपर कर दिया—

लोक की लाज औ शोक परलोक को बारिये प्रीति के ऊपर दोई।
गाँव को गेह को देह को नातो सो नेह पै हातो करै पुनि सोई॥
'बोधा' सों प्रीति निबाह करै धर ऊपर जाके नहीं सिर होई।
लोक की भीत धरा धरो मीत तो प्रीति के पेंड़े परो जिन कोई॥

—बोधा

बोधा भी घनानन्द की भांति एक प्रेमी कवि थे। उनका प्रेम मांसल-इन्द्रीय न होकर विशुद्ध प्रेम था। किसी युवती के प्रेम के चक्कर में पड़कर उन्हें हृदय की पीड़ा कवित्त बन कर वह निकली और उन्होंने 'प्रेम के पंथ' को इतना कराल कहा कि उसका पार मृत्योपरान्त ही मिल सकता है, फिर भी प्रेमी के मन में इसका जरा भी खेद नहीं। वह तो अभिमान पूर्वक अपने इस प्रेम मार्ग की प्रशंसा और कठिनता का वर्णन करते हुए कहता है—

अति खीन मृणाल के तारहु ते,
तोहि ऊपर पांव दे आवनो है।

सूई वह हूँ बोधि सकी न तहाँ,
परतीति को डांडो लपावनो है।
कवि बोधा अनि घनि नेजहुँ की,
चढ़ि ताचै न चित्त डुगाननो है।
यह प्रेम को पंथ कराल महा,
तलवार की धार पै धावनो है। —बोधा

कवि दिनकर ने बोधा के प्रेम की उमंग की तुलना अन्य रीतिमुक्त कवियों के साथ करते हुए बोधा का स्थान महत्त्वपूर्ण बताया है—"रीतिकाल में अगर घनानन्द को लेकर अलग परिवार की कल्पना की जाय तो उसमें सबसे अधिक विश्वासी कवि बोधा ही होंगे…बोधा घनानन्द के गुट का संस्करण से लगते हैं। प्रेम का वही नशा; विरह की वही बेचैनी, भावुकता की वह लहर और निराशा में तड़प कर जान देने की वही चाह। बोधा का व्यक्तित्व एक भावुक प्रेमी का व्यक्तित्व है, जिसे प्रेम से निराशा हुई है जिसके मन की आग मन में ही धधक रही है। उसे कहीं भी ऐसा मीत नहीं मिलता जिसे कह कर वह अपने मन की व्यथा को हल्का करे।"

ठाकुर कवि ने भी प्रेम की विवशता का बड़ा मार्मिक और हृदयद्रावक चित्र दिया है—

गति मेरी यही निसिवातर है,
चित तेरी गलीन के गाहने है।
चित कीनो कठोर कहा इतनो,
अब मोहि नहीं यह चाहने है।
कवि ठाकुर नेक नहीं दरसो,
कपटी न को काहु सराहनो है।
मन भावै सुजान वही करियो,
हमें नेह को नातो निबाहनो है। —ठाकुर

(27)

घनानंद, बोधा और ठाकुर के अतिरिक्त रसखान और आलम ने भी रीतिमुक्त काव्य धारा को अपनी सरस, स्वच्छन्द और प्रेमपूर्ण उक्तियों से समृद्ध किया है—

लोक बेद मरजाद सब, लाज काज संदेह।
देत बताय प्रेम करि, विधि निषेध को नेह॥ —रसखान

आलम कवि की कृति 'आलमकेलि' में उनकी पत्नी शेख की कविता भी संग्रहीत हैं। परन्तु प्रेम की पीर दोनों में एक समान मिलती है—

मन की अटक तहाँ रूप को विचार कहाँ,
रीझिबो को पड़ै तहाँ बूझि कछु न्यारी है। —आलम

३. शृंगार का संयोग पक्ष

रीतिमुक्त कवियों ने शृंगार-रस को अपने काव्य का विषय बताया है। वह

श्रृंगार उनके व्यक्तिगत प्रेम संबंधों में तो सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है परन्तु जहाँ पर यह श्रृंगार उनके व्यक्तिगत प्रेम संबंधों में तो सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है परन्तु जहाँ पर यह कवि 'प्रेमी' के आसन से उठ कर 'भक्त' के पद पर आसीन हो गये हैं वहाँ भी संभवतः श्रृंगार को यह छोड़ नहीं पाये। इसी कारण कृष्ण और राधा का वर्णन करते समय एकदम उन्मुक्त भाव से उनकी रूप माधुरी का वर्णन किया है—राधा के रूप वर्णन का एक चित्र—

लाजनि लपेटी चितवनी भेद भाय भरी,
लसलित ललित लोल चख तिरछीन मैं।
छवि को सदन गोरो बदन रुचिर भाल,
रस निचरति मीठी मधु मुस्कयानि में। —घनानंद

स्वच्छन्द प्रेम स्थूल, शारीरिक एवं एन्द्रीय नहीं—वरन् भावात्मक होता है। संयोग वर्णन में कहीं भी अश्लीलता एवं भोग विलासों की एन्द्रीयता नहीं। इसके विपरीत संयोगावस्था भी वियोगमयी सी हो जाती है—

यह कैसो संयोग न बूझि परै,
जू वियोग न क्यों हूँ बिछोहत है। —घनानंद

इन कवियों का प्रेम प्रथम दर्शन जन्य है—सहवास जन्य नहीं। रूप निधान सुजान को 'नैकुँ' देखते ही प्रेमी की दृष्टि अनुरागमय हो उठती है। प्रथम दर्शन, रीझ का जादू उस पर हो जाता है—

रूप निधान सुजान सखि,
जब ते इन नैनिन नैकूं निहारी। —घनानंद

इस धारा के कवियों के प्रेम में अंतरात्मा की पुकार अधिक है। परिपाटी विहित कलात्मक चित्र कम मिलते है। काव्य लिखते समय कोई न कोई सजीव प्रतिमा सदैव इनके सामने प्रस्तुत रहती थी, वह चाहे सुजान हो या शेख—इसी कारण से इनका श्रृंगार वर्णन जीवन के अधिक निकट जान पड़ता है। सौन्दर्य सबंधी इनकी दृष्टि जागरूक और सचेत थी। इन्होंने रूप के प्रभाव का वर्णन इसी कारण अधिक किया है और नेत्र, चितवन, सम्भोग आदि के चित्र कम मिलते हैं। घनानन्द इसी बात को कहते हैं—

रावरै रूप की रीति अनूप,
नयो-नयो लागत ज्यों-ज्यों निहारियै।
त्यों इन आँखिन बान अनोखी,
अघाने कहूँ नहीं आनि तिहारियै।
एक ही जीव हुत्यौ सो वारयौ,
सुजान संकोच औ सोच सराहियै।
रोकि रहै न वहै घनआनंद,
बावरी रीझ कै हाथनि हारियै।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रीतिमुक्त कवि की दृष्टि अपनी प्रेयसी के प्रत्येक अंग पर न ठहर उसकी सामूहिक छवि के अंकन अथवा उसके रूप गुण की सम्मिलित प्रभावमयता पर अधिक रही है। रीतिमुक्त कवि ने संयोग शृंगार पर अधिक नहीं लिखा, क्योंकि भाग्य ने उनका 'संयोग' इतने समय का रखा कि उन्हें संयोग भी आनन्द-प्रद न हो सका। संयोग की अवस्था में उनका चित्र इतना भावप्रवण हो उठता था कि वियोग का भय उस आनन्द पर छा जाता था—

यह कैसो संजोग न बूझि परै,
जू वियोग न क्यौं हूँ बिछोहत है।
मिलै हू कि मारै जारै सरक बिछोह की।

४. विप्रलम्भ शृंगार की अधिकता

रीतिबद्ध कवियों का प्रेम वर्णन काव्य-शास्त्रीय शैली अथवा लक्षण ग्रन्थों के आधार पर हुआ था। इसी कारण उनमें विरह की सभी अवस्थाओं और शास्त्रीय मनोदशाओं को गिनाया जा सकता है। परन्तु रीतिमुक्त काव्यधारा में कवियों ने काव्य में विप्रलम्भ शृंगार का शास्त्रीय परिपाटी से वर्णन नहीं किया। इसी कारण इनका 'वियोग' रीतिबद्ध 'वियोग' से नितान्त भिन्न है। रीतिमुक्त कवियों ने शृंगार के संयोग पक्ष का अत्यंत अल्प चित्रण किया है। इन कवियों का काव्य विरह प्रधान है। उसमें हृदय की अनेकों दशाओं का वर्णन बार-बार और स्थान-स्थान पर किया है, क्योंकि यह कवि 'विरह' को ही सच्चा प्रेम मानते हैं। इनके विचार में प्रेम हुआ और संयोग ही रहा—यह कैसा प्रेम है? प्रेम की वास्तविक कसौटी तो विरह है जिस पर कसा जा कर ही प्रेमी 'प्रेमी' कहने का अधिकारी हो सकता है। जो वियोग की अग्नि को सह नहीं सकता और प्राण त्याग देता है। उसे यह कायर और छिछला कहते हैं, जो कि प्रेम के मार्ग को कलंकित करता है—

हीन भये जल मीन अधीन,
कहा कछु मो अकुलानि समानै।
नीर सनेही को लाय कलंक,
निरास ह्वै कायर त्याग प्रानै॥ —घनानन्द

वस्तुतः इन कवियों की प्रेम-तृषा सदा वर्धित होती रहती है। इनमें प्रेम की अथाह पीर है और उस पीर को पहचानने के लिए एक पीर भरा हृदय ही अपेक्षित है—

समुझै कविता घनानंद की,
हिय आँखिन प्रेम की पीर तकी।

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इनकी 'प्रेम की पीर' को सूफी कवियों से प्रभावित मानते हुए कहा है—"इन स्वच्छंद कवियों ने फारसी काव्यगत वेदना की निवृत्ति के साथ इस प्रेम-पीर का स्वागत किया है। इनकी रचना में वियोग के आधिक्य

का कारण यही है। लौकिक पक्ष में इनका विरह-निवेदन फारसी काव्य की वेदना की विवृत्ति से प्रभावित है और अलौकिक पक्ष में सूफियों की प्रेम की पीर से।"

इन रीतियुक्त कवियों ने प्रेम का संयोग पक्ष भोगा तो वह इतना मादक कि अब उसकी स्मृति मात्र से भी कष्ट होता है। क्योंकि सम्भोग के क्षणों में गले में पड़ा हुआ हार भी जब प्रेमी-युगल के आलिंगन में बाधा डालता हुआ पहाड़ सा लगता हो—अब विरह में उसकी क्या दशा होगी—

तब तौ छवि पीवत जीवत थे,
अब सोचन लोचन जात जरै।
तब हार पहार से लागत थे,
अब आनि के बीच पहार परै। —घनानंद

यह तो हृदय की दशा का वर्णन है, उधर नेत्र विचारे उस घड़ी को कोसते हैं जिस घड़ी वे सुजान वे गले लगे थे—

अब लाय बियोग की लाय बलाय,
बढ़ाय बिसास दगानि दगी।
अंखियाँ दु:खयानि कुबानि परी,
न कहूँ लगैं कौन घरी सुलगी॥ —घनानंद

इसी प्रकार—

बदरा बरसै ऋतु में घिरि कै,
नित ही अंखियाँ उधरी बरसै। —घनानंद

घनानंद का कव्य तो विरह की मार्मिक उक्तियों से भरा पड़ा है—

देखियै तसा असाध अंखियां निपेटिनी की,
भसमी बिथा पै नित लंघन करति हैं।

घनानंद के अतिरिक्त अन्य रीतिमुक्त कवि जैसे बोधा और ठाकुर ने भी विरह की पीड़ा को कहना चाहा है, पर किससे! आज के विश्व में कौन ऐसा 'दिलदार' मिले जिसके सामने अपना दुखड़ा रोया जा सके—

हम कौन सौं पीर कहैं अपनी,
दिलदार तो कोउ दिखातो नहीं। —बोधा

विरह के संबंध में जितना सच रीतिमुक्त कवियों ने कहा—रीतिकालीन अन्य कवियों ने नहीं। राजा को प्रसन्न करने के लिए आरोपित विरह में वह जान कहाँ जो 'दिल की लगी' को होती है।

रीतिबद्ध कवि बिहारी की नायिका बिचारी—

इत आवत चली जात, उत चली छ: सातक हाथ,
चढ़ी हिंडोरै सी रहै, लगी उसासन साथ।

हर समय विरह के हिंडोले पर झूलती रहती है। उधर 'ठाकुर' कवि का कहना है कि व्यथा की मूल संवेदना जानने के लिये पहले विरही होना आवश्यक है—

कवि ठाकुर अपनी चातुरी सों,
सब ही सब भांति बखानतु है।
पर बीर मिलै बिछुरै की बिथा,
मिल कै बिछुरै सोई जानतु है।। —ठाकुर

रीतिमुक्त कवियों के प्रेम की पीर के विषय में जितना कहा जाय कम है, क्योंकि लगभग प्रत्येक रीतिमुक्त कवि को व्यक्तिगत जीवन में प्रेम में निराशा हाथ लगी। अतः सभी का विरह काव्य मार्मिक, अनुभूतिपूर्ण, और व्यथा के चित्रों से भरपूर है—प्रेम की तड़प –

रैन दिना घुटिबौ करै प्रान,
झरै दुखिया अंखियां झरना सी।

तो कहीं विरह की पीड़ा का सही चित्र आँकने में विरही असमर्थ है, क्योंकि वाणी वहाँ पर भाषा का साथ नहीं दे पाती—

जातै वेई दिन राति,
बखाने तो जाय परै दिन राति को अन्तर।

उन्हें संयोग में भी चैन नहीं—

मिलेहू सु मारै जारै खरक बिछोह की :

सारांश में रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों ने प्रेम की पीर का विलक्षण चित्र प्रस्तुत किया है। इनके आँसू लगता है रुकने का नाम ही नहीं लेते, किराये पर लेने का प्रश्न ही नहीं उठता। रीतिमुक्त कवियों के आँसू ही उनकी सारी पूंजी है—उसे समझने के लिये हृदय की आँखें चाहिये—

समुझै कविता घनानन्द की,
हिय आँखिन नेहकी पीर तकी।

५. प्राचीन काव्य परम्परा का त्याग

रीतिमुक्त काव्बधारा ने स्वयं 'रीति' के परम्परागत बन्धन से मुक्त कर लिया था। इनके पूर्वज रीति ग्रंथकारों का समूचा साहित्य था। अलंकारिक चमत्कारों से भरा पड़ा है या फिर उसमें नायिकाओं के भेद—कामोत्तेजक लक्षणबद्ध उदाहरणों तथा सिद्धान्तों का काव्यमय विवेचन किया है। इन कवियों की नायिकाएं रीतिमुक्त कवियों की 'प्रेमिकाएं' नहीं होती हैं, जिनके विरह में स्वच्छंद कवि समस्त नियम विधान को भूलकर प्रेम को पीड़ा का वर्णन करता था अपितु नायिका भेद का संबंध तो रीतिबद्ध कवि की परम्परा से मिला था—इसी कारण इस धारा के काव्य के जीवनस्रोत की निर्मल धारा का अभाव है। डा० मनोहरलाल गौड़ ने अपनी पुस्तक में लिखा है—

"रीतिमुक्त कवियों ने अपनी काव्त-शैली पर जानबूझ कर अलंकारों के चमत्कार को आरोपित नहीं होने दिया है। ठाकुर ने प्रायः निरलंकृत सहज भाषा में अभिव्यक्तियाँ दी हैं। घनानंद ने अलंकारों का प्रयोग सबसे अधिक किया है, पर वे सप्रयास प्रयुक्त नहीं हुए। भाव के अंग रूप में प्रकट हुए हैं।...आलम और घनानन्द के काव्य में सैंकड़ों ऐसे पद्य मिलते हैं, जिनमें एक भी अलंकार नहीं, पर कविता अपनी मार्मिकता से हृदय को छू लेती है। इन कवियों की नायिकाएं व्यक्ति की हैं, उनकी रूप चेष्टाओं का उन्होंने आँखों-देखा वर्णन किया गया है। सुजान का सोकर उठना, चिक से झाँकना, काली साड़ी पहनना, सज कर चलने को उद्यत होना, शराब पीना, नाचने को ऐड़ी उठाना आदि छोटी-छोटी शतशः चेष्टाएं घनानन्द के काव्य में वर्णित हैं, जिनकी प्रेरणा नायिका भेद से प्राप्त नहीं हो सकती। अतः रीतिमुक्त कवियों के वर्ण्य विषय और उनकी वर्णन शैली, दोनों काव्य परम्परा से मुक्त हैं।"

रीतिकाल का रीतिबद्ध साहित्य, ध्वनि, वक्रोक्ति, अलंकार, रीति आदि काव्य सम्प्रदायों को दृष्टि में रख कर काव्य रचना करता था, परन्तु रीतिमुक्त कवि ने किसी भी नियम, लक्षण, सम्प्रदाय को अनुसरण न करके एक नवीन काव्य परम्परा को जन्म दिया। वास्तव में यही इसकी विशेषता भी है कि इस धारा के काव्यकारों को 'विशेष' बनने का मोह न था। सामान्य तो क्या, अति सामान्य होकर इन कवियों ने अपने प्रेम की पीर को 'सूधे रूप' से व्यक्त किया है—

अति सूधो सनेह को मारग है,
जहाँ नेक सयानप बाँके नहीं।
जहाँ सांचे चलैं तीज आपुनपौ,
जिझकैं कपटी जे निसांक नहीं॥ —घनानंद

घनानंद का उपर्युक्त काव्य-उद्धरण सम्पूर्ण रीतिबद्ध धारा से रीतिमुक्त काव्य धारा को अलग कर देता है। प्राचीन परम्परा के कवि 'सूधे' मार्ग पर नहीं चल सकते थे, क्योंकि स्थापना का मोह, पाण्डित्य प्रदर्शन उन्हें रोकता था। उनके लिये 'कठिन काव्य का प्रेत' होना सहज था। 'सयानप' और बाँकपन को त्याग कर सहज मार्ग पर चलना कठिन। इसी कारण उनके काव्य में प्रेम का जो चर्वित-चर्वण हुआ है, रीतिमुक्त काव्य में उसका सर्वथा अभाव है। उसके स्थान पर इन कवियों का काव्य ताजा अनुभूति प्रवण और मार्मिक है।

६. लोक संस्कृति का चित्रण

रीतिमुक्त कवियों ने अपने काव्य में अपनी संस्कृति—ब्रज की संस्कृति का बड़ा सजीव और आकर्षक वर्णन किया है। लगभग सभी कवियों का लोक त्यौहार, जैसे होली का त्यौहार, तीज, गनगौर, श्रीकृष्ण राधिका जन्म, विवाह-संस्कार, गोवर्धन पूजा, वनदेवी का पूजन, बसंत-फाग, यज्ञोपवीत और मुंडन आदि त्यौहारों में ब्रज संस्कृति की साकार जांकी प्रस्तुत की है। घनानन्द ने अधिकतर वर्णन ब्रज प्रदेश और

वहाँ के त्यौहारों का किया है। होली का प्रेम पूर्ण चित्रण करने में पद्‌माकर ने पूर्ण सहृदयता से काम लिया था—पर अधिकांश रीतिबद्ध कवियों ने त्यौहारों के चित्रण में नायिका पर ही अपना कैमरा फोकस किये रखा है। ठाकुर ने अपनी रचनाओं में बुन्देलखण्ड के सांस्कृतिक वैभव का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। उन्होंने बुन्देलखण्ड में होने वाले मुख्य सांस्कृतिक पर्व जैसे गणगौर, अखतीज, वट-सावित्री और होली आदि के अत्यंत भावुक चित्र प्रस्तुत किये हैं। अलद-तृतीया अरावती के वर्णन में नर-नारी सहज व्यवहार का जो चित्र प्रस्तुत किया है वह बड़ा ही सजीव है—

गांठ गठीली चमेली की बोदर,
घालो न कोऊ अनुतरी कैहै,
असई नाग लेवाओ तो लैहे पै,
घाले ते लाल कहा रस रैहै ॥
ठाकुर कंज-कली सी लली,
बलिया जड़ चोट सरीर न सैहै ॥
बाल कहै कर जोर हहा,
यह बोदर ल ल हमैं लगि जैहै ॥ —ठाकुर

घनानंद ने ब्रज प्रदेश उत्सवों में 'तीज' का वर्णन बड़ी रुचि से किया है। श्रीकृष्ण और राधा की तीज से पूरा ब्रज प्रदेश सुशोभित हो उठा है।

बरसाने की तीज सुहाई।
हरयारी सबहिनी मन भाई ॥

तीजों में झूला बड़ी चाव से झूला जाता। युवतियां अत्यंत प्रेम भरे गीत गाती हुई सुन्दर वस्त्रों में सजकर झूलती हैं। यहाँ श्रीकृष्ण व राधा सावन के महीने में झूले का आनन्द उठा रहे हैं—

'नन्द के ब्रजचन्द श्री गोविन्द
सावन मनभावन में झूलै झूलना तैसी है हरियारी।

अन्य रीतिमुक्त कवियों ने भी यत्र-तत्र अपनी सांस्कृतिक रुचि का परिचय दिया है। जिनमें द्विजदेव का प्रकृति चित्रण, ठाकुर का गनगौर वर्णन और बोधा का होली वर्णन अत्यन्त सजीव रहा है।

७. रीतिमुक्त कवियों की भक्ति-भावना

वैसे तो समूचा रीतिकाल रचना की दृष्टि से दो मुख्य-भागों में विभाजित हो जाता है। शृंगार काव्य और भक्तिकाव्य। इस काल में इसके अतिरिक्त नीतिपरक काव्य और प्रशस्तिपरक वीरता की उक्तियाँ भी मिलती हैं। परन्तु समस्त रीतिकवि भक्ति परक रचनाएँ अवश्य करते थे। शृंगार की अति से ऊब से जीवन के उत्तरार्द्ध में भगवद्‌भक्ति का ध्यान इन्हें आता और उसी कारण अनायास ही कृष्ण भक्ति की

पंक्तियाँ इनकी वाणी से निःसृत होती। इन रीतिबद्ध कवियों के मुख से भक्ति के दोहे कवित्त उतने अच्छे नहीं लगते थे, जितनी शृंगार परक उक्तियाँ सम्भवतः अपने इस काम्पलैक्स से वे भी भली भाँति परिचित थे। तभी तो उन्होंने कहा है—

आगे के सुकवि सराहि हैं तो सुकविताई,
न तु बाधिका कन्हाई सुमिरना को बहानो है।

कारण यही है कि सभी शृंगारी कवियों ने राधा कृष्ण को स्मरण अवश्य किया है परन्तु इन्हें भक्त कवि नहीं कहा जा सकता। रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि घनानन्द, रहीम, रसखान, आलम, बोधा, ठाकुर सभी ने भक्तिपरक रचनाएँ की हैं। परन्तु इनका भी मुख्य उद्देश्य शृंगार वर्णन था। रीतिमुक्त कवि भक्त थे अथवा नहीं--इस सम्बन्ध में आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र का मत है—"इनकी रचना के प्रायः तीन खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में इनकी रुचि रीतिबद्ध रचना की ओर दिखाई देती है जिसमें इनकी ऐसी रचनाएँ आती हैं जिनमें इन्होंने काव्य क्षेत्र में अपनी वाणी या परख की जाँच की है। दूसरे खण्ड में रीतिबद्ध रचना का परित्याग कर दिया है और स्वच्छद रूप से प्रेम के पवित्र क्षेत्र में पदार्पण किया है। तीसरे खण्ड में इनकी रचनाएँ भक्तिपरक हो गई हैं।"

रीतिमुक्त कवियों के व्यक्तिगत जीवन में अगर झांका जाय तो ज्ञात होगा कि इन कवियों में से अधिकांश कवियों के जीवन का पूर्वाद्ध तो बड़े मजे में बीता है। अपने प्रेमी के साथ रंगरेलियाँ मनाते हुए। चाहे वह घनानन्द की 'सुजान' हो या बोधा की 'सुमान' अथवा आलम की शेख। इनके जीवन का उत्तरार्द्ध अपनी मदाकता को खो चुका था। प्रेम की पींगे-विरह की पीड़ा में बदल गई थी। धीरे-धीरे वह वेदना-पीड़ा इस लोक को पार कर पारलौकिकता में परिवर्तित हो गई। निराशा की चरम सीमा में जब सब ओर से इनका नाता टूट गया तो परमात्मा से नाता जोड़ लिया। श्रीरामचन्द्र शुक्ल के अनुसार—'वह दरबार से निकाले जाने के उपरान्त वैराग्य धारण करके वृन्दावन आये और निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव हो गये और वहीं पूर्ण विरक्त भाव से जीवन-यापन करने लगे। उन्होंने अपनी कविताओ मे बराबर सुजान को सम्बोधित किया है जो शृंगार में नायक के लिए और भक्ति भाव में कृष्ण भगवान के लिये प्रयुक्त मानना चाहिए।" यह शुक्ल जी ने घनानन्द के विषय में लिखा। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी घनानन्द को भक्त कवि माना है। घनानन्द ने श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन 'कृपाकन्द' नामक काव्य ने किया है। वैसे तो घनानन्द की अन्य कृतियाँ भी सुजान कान्ह शीर्पक से भक्ति के कवित्त मिलते है। उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा है—

सब आके ते ऐचि के कान्हा किसोर मैं,
राखि भलौ फिर आस करौ।

घनानन्द के समान ही ठाकुर कवि ने भी भक्ति भावना का परिचय अपने इस कवित्त में दिया है—

दस बारबीस बार बरंज दई है याहि,
एते पै न मानै जो तो जरन बरन देव ।
कैसे कहा कीजै कछू आपनो करो न होई,
जाकें जैसे दिन ताके वैसे ही भरन देव ।
'ठाकुर' कहत मन आपनो मगन राखो,
प्रेम निरलंक रस रंग विहरन देव ।
विधि के बनाय जीव जेते है जहाँ के तहाँ,
खेलत फिरत तिन्है खेलन फिरत देव ।।

'रसखान' कवि अगर प्रसिद्ध हैं तो अपने भक्तिकाल के कारण। रीतिमुक्त कवि रसखान ने कृष्ण भक्ति में डूबकर इतनी मार्मिक सुन्दर और हृदयहारी रचनाएँ की है कि उनकी तुलना सहज ही पुष्टिमार्ग के जहाज सूरदास से की जा सकती है। रसखान बालकृष्ण के रूप पर, उनकी हर छवि, भंगिमा पर वे इस कदर रीझे हुए हैं कि—

या लकुटी और कमरिया पर,
राज तिहु ंपुर को तजि डारौं ।
आठहु ंसिद्धि नवौं निधि को सुऊ,
नन्द की गाय चराय बिसारौं ।

अथवा

काग के भाग कहा कहियै, हरि हाथ सौंले गयौं माखन रोटी ।

८. अरबी-फारसी काव्य-प्रवृत्तियों से प्रभावित

रीतिमुक्त कवियों की काव्य शैली विशुद्ध भारतीय नहीं है। इन कवियों ने जिस विदेशी काव्य-प्रवृत्ति का प्रभाव ग्रहण किया है वे अरबी-फारसी की विषय-प्रेम की शैली आत्मकथन में अत्याधिक भावुकता और उहात्मकता, और भाषा में अलंकारों की उपेक्षा। सूफी काव्य की मूल चेतना अरबी-फारसी से प्रभावित रही है इसका सीधा प्रभाव जायसी मंझन आदि कवियों के काव्य में मिलता हैं। वास्तव में रीतिमुक्त कवि काव्य शैली में 'मुक्त' थे, परन्तु वह वातावरण जिसमें उन्हें जीना होता था। दरबारी वातावरण था। दरबार में फारसी के कवियों के साथ मेल-जोल, उठना-बैठना, अपनी रचनाएं सुनना-सुनाना आदि कारणों से रीतिमुक्त कवि फारसी प्रभाव से अछूते न रह सके। इन्हीं साहित्यकारों से सम्बन्ध का परिणाम उनका साहित्य है। घनानन्द के आश्रयदाता भी मुसलमान बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले थे अतः उनके मीरमुंशी होने के कारण दरबार का सारा काम-लिखा पढ़ी इन्हें ही करनी पड़ती थी उसका प्रभाव इनकी रचनाओं पर भी पड़ा। डा० मनोहरलाल गौड़ ने इस विषय में लिखा है— "इनकी रचना 'इश्कलता' की भाषा में फारसी शब्दों की भरमार है। उसके भाव

भी फारसी की भाँति अत्युक्तिपूर्ण और आशिकाना ढंग के हैं। घनानन्द कृत 'वियोग-बेलि' का छन्द फारसी का है। शराब, दिल के टुकड़े प्राणों का घुटकर मरना, छाती में घाव या छाले पड़ना, छुरी तलवार या भाले अधिक अप्रस्तुत इनके समस्त काव्य में प्रचुरता के साथ प्रयुक्त हुए है।"

'इश्कलता' का एक उदाहरण, जिसमें फारसी के शब्द और प्रभाव दोनों स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं—

पल पल प्रीति बढ़ाय हुवा बेदरद है।
आसिक-उर पर जान चलाई करद है।
घनी हुई महबूब सु मरम न छोलियै।
आनन्द जीवन ज्यान दया कर बोलियै॥

इस धारा के कवियों में वियोग की जो प्रधानता मिलती है वह नागमति के विरह की उस ज्वाला के समान है जो सम्पूर्ण विश्व को जला देगी अपने तन को बोटी-बोटी कर लेगी। बोधा ने इसी प्रकार का वर्णन किया है—

कलेजा छेद कर ज्यादा, मया मन माशू मादा,
इश्क दिलदार सों लागा, हमने दिल दर्द अनुरागा। —बोधा

इसी प्रकार—

इश्कमजाजी में जहाँ इश्क हकीकी खूब! —बोधा

घनानन्द और बोधा के समान आलम की शैली में भी निराशा भावों की आन्तरिकता और विषम-प्रेम आदि सभी फारसी गुण आ गये हैं। 'आलम-केलि' के सम्बन्ध में श्रीरामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—कहीं-कहीं फारसी शैली के रस बाधक भाव भी इसमे मिलते हैं।" इन कवियों में सूफी काव्य की वेदना, रहस्यमयता प्रेम की विषमता, सूक्ष्मता आदि प्रभाव आ गये हैं। अतः रीतिमुक्त काव्य धारा पर फारसी शैली का खुला प्रभाव है—इसको नकारा नहीं जा सकता।

६. प्रकृति-चित्रण

रीतिकाल के रीतिबद्ध कवियों ने काव्यशास्त्रीय वर्णन विवेचन में प्रकृति पर भी अपनी दृष्टि डाली परन्तु 'रीति' बद्धता के कारण वे इसे उन्मुक्त रूप से न ले सके। दरबार के झरोखे से आसमान का जितना हिस्सा देखा गया वाटिका के जिस कोण तक पहुँच सके और शैली शृंगों की जितनी ऊँचाई नाप सके। बस उतना भर लिख दिया। परन्तु वह 'सारा वर्णन' उद्दीपन रूप में ही उनके काव्य में स्थान पा सका। रीतिमुक्त काव्य धारा में 'प्रकृति' अपने परम्परागत रूप में ही आ पाई है परन्तु कवि ने अपने अग्रजों की इस प्रकृति को स्वीकार नहीं किया कि प्रकृति चित्रण में दृष्टि प्रकृति के बाह्य स्वरूप पर ही टिकी रहे। इस काल के कवियों ने प्रकृति चित्रण द्वारा हृदय पर पड़ने वाले प्रभावों की ओर संकेत किया है जैसे—

ऐरी बीर पौन, तेरी सब ओर गौर बोरी,
तो सों और कौन, मनें बुरकौं ही बानि दै ।
जगत के प्रान, ओछे बड़े तो समान घनआनन्द,
निधान सुख-दान अखियान दै ।

—घनानन्द

ह्वै पतझार बसन्त दुहू ।
घनआनन्द एक ही बार हमारे ।

—घनानन्द

बोधा का 'विरह-वारीश' इस दृष्टि से श्रेष्ठ कहा जा सकता है। उनका प्रकृति वर्णन कुछ तो शास्त्रबद्ध और कुछ स्वच्छन्द-वृत्ति वाला है।

भाषा

रीतिमुक्त कवियों ने भाषा का स्वच्छ और साफ सुथरा रूप प्रस्तुत किया है। इनकी भाषा व्रज भाषा है। रीतिबद्ध कवियों की भाषा अलंकारों से बुरी तरह जकड़ी हुई है—

जदपि सुजाति सुलच्छनी,
सुबरस, सरस, सुवृत्त ।
भाषण बिनु न बिराजही,
कविता, बनिता मित्त ।

इस 'भूषण' की श्रृंखला से रीतिमुत कवि ने स्वयं को मुक्त कर लिया था। डा० मनोहरलाल गौड़ के शब्दों में—"सत्य तो यह है कि रीतिबद्ध कवि भाषा की उस जीवन शति से अपरिचित है जो जायसी, सूर तुलसी, आदि के काव्य में सुलभ है। न उन्हें अपने लोक जीवन में सौन्दर्य दिखाई पड़ता है और न भाषा के व्यावहारिक रूप में रमणीयता रीतिमूक्त कवियों ने इस दिशा में नया मार्ग अपनाया है। सूरदास आदि की भाँति उन्होंने लक्षणाओं, लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से अपनी भाषा शक्ति बढ़ायी है और अभिव्यंजना के नये आयाम खोले हैं·· घनानन्द का काव्य शिल्प अलंकारों का मुहताज नहीं, सहज भाषा में ही बड़ी मार्मिक व्यंजनापूर्ण अभिव्यक्ति उन्होंने की है। ठाकुर ने भी लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रचुर प्रयोग किया है।"

रीतिमुत कवियों ने ब्रजभाषा का अत्यन्त सुन्दर साहित्यिक रूप प्रस्तुत किया है। कहीं भीं तोड़ा मरोड़ा नहीं। अनावश्यक उपसर्ग या प्रत्यय लगाकर भाषा को महत्त्वहीन नहीं होने दिया। इन कवियों ने लगता है बड़े मनोयोग से भाषा को संवारा है उसकीं अर्थ शति को अपनी प्रतिभा द्वारा बढ़ावा दिया है। भाषा इनकी रीतिकालीन भाषा ब्रज ही रही है परन्तु उसके अभिव्यंजना-कौशल में नवीनता लाना

इनकी मौलिकता है। घनानन्द की भाषा के विषय में ब्रजनाथ की प्रशस्ति अत्यन्त सटीक है—

नेही महा ब्रजभाषा प्रवीन
औ सुन्दरतानि के भेद को जानै।
जोग वियोग की रति में कोविद,
भावना-भेद-स्वरूप को ठानै॥
चाह के रंग में भीज्यो हियो।
बिछुरे मिले प्रीतम सांति न मानै।
भाषा प्रवीन सुछन्द सदा रहै,
सो घन जो के कवित बखानै॥

घनानन्द ने भाषा प्रवीन होने के कारण ब्रज के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के शब्दों को भी स्थान दिया हैं जैसे फारसी, अरबी, पंजाबी, पहाड़ी, राजस्थानी इत्यादि।

रसखान ने अपनी सादी और भावप्रवण भाषा के प्रयोग से अपने काव्य को अत्यन्त मार्मिक बना दिया है। घनानन्द के काव्य में जहां विरोध और वैषम्य की सुन्दरता है वहीं रसखान की सीधी में सादगी में ही सौन्दर्य भरा पड़ा है—

'काग के भाग कहा कहिए'
हरि हाथ सौ ले गयौ माखन रोटी,

एक एक शब्द ने चित्र सा खींच के रख दिया है। लगता है रसखान को भाषा प्रवीण होने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। उनके काव्य की सहजता ही उनकी प्रवीणता है। बोधा की काव्य भाषा ब्रज है। यह अवश्य है कि बोधा ने कहीं-कहीं अश्लील और बाज़ारू ढंग से प्रेम वर्णन किया है, परन्तु उनके काव्य में कहीं कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते हैं। बोधा की काव्य-भाषा के सम्बन्ध में डा० मनोहरलाल गौड़ ने लिखा है—"भाषा की स्वाभाविक स्वच्छन्दमार्गी सभी कवियों की उपेक्षा बोधा में अधिक है। ठाकुर ने लोकोक्तियों द्वारा, घनानन्द ने लक्षणाओं के बल से तथा आलम ने अलंकारों के प्रयोग से चमत्कार का आश्रय ग्रहण किया है। उर्दू-फारसी के शब्द अवश्यक कहीं-कहीं बीच में आ जाते हैं। फारसी के प्रभाव से भाव भी कहीं-कहीं अधिक खुले और बाजारू हो गये हैं पर ऐसे स्थल कम हैं और वे कवि की स्वच्छन्दता के द्योतक हैं।

रीतिमुक्त काव्य-धारा के प्रमुख कवि

१. घनानन्द

रीतिमुक्त काव्यधारा में जितने भी कवि हुए है, घनानन्द उनमें सर्वप्रमुख हैं। सम्पूर्ण रीतिमुक्त काव्यधारा को घनानन्द की काव्यगत विशेषताओं से समझा जा सकता है। यह मुहम्मदशाह रंगीले के मीर-मुंशी थे और दरबार में इन्हें बहुत ख्याति

प्राप्त थी। दरबारी वातावरण के षड्यन्त्रों के कारण इन्हें बादशाह की कोपदृष्टि का भाजन बनना पड़ा। यह मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में नाचने वाली वेश्या को जी जान से चाहते थे। गाने के लिये इन्होंने राजाज्ञा को ठुकराकर वेश्या सुजान के कहे की ज्यादा कद्र की और गाना गा दिया। इसी कारण बादशाह ने इन्हें राज्य से निष्कासित कर दिया। सुजान ने अपने परम्परागत धर्म का निर्वाह किया और जाने से इंकार कर दिया। यहीं से इनके जीवन की धारा ने नया मोड़ लिया। प्रारम्भ में यह सुजान के विरह में कवित्त रचते रहे परन्तु वही प्रेम धीरे-धीरे परमात्मा की ओर उन्मुख हो गया और जीवन के उत्तरार्द्ध में इन्होंने भक्तिपरक रचनाएं कीं।

घनानन्द की अब तक ४१ रचनाओं का पता चला है जिनमें सुजानहित, वियोगबेलि, इश्कलता, प्रेम पत्रिका, दानघटा तथा बृषभानुपुरसुषमा प्रमुख हैं। घनानन्द की काव्यगत विशेषताओं का यदि विश्लेषण किया जाय तो इनके काव्य में भावात्मकता, वक्रता, लाक्षणिकता, रहस्यात्मकता, भावों की वैयक्तिकता और स्वच्छन्दता आदि गुण मिलते हैं। घनानन्द ने दो प्रकार की रचनाएं की हैं, एक का सम्बन्ध इनके जीवन के पूर्वार्द्ध से है और दूसरी का उत्तरार्द्ध से प्रथम की रचनाओं को लौकिक शृंगारगत रचनाएं और दूसरी को भक्तिपरक रचनाएं कहा जा सकता है। डा० मनोहरलाल गौड़ ने लिखा है—'प्रथमवर्ग की रचनाएं की प्रायः कवित्त सवैयों में रचित है और दूसरे वर्ग की दोहे और चौपाइयों में। कवित्त सवैयों की संख्या ७५२, पदों की संख्या १०५७ और दोहे चौपाइयों की २३५४ है।"

घनानन्द वस्तुतः 'सूधे प्रेम' के काव्य है। रीतिबद्ध कवियों के समान लक्षण शृंखला में रहना इनके स्वास्थ्य के अनुकूल न था न ही एक ही रजिस्टर्ड प्रेमिका के अंगों प्रत्यंगों का कामोत्तेजक वर्णन इनसे न हो सके। इन्होंने तो स्वयं प्रेम किया—डंके की चोट से अपने प्रेम-मार्ग की व्याख्या भी की—

> **अति सूधो सनेह को मारग है,**
> **जहाँ नेक सयानप बांक नहीं।**
> **तहाँ सांचे चलें तजि आपु नपो।**
> **झिझकें कपटी जो निसांक नहीं।**
> **घनआनन्द प्यारे सुजान सुनो।**
> **इहाँ एक ते दूसरो आंक नहीं।**
> **तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला।**
> **मन लेहु छटांक नहीं।**

घनानन्द संयोग शृंगार से वियोग शृंगार में अधिक सफल हुए हैं उसी में इनकी वृत्ति रमी है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है—"ये वियोग शृंगार के प्रधान मुक्तक कवि हैं। प्रेम की पीर लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबांदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का ऐसा दूसरा कवि नहीं हुआ।"

घनानन्द ने भाव-प्रधान शैली में अपने 'सुजान' का वर्णन किया है। बिहारी ने एक दोहे में अगर अनेक संचारी भावों का विधान होता था जैसे'''कहत नटत रीता खिझत', उसी प्रकार उन्मुक्त कवि घनानन्द ने रीझ, विषाद, भूल, उपालम्भ उलझन आदि भावों का अत्यन्त सीधा वर्णन किया है। इसका काव्य प्रमुख रूप से भावों की अन्तर्भूमि पर ही खड़ा है। प्रिय के रूप पर रीझकर मन विचारे की ऐसी दशा होती है—

रावरे रूप की रीति अनूप,
नयो नयो लागत ज्यों-ज्यों निहरियै।
त्यों इन आँखिन बानि अनोखी,
अघानि कबहूं नहीं आनि तिहारियै।

प्रिय के रूप पर तो प्रेमी इतना रीझ गया कि रूप-रस पान से उसका मन नहीं अघाता परन्तु वियोग में बिचारा कैसे तड़पकर रह जाता है—

अन्तर-उदेग-दाह, आंखिन प्रवाह-आंसू,
देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है।
सोयबो न जागिबो हों, हंसिबो न रोयबो हूं
खोय-खोय आपही मैं चटक लहनि है॥

घनानन्द के काव्य के कलापक्ष पर दृष्टि डालें तो ज्ञात होगा भाषा छन्द, अलंकार, व्यंजना शक्ति, अप्रस्तुत-विधान, विरोध का चमत्कार और लाक्षणिकता से भरा पड़ा है। यह सभी विशेषताएं एक साथ रीतिमुक्त अन्य कवि में पाना दुर्लभ है। इनकी भाषा साहित्यिक ब्रज है। भाषा के क्षेत्र में घनानन्द ने परम्परागत ब्रज भाषा को और सुन्दर प्राणवान और सशक्त बना दिया है जो, कि सायास न होकर अनायास है—

लोग है लागि कवित्त बनावत,
मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।

शुक्ल जी ने अपने हिन्दी साहित्य का इतिहास में इनकी भाषा के विषय में कहा है—"भाषा की लाक्षणिक शक्ति तथा ध्वन्यात्मक शक्ति का जो वैभव घनानन्द की कविताओं में दृष्टिगोचर होता है, वह रीतिकालीन अन्य कवियों में नहीं है।" भावों को कवि ने जिस प्रकार तीव्र मरोड़कर हमारे सामने प्रस्तुत किया है, "वह ऊपर से देखने पर तो बड़ा प्रयत्नसाध्य लगता है पर वास्तव में ऐसा नहीं है। उन्होंने भाषा को तोड़ा नहीं, संवारा है। ऐसा लगता है कि भावों का जन्म ही ऐसी वक्र भाषा में हुआ है। इस सम्बन्ध में डा० मनोहरलाल का कथन है—"घनानन्द की भाषा में लक्षणों के कारण ही बिम्ब-विधान की क्षमता बहुत अधिक है। **'लाजनि-लपेटनी चितवीन' 'बरसति अंग-अंग माधुरी बसन छवि' 'चाहनि में चाह बरसति है'** आदि शतशः प्रयोगों में रेखामात्र से अरूप का भी रूप खड़ा हो जाता है।"

२. आलम

हिन्दी साहित्य में आलम नाम के दो कवि हुए हैं। एक सोलहवीं शताब्दी के

अन्तिम चरण में—जिन्होंने माधवानल कामकन्दला पुस्तक लिखी और दूसरे औरंगजेब के पुत्र मुअज्जमशाह के राज्यकवि थे। रीतिमुक्त धारा के आलम का रचनाकाल सं० १७४० से १६६० माना जाता है। कुछ आलोचक दोनों को एक ही आलम मानते हैं और अन्य के विचार में दोनों अलग-अलग व्यक्ति थे। इस सम्बन्ध में बहुत विवाद है। श्री रामचन्द्र शुक्ल ने दोनों को भिन्न व्यक्ति माना है और अपने साहित्य के इतिहास में लिखा है कि एक अकबर के समसामयिक थे और दूसरे औरंगजेब के पुत्र के राज्याश्रित। प्रेमाख्यानक प्रबन्ध काव्य माधवानल कामकन्दला को उन्होंने पहले आलम की काव्यरचना माना है और आलमकेलि' को दूसरे वाले आलम का काव्य माना हैं। शुक्ल जी के मत में प्रबन्धकार आलम एक अलग व्यक्ति हैं और मुक्तककार आलम दूसरे। शुक्ल जी के पास इसके लिए तर्क हैं – काव्य रूप और शैली की भिन्नता। प्रबन्धकार आलम सूफी प्रभाव से मुक्त शुद्ध प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा के कवि और रंगरेजिन शेख के प्रेमी स्वच्छन्द प्रवृत्ति के कवि रीतिमुक्त धारा के आलम। पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र दोनों कवियों को भिन्न-भिन्न न मानकर एक ही मानते हैं। परन्तु रीतिमुक्त काव्यधारा की विशेषताएं माधवानल— कामकन्दला में नहीं मिलती। 'आलमकेलि' का काव्य रूप और अनुभूति परक भावनात्मकता दोनों ही इस कृति में प्राप्त होती हैं।

आलम जाति के ब्राह्मण थे परन्तु शेख नामक रंगरेजिन के प्रेम में फंस कर इन्होंने उससे विवाह कर लिया था और मुसलमान हो गये। इनके प्रेम की कहानी भी बड़ी रोचक है। आलम पगड़ी बांधा करते थे। एक दिन उन्होंने पहले की तरह अपनी पगड़ी रंगने को दी जिसके कोने में दोहे की एक पंक्ति लिखी हुई बंधी थी—

'कनक छरि सी कामिनी काहे को कटि छीन।'

रंगरेजिन पगड़ी रंगने लगी तो उसने उपर्युक्त अधूरा दोहा पढ़ा झट से उसने इसकी दूसरी पंक्ति लिखी—

'कटि को कंचन काढ़ि कै, कुचन मध्य धरि दीन'

और पगड़ी भेज दी। आलम इससे इतने प्रभावित बुए कि विवाह ही कर डाला। परन्तु डा० मनोहर लाल गौड ने लिखा कि 'शेख' किसी स्त्री का नाम नहीं था क्यों कि मुसलमानों में 'शेख' नाम स्त्रियों के लिए नहीं मिलता। वास्तव में आलम का ही दूसरा नाम 'शेख' था— जो कभी आलम के नाम से लिखते थे और कभी शेख के नाम से रंगरेजिन की प्रेम कहानी मनगढ़ंत लगती है या फिर उसका कोई दूसरा नाम होगा।

आलम की कविताओं का संग्रह 'आलम-केलि' नाम से मिलता है जिसमें उन्होंने अपने प्रेम की पीर को व्यक्त किया है। यह एक प्रेमोन्मत्त कवि थे—और उसी प्रेम की उन्मक्ता में काव्य रचना किया करते थे। वैसे आलम घनानन्द की भाँति सर्वथा स्वच्छंद नहीं हैं। रीति परम्परा का इन पर कुछ प्रभाव मिलता है—फिर भी इन्हें

रीतिबद्ध कवि नहीं माना जा सकता। इनका भी वियोग वर्णन संयोग से अधिक मनोहारी है। 'आलम' के रस—साहित्य में निम्न छन्द बहुत ही ज्यादा प्रसिद्ध हैं—

जा थल कीने विहार अनेकन,
ता थल कांकरी बैठी चुन्यौ करै।
जा रसना सु करी बहु बात,
ता रसना सों चरित्र गुन्यौ करै॥
'आलम' चैन से कुंजन में करि केलि,
वहाँ अब सीस धुन्यौ करै।
नैनन में जो सदा रहते तिनकी,
अब कान कहानी सुन्यौ करैं॥

इनकी काव्य कला के संबंध में आचार्य शुक्ल ने बहुत सुन्दर कहा है—"ये प्रेमोन्मत्त कवि थे और अपनी तरंग के अनुसार रचना किया करते थे। इसी से इनकी रचनाओं में हृदय तत्त्व की प्रधानता है। प्रेम की पीर या हृदय का दर्द इनके एक-एक वाक्य में भरा पाया जाता है। उत्प्रेक्षाएं भी इन्होंने बड़ी अनूठी और बहुत अधिक की हैं। शब्द वैचित्र्य, अनुप्रासादि की प्रवृत्ति इनमें विशेष रूप से कहीं नहीं पाई जाती। श्रृंगार की ऐसी उन्मादमय उक्तियाँ इनकी रचना में मिलती हैं कि पढ़ने और सुनने वाले लीन हो जाते हैं। यह तन्मयता सच्ची उमंग में ही संभव है। प्रेम की तन्मयता की दृष्टि से आलम की गणना रसखान और घनानन्द की कोटि में होनी चाहिये।

विद्वानों ने 'आलम-केलि' के अतिरिक्त इनकी अन्य दो प्रबंध रचनाओं को भी मान्यता दी है। वे हैं—'माधवानल कामकन्दला' और 'सुदामा चरित्र'। दोनों कृतियों का कथ्य उनके नाम से ही स्पष्ट है—यानि प्रथम रचना एक प्रेम कथा है और दूसरी में श्रीकृष्ण के चरित्र और सुदामा के परम्परागत चरित्र का बड़ा मनोहारी वर्णन है।

भाषा शैली की दृष्टि से देखें तो पता चलता है कि उनकी भाषा तो ब्रज है परन्तु उसमें दूसरी भाषाओं जैसे 'हीन'—'जौन' आदि अवधी के शब्द मिलते हैं। रीतिमुक्त कवियों में अधिकांश हमें फारसी शैली से प्रभावित मिलते हैं। आलम पर 'भी' फारसी का प्रभाव है, जहाँ वे वियोग की अधिकता का प्रेम की तड़प का वर्णन करते हैं। उसमें सूफी शैली की नैराश्य, मूकता, व्यथा और मार्मिकता मिलती है। अभिलाषा और वेदना की इनके काव्य में अधिकता है। इनका प्रेम चेष्ट प्रधान बाह्य नहीं परन्तु अनुभूति प्रधान आंतरिक प्रेम है। आलम की यह विशेषता है कि उन्होंने कहीं अलंकारों के माध्यम से अपनी शैली को चमत्कारिक नहीं होने दिया अपितु अत्यन्त सहज और स्वाभाविक रूप में प्रेम की अभिव्यक्ति की है। इनमें प्रेमोल्लास का नवीन स्वर मिलता है और उच्चकोटि की अभिव्यंजना भी रीतिमुक्त धारा के प्रमुख कवियों में आलम की गणना की जाती है।

३. ठाकुर

रीति स्वच्छंद काव्य धारा के कवि 'ठाकुर' का जन्म ओरछे में सं० १८२२ में हुआ। इनका पूरा नाम लाला ठाकुरदास था। इनके काव्य का रचनाकाल सं० १५५० से १५८० है। यह जैतपुर के राजा परीछत के राजकवि थे। ठाकुर का साहित्य अन्य रीतिमुक्त कवियों की तुलना में कम है। उनके केवल दो काव्य-संग्रह उपलब्ध होते हैं—'ठाकुर-ठसक' और 'ठाकुर—शतक'। इसमें ठसक के कुछ पद्य शतक में आ गये हैं और शतक के कुछ पद्य ठसक में। ठाकुर ने अपने पूर्ववर्ती लक्षण बद्ध कवियों की भर्त्सना की है, क्योंकि उनका काव्य अनुभूति शून्य होता था, केवल कवि शिक्षा के बल पर जो काव्य रचना करते थे—वे श्रेष्ठ कवि नहीं हो सकते। ठाकुर ने ऐसे कवियों के लिए लिखा है—

सीखि लीनो मीन मृग खंजन कमल नैन,
सीखि लीनो जस औ प्रताप को कहानी है।
सीखि लीनो कल्पवृक्ष, कामधेनु चिंतामनि,
सीखि लीनो मेरु औ कुबेर गिरि आनो है।
ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात,
याको नहीं भूलि कहुं बाधियत बानो है।
डेल सों बनाम आय मेलत सभा के बीच
लोगन कवित्त को वो खेल करि जानो है।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का स्वच्छंद काव्यधारा के विषय में कथन—स्वच्छंद काव्यधारा का काव्य साध्य था और साधन भी काव्य ही था।" ठाकुर कवि पर अन्य कवियों की भाँति वह उक्ति पूर्णतः लागू होती है। ठाकुर ने अपने हृदगत भावों की ज्यों की त्यों अभिव्यक्ति सहज और स्वाभाविक रूप में की है। इन्होंने जिन भावों को व्यक्त किया है वे ऐसे नहीं कि केवल कवि विशेष के जीवन से ही संबंध रखते हों। परन्तु वे सार्वजनीन है। प्रिय के रूठ जाने पर हर प्रेमी का ठाकुर की भाँति ही हाल होता है—वह बार-बार अपने प्रेम की दुहाई देता है—अन्य से प्रेम करने में स्वयं को असमर्थ मानता है और इतनी उलझन में होता कि क्या करे—

का करियै तुम्हरे मन को जिनको अब लौं न मिटो दगा दीबो।
पै हम दूसरो रूप न देखिहैं आनन आन को नाम न लीबो।
ठाकुर एक सों भाव है तो लगि सो लगि देह धरै जग जीबो।
प्यारे सनेह निबाहिये को हम तो अपनो सो कियो अरूकीबो॥

अभिव्यक्ति की सहजता, निश्छलता ठाकुर के काव्य का वह गुण है जो हमें उपर्युक्त दोहे में मिलता है। कितना मुक्त, दुःख रहित है प्रिय के प्रति प्रेम भाव का निवेदन और स्वयं को उसके सामने दुर्बल कहने में प्रेमी को तनिक भी लज्जा नहीं। 'सूधे प्रेम वर्णन' के अतिरिक्त ठाकुर के काव्य में तत्कालीन लोक संस्कृति और लोक

जीवन का भी सुन्दर चित्र मिलता है। तीज-त्योहारों गनगौर तथा ब्रज-संस्कृति के लोकपर्वों की मनोहर झांकी ठाकुर के काव्य में मिलती है। अक्षय-तृतीया 'अरावती' का वर्णन कितना अनूठा है—

गांठ चमेली की बोदर घालो न कोऊ अनूतरी कहै।
असई नाग लेद्याओ तो लेहै पै घाले ते लाल कहा रस रहै।।
ठाकुर कंज कली-सी लली बलिया जड़ चोट सरीह न सैहै।
बात कहै कर जोर हहा यह बोदर लाल हमैं तगि जैहै।।

सहज और सीधी प्रेमाभिव्यक्ति और लोकपर्वों में अनूठा उत्साह के अतिरिक्त ठाकुर की भक्ति भावना से ओतप्रोत कवित्त, दोहे मिलते हैं। परन्तु घनानन्द की भांति किसी सम्प्रदाय की शरण इन्होंने नहीं ली और न ही ईश्वर को किसी 'नाम' के घेरे में बांधा। ठाकुर की भक्ति परम परमेश्वर के उस महिमामय रूप के प्रति है—जो सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है, जिसमें अपने अन्दर राम, कृष्ण और सभी लीला रूपों को समेट लिया है। इस नाते से ठाकुर ने ईश्वर की भक्ति संबंधी पद्ध लिखे हैं।

रीतिबद्ध कवि अभिव्यक्ति के लिये लक्षण-बद्ध हो अलंकारों से युक्त काव्य-रचना करते थे। यह शैली इतनी बासी हो चुकी थी कि अब उसमें कोई आकर्षण शेष न बचा था। ठाकुर ने रीतिमुक्त धारा में लोकोक्तियों और मुहावरों का इतना उन्मुक्त प्रयोग किया है कि वे एक नवीन मार्ग की स्थापना करते से लगते हैं। ठाकुर ने परमारत अलंकारों के स्थान पर मुहावरों और लोकोक्तियों को अपनी भाषा का सहज अलंकरण बना दिया। इनकी काव्यकला पर रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है—"ठाकुर बहुत सच्ची उमंग के कवि थे। इसमें कृत्रिमता का लेश नहीं है। न तो कहीं व्यर्थ का शब्दाडम्बर है, न कल्पना की झूठी उड़ान और न अनुभूति के विरुद्ध भावों का उत्कर्ष। जैसे भावों का जिस ढंग से मनुष्य मात्र अनुभव करते हैं। वैसे भावों को उसी ढंग से यह कवि अपनी स्वाभाविक भाषा में उतार देता है। बोलचाल की चलती भाषा में भाव को ज्यों का त्यों सामने रख देना इस कवि का लक्ष्य रहा है। ब्रजभाषा की शृंगारी कविताएँ प्रायः स्त्री पुरुषों के ही मुख की वाणी होती है। अतः स्थान-स्थान पर लोकोक्तियों का जो मनोहर विधान इस कवि ने किया है, उससे उक्तियों में और भी स्वाभाविकता आ गई है। यह एक अद्भुत बात है कि स्त्रियाँ बात-बात में कहावतें कहा करती हैं। उनके हृदय के भावों की भरपूर व्यंजना के लिए यह कहावतें मानो एक संचित वाङ्मय हैं।"

४. बोधा

यह राजापुर जिला बाँदा के रहने वाले थे और जाति से यह सरयूपारी ब्राह्मण थे। इनका पूरा नाम बुद्धिसेन था और महाराजा पन्ना के दरबार में यह रहते थे। वहीं पर अपनी काव्य प्रतिभा से रसिक जनों को यह भाव-विभोर किया करते थे। घनानंद की भाँति सुभान, नाम की एक दरबारी वेश्या से इनकी आँख लड़ गई।

धीरे-धीरे यह चर्चा राजा के कानों तक पहुंची। क्रोध में भरकर राजा ने इन्हें छः मास का देश निकाला दे डाला। अपनी प्रेमिका से वियुक्त होने का कष्ट यह बड़ी मुश्किल से झेल पाये। किसी तरह से समय तो काटना ही था। प्रेमी की स्मृति में इन्होंने अपनी विरह गाथा को एक काव्य का रूप दे डाला। यही काव्य 'विरह-वारीश' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। छः मास बीतने पर यह दरबार में पहुँचे। महाराजा को विरह-वारीश के कुछ अंश सुनाये। कहते हैं महाराजा इस विरह काव्य से इतने प्रभावित हुए कि बोधा के प्रति अपने पूर्व क्रोध को भूलकर कुछ भी माँगने के लिये कह उठे। बोधा के लिये तो वह अंधे के हाथ खजाना लगने वाली बात थी। झट से उन्होंने अपनी प्रेमिका सुभान' को माँगा और राजा को उसे देना पड़ा।

'विरह-वारीश' और 'इश्कनामा' बोधा की यह दो काव्य-कृतियाँ हमें उपलब्ध होती हैं। प्रथम कृति पर कतिपय आलोचक आलम की माधवानल-कामकंदला का प्रभाव मानते हैं। 'इश्कनामा' में प्रेम संबंधी मुक्तक पद्य मिलते हैं। बोधा पर घनानंद का पूरा पूरा प्रभाव मिलता है। कवि दिनकर ने तो बोधा को घनानंद का गुटका संस्करण कहा है। कारण यह है कि प्रेम की पीर की जैसी तीव्रता, पीड़ा असह्यता घनानंद में मिलती है। बोधा भी उसी प्रकार तृषित, पीड़ित और वियुक्त प्रेमी लगते हैं—

जब ते बिछुरे कवि बोधा हित,
तब ते उरदाह घिरातो नाहीं।
हम कौन सौं पीर कहैं अपनी,
दिलदार तो कोई दिखातो नाहीं॥

बोधा के काव्य में जिस 'प्रेम की पीर' का वर्णन है। उसी प्रेम पंथ की विषमता के विषय में बोधा का यह सवैया बहुत प्रसिद्ध है—

अति छीन मुनाल के तारहु ते,
तोहि ऊपर पांव दै आवनौ हैं।
सुई बेहते द्वार सकीन वहाँ,
परतीति को टांडो लदावनो है।
कवि बोधा अनी धनी नेजहु तें,
चढ़ि तापै न चित्त डरावनौ है।
यह प्रेम को पंथ कराल महा,
तरवारि की धार पै धावनो है।

कवि बोधा ने अपनी कृतियों में स्वच्छंद और निःसंकोच होकर मन की बात कही है। इसलिए कहीं-कहीं उनका वाक्य अमर्यादित भी हो उठा है। परन्तु फिर भी उनके काव्य की महत्ता कम नहीं होती क्योंकि प्रेम का बाजारू ढंग उनमें बहुत कम हैं। बोधा के काव्य के विषय में श्री रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी 'साहित्य का इति-

हास' में लिखा है—"बोधा एक रसोन्मत्त कवि थे। इससे इन्होंने कोई रीतिग्रंथ ने लिखकर अपनी मौज के अनुसार फुटकल पद्यों की ही रचना की है। यह अपने समय के एक प्रसिद्ध कवि थे। प्रेम मार्ग के निरूपण में इन्होंने बहुत से पद्य कहे हैं। 'प्रेम की पीर' की व्यंजना भी इन्होंने बड़ी मर्मस्पर्शनी युक्ति से की है। यत्र तत्र व्याकरण दोष रहने पर भी इनकी भाषा चलती तथा मुहावरेदार होती थी। उससे प्रेम की उमंग छलकी पड़ती है। इनके स्वभाव में फक्कड़पन भी कम नहीं था। 'नेजे', 'कटारी' और 'कुरबान' वाली बाजारू ढंग की रचना भी उन्होंने कहीं-कहीं की है। और जो कुछ हो, यह भावुक और रसज्ञ कवि थे, इसमें कोई सन्देह नहीं।"

बोधा बहुत स्वाभिमानी व्यक्ति थे। किसी की 'धौंस' सहना उन्होंने न सीखा था, क्योंकि वे अपने अन्दर के तेज को पहचानते थे। न तो वे स्वयं घमंडी थे और न ही किसी अन्य का मंगरूर उनसे सहा जाता था। निम्न पंक्तियों में उनका यहीं स्वाभिमान स्पष्ट होता है—

होंय मगरूर तासों दूनी मगरूरी कीजै,
लघुता ह्वै चलै तासौं लघुता निबाहियै।
दाता कहा, सूर कहा, सुन्दर प्रबीन कहा,
आपको न चाहै ताकै, बाप को न चाहियै॥

भाषा की दृष्टि से बोधा को देखा जाय तो रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवियों में केवल बोधा ही ऐसे हैं जो भाषा के सहज, स्वछन्द और स्वाभाविक रूप को लेकर चले हैं। उनकी भाषा में कहीं-कहीं विदेशी भाषाओं जैसे अरबी, फारसी के शब्द अवश्य आ गये हैं और उनसे उनकी शैली कुछ सस्ती व बाजारू हो गई है जैसे—

कलेजा छेद कर ज्यादा, भया मन भारू में मादा।
इश्क दिलदार सों लागा, हमने दिल दर्द अनुरागा॥

परन्तु इस प्रकार के स्थल अधिक नहीं हैं।

५. रसखान

रसखान का जन्म सं० १६१५ के आसपास दिल्ली में हुआ था। यह जाति के पठान थे। 'रसखान' इनका उपनाम था। इनका असली नाम क्या था—इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता परन्तु अधिकतर आलोचक 'सैयद-इब्राहीम' नाम असली नाम मानते हैं। यह जाति के मुसलमान थे, परन्तु युवावस्था में कुछ उपदेशों से इनके हृदय में कृष्ण के प्रति अनुराग और धीरे-धीरे यह इतना बढ़ गया कि यह कृष्ण भक्त कवि होकर रह गये। इनकी अनन्य भक्ति और सरस रचना को देख कर ही लोग इनको रस की खान कहने लगे और धीरे-धीरे यह 'रसखान' हो गये। मुसलमान होने पर भी श्री गोसाईं विट्ठलनाथ जी ने इन्हें अपना शिष्य बनाया।

इनकी दो रचनाएं उपलब्ध हैं—'प्रेमवाटिका' और 'सुजान-रसखान'। कृष्ण सौन्दर्य का इन्होंने अपनी कृतियों में बड़ा ही सरस, हृदयहारी और मधुर वर्णन किया है। कृष्ण की माधुरी सूरत इनकी आँखों में ऐसी बसी थी कि उसके सिवाय इन्हें कुछ और सूझता ही नहीं था। 'रसखान' की रचनाएँ चाहें अधिक नहीं हैं परन्तु कृष्ण प्रेम की जो अनन्यता इनके कवित्त सवैयों में मिलती है वह इन्हें सूर से भी उच्च कोटि का भक्त सिद्ध करती है जैसे—

धूर भरे आति सोभित स्याम जू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरैं अंगना पग पैजनी बाजत पीरी कछोटी॥
वा छवि को रसखानि बिलोकत वारत काम कला निज कोटी।
काग के भाग कहा कहिवै हरि हाथ सों ले गयो माखन रोटी॥

रसखान ने अपने सवैयों में ब्रज-प्रेम, बाल-कृष्ण की सुन्दरता, ग्वालिनों के सौभाग्य, कृष्णमय हो जाने की लालसा, कृष्ण की भक्त वत्सलता तथा कृष्ण की मुरली का मोहन भंग तथा राधा पर उसके प्रभाव का सुन्दर चित्र किया है। एक-दो उदाहरण रसखान की भक्ति को कहां दिखा सकते हैं। फिर भी।

अगले जन्म में कृष्ण का सान्निध्य पाने के लिए इनके हृदय में कितनी लालसा है—

मानुस हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो, चरो नित नंद की धेनु मंझारन॥

अथवा

बैन वही उनको गुन गाई औ कान वही उन बैन सों सानी।
हाथ वही उन गात सरैं अरु पाई वही जो वही अनुजानी।
जान वही उन प्रान के संग औ मान वही जो करै मनमानी।
त्यों रसखानि वही रस खानि जो हैं रसखानि सो है रसखानि॥

रसखान प्रेम को ज्ञान से श्रेष्ठ मानते हैं। यही कारण है कि उन्होंने ज्ञान की शिक्षा न देकर कृष्ण-प्रेम की गाथा गाई है।

प्रेम अगम, अनुपम, अमित, सागर सरिस बखान।
जो आवत एहि ढिग बहुरि जात नहीं रसखान॥

प्रेम की महिमा उन्होंने कई तरह से गाई—

शास्त्रन पढ़ि पण्डित भये, कै मौलवी कुरान।
जु पै प्रेम जान्यो नहीं, कहा कियो रसखान॥

रसखान की सम्पूर्ण कविता ब्रजभाषा में है जिसकी विशेषता है सरसता और सरलता। निराडम्बर और प्रवाहपूर्ण भाषा में उन्होंने अपने हृदय का समस्त माधुर्य उडेल दिया है। मुहावरे और अनुप्रास अधिक होने पर भी वह भाषा-गत दोष नहीं

बन पाया अपितु उसकी शक्ति और अधिक बढ़ी है। भारतेन्दु जी का एक ही वाक्य 'रसखान' का मूल्यांकन करने के लिए काफी है—

'इन मुसलमान हरिजनन पै कोटिक हिन्दू वारिये'

६. द्विजदेव

रीतिबद्ध कवियों और रीक्तिमुक्त कवियों दोनों में द्विजदेव की गणना की जाती है परन्तु इन स्वच्छन्द काव्य की प्रवृत्ति का प्रभाव अधिक लक्षित होता है अन्य रीतिमुक्त कवियों की भाँति यह किसी आश्रयदाता के कवि न थे परन्तु स्वयं अयोध्या के नरेश थे। इन्हें प्रकृति से विशेष प्रेम था, इसी कारण इनका अधिकांश काव्य ऋतु-वर्णन से भरा पड़ा है। डा० मनोहरलाल गौड़ के अनुसार "उन्होने श्रृंगार के रीति-ग्रस्त वर्णनों के साथ-साथ हृदय की अनेक अन्तर्दशाओं का मार्मिक उद्‌घाटन किया है, जिससे वे घनानन्द की दिशा में बढ़ते प्रतीत होते हैं। रोष, क्षोभ, दैन्य, अधैर्य धृति, स्मृति, उद्वेग, जड़ता आदि कितने ही भावों की सफल व्यंजना उन्होंने की है। ऐसा वे वियोग के प्रसंग में ही कर पाये हैं, संयोग वर्णन तो परम्पराग्रस्त है। इससे भी अधिक उल्लेखनीय विशेषता प्रकृति-वर्णन की है। उनका प्रकृति प्रेम स्वछन्द है। प्रकृति का आलम्बन रूपों में भी उन्होंने वर्णन किया है। उसके एकमात्र संग्रह-ग्रन्थ 'श्रृंगारलतिका सौरभ' में बसन्त पर लिखे तैंतीस पद्य हैं।" बसन्त को द्विजदेव ने राजकुमार माना है जिसका स्वगत सम्पूर्ण प्रकृति करती है—

डोलि रहै विकसे तरु एकै,
सु एकै रहि हैं नवाइकै सीसहिं।
त्यौं द्विजदेव मरन्द के व्याजहिं,
एकै अनन्द के आँसू बरीसहिं।
तै सेउ के अनुराग भरे,
कर पल्लव जौरि कै एकै असीसहिं॥

वास्तव में देखा जाय तो द्विजदेव को प्रकृति से ही मोह था। उसी के वर्णन मे उन्होंने अपनी समस्त काव्य-प्रतिभा को लगा दिया। आचार्य शुक्ल ने भी ऋतु-वर्णन को ही इनके काव्य की मुख्य विशेषता माना है—"ऋतु-वर्णनों में इनके हृदय का उल्लास उमड़ा पड़ता है। बहुत से कवियों के ऋतु-वर्णन हृदय की सच्ची उमंग का पता नहीं देते, रस्म सी अदा करते जान पड़ते हैं। पर इनके चकोटों की चहक के भीतर इनके मन की चहक भी साफ झलकती है।" विभिन्न ऋतुओं में वर्षा ऋतु का महत्त्व बहुत अधिक होता है—सबके लिए नहीं—विरही प्रेमिका के लिए, क्योंकि इसी समय उन्हें प्रिय की याद बहुत सताती है—

घहरि घहरि सघन चहूँघा घेरि।
छहरि छहरि विष-बूंद बरसावै ना।

द्विजदेव की सौं अब मत चूक दाव,
एरे चातकी पपीहा ! तू पिया की धुनि गावै ना ।
फेरि ऐसी औसर न ऐहै तेरे हाथ, एरे,
मटकि मटकि भोर सारे तु नचावै ना ।।
हौं तो बिन प्रान, प्रान चाहत तजोई अब,
कत नभ चंद तू अकास चढ़ि धावै ना ।।

'द्विजदेव' रीतिमुक्त काव्यधारा में अन्तिम कवि हैं, क्योंकि इनके पश्चात् इस धारा में उस प्रवृत्ति का ह्रास होता है जो रीतिमुक्त कवियों की मूल चेतना थी ।

सम्पूर्ण रीतिमुक्त काव्य परम्परा के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इस धारा में आलम, रसखान, ठाकुर, बोधा और घनानन्द के नाम उल्लेखनीय है । सभी के काव्य का मूल स्वर प्रेम है और प्रेम में भी वियोग पक्ष में ही वह अपेक्षाकृत अधिक निखार पाये हैं । इन सभी कवियों में घनानन्द सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होते हैं, क्योंकि अन्य किसी कवि में उनकी सी प्रेम-गूढ़ता, अतृप्ति की अनन्तता, अन्तर्द्वंद्व की अलौकिकता, वेदना की अक्षयता, और तीव्रानुभूति की अखण्डता नहीं मिलती । वैसे तो अन्य सभी रीति-मुक्त कवि स्वयं में विशिष्ट हैं परन्तु घनानन्द के काव्य में सभी विशेषताओं का समाहार हो गया है । घनानन्द में ठाकुर की तन्मयता भी है और बोधा सी रस-सिद्धता भी—रसखान की सी प्रेम की अनिर्वचनीयता भी है और आलम की सी उन्मतक्ता भी । फिर भी घनानन्द में अपनी कुछ ऐसी विशेषता है जो न आलम में है न रसखान में और न ही बोधा व ठाकुर में । इन सभी कवियों ने अपनी प्रेमिकाओं के संयोग और वियोग के चित्र प्रस्तुत किये हैं परन्तु घनानन्द की मार्मिकता और असाधारण काव्य सौष्ठव कहीं नहीं मिलते । क्योंकि घनानन्द की अनुभूति जितनी तीव्र और गहन थी उतनी ही उत्कृष्ट और समृद्ध अभिव्यक्ति भी । घनानन्द में जिस विरोध-मूलक चमत्कार का वैचित्र्य हमें मिलता है वह हिन्दी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है । उनकी सी लाक्षणिकता वक्रोक्ति का अनुपम सौन्दर्य जिससे घनानन्द की भाषा समृद्ध हुई है और जो सहज स्वच्छ और आडम्बरहीन है—घनानन्द को रीक्ति-मुक्त कवियों में सर्वोच्च स्थान पर अधीष्ठित करती है ।

३ | घनानन्द की प्रेमाभिव्यंजना

कविता के मूल में प्रेम का भाव कहीं न कहीं अवश्य रहता है प्रेम चाहे प्रकृति से हो, नारी से हो याकि फिर ईश्वर से—वह कविता के उत्सर्ग की प्रेरणा बनता है घनानन्द के प्रेम की परिकल्पना को दो आयामों में देखा जा सकता है, लौकिक और अलौकिक। लौकिक प्रेम के लिये कोई आधार आवश्यक होता है और वह आधार थी—सुजान वेश्या, जिससे घनानन्द को असीम प्यार था। सुजान के रूप पर मुग्ध होकर उन्होंने न जाने कितने कवित्त रच डाले, उसकी एक-एक अंग, गति की, दीप्ति को अपने छन्दों में बाँध लिया। सुजान के प्रति तीव्र अनुराग ही घनानन्द के लौकिक प्रेम का घातक बना। मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में इसी कारण उन्हें अपमानित होना पड़ा और सुजान ही उन्हें राज्य से निकालने की उत्तरदायी रही परन्तु इसका घनानन्द के मन में तनिक में रंज न था, जब सुजान का साथ है तो फिर वनवास कैसा ? लेकिन सुजान ने अपने धर्म का पालन किया और बेवफाई पीड़ा, तथा निर्ममता का सहारा लेकर दुनिया भर के दुःख दर्द घनानंद की झोली में डाल दिये। सुजान से वियुक्त होकर घनानन्द वृन्दावन गये। सुजान की याद ने उन्हें पागल कर रखा था, वहाँ भी उसी के लिये काव्य-रचना करते रहे क्योंकि लौकिक प्रेम की चमक और वासना की तीव्रता तथा रूप की ललक उनके मन में अभी भी वैसे ही बनी हुई थी। परन्तु कालान्तर में उनका लौकिक प्रेम भगवान कृष्ण के प्रेम में परिणत हो गया और लौकिकता का स्थान अलौकिक चाह' में परिवर्तित हो गया।

हिन्दी साहित्य की काव्य परम्परा में कदाचित ही कोई घनानंद सा प्रेमी कवि हुआ हो। वैसे आलोचकों ने इनकी प्रेम-संवेदना की तुलना तीन कवियों से की है—जायसी की नागमती मीरा की विरहाकुलता और सूर की वियुक्ता गोपियों—परन्तु घनानन्द सा दर्द, वेदना की तीव्रता और तड़प, प्रेम में भी विछोह की आशंका आदि अनेक ऐसी विशेषताएँ हैं जो प्रेम जगत में उन्हें सर्वोच्च पद पर अधीष्ठित करती हैं। अपनी प्रेयसी के नाम को उन्होंने कृष्ण में मिला दिया—भक्ति की तो भी सुजान नाम से भले ही आलम्बन बदल गया हो। घनानन्द के प्रेम की श्रेष्ठता

का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है। घनानन्द के काव्य में वैसे तो प्रेम का ही साम्राज्य है फिर भी वर्ण्य विषय की दृष्टि से उनके काव्य के दो भाग किये जा सकते हैं—सुजान प्रेम का काव्य जिसे उनके प्रेम का लौकिक पक्ष कहा जाता है और दूसरा कृष्ण भक्ति की कविता। इसे लौकिक प्रेम का काव्य कह सकते हैं।

सुजान-प्रेम का काव्य कृष्ण प्रेम के काव्य से परिमाण में बहुत कम है। डा० कृष्णचन्द्र वर्मा ने इस विषय में अपना मत देते हुए कहा है—"उनके समस्त काव्य-साहित्य का चतुर्थांश या उससे भी कुछ कम अंश सुजान-प्रेम से संबंधित है। शेष तीन चौथाई अंश कृष्ण-प्रेम और कृष्ण-भक्ति की भावना से ओत-प्रोत है। 'सुजान-हित' मूलतः उनके सुजान-प्रेम का स्मारक है—यद्यपि इसका भी एक अंश कृष्ण प्रेम से संबद्ध है। शेष ग्रन्थों में कृष्ण के प्रति प्रेम और भक्ति का भाव ही अनुस्यूत मिलेगा। मात्रा में कृष्णपरक काव्य के आधिक्य के अनेक कारण हैं—एक तो यों भी उस युग में प्रेम भावना के प्रकाशन के साधन रूप में गोपी-कृष्ण की प्रेम-क्रीड़ाओं या लीलाओं या गोकुल और ब्रज में उनके मधुर—प्रेममय जीवन को ग्रहण किया जाता था—दूसरे दीर्घकाल तक वे ब्रज में रहे, फलस्वरूप मध्ययुग का कवि और फिर ब्रजवासी होकर अन्य किस व्यक्ति को अपनी प्रेम प्रधान कविता का केन्द्र बना सकता था। तीसरा कारण उनका निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित होना है जिसमें कृष्ण ही एक मात्र उपास्य, भजनीय, सेव्य और पूज्य माने गये हैं।

घनानन्द को प्रेम विषयक दृष्टि

रीतियुक्त काव्यधारा के कवि घनानंद के प्रेम को जानने के लिये थोड़ा-सा उस युग पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होगा कि वह युग 'रीतिकाल' का युग था—जहाँ साहित्य में 'रीति' ही प्रमुख थी। काव्य यदि अनुभूति-प्रवण नहीं है तो भी क्षम्य है, परन्तु 'रीति' की शृंखला कहीं टूट गई तो समस्त काव्य अपने साध्य से नीचे गिर जाता था। रीतिबद्ध कवियों ने प्रेम-परक काव्य तो लिखा—खूब लिखा, परन्तु उनका प्रेम उधार का प्रेम था, उनके आँसू अपने नहीं थे वे भी जबरदस्ती लाये गये थे। इसी कारण वह प्रेमकाव्य रीतियुक्त कवियों की रचनाओं के सामने फीका पड़ जाता है। घनानन्द ने इन कवियों की रचनाओं को आत्मप्रवणता की दृष्टि से हल्का ठहराया है क्योंकि उन्होंने विधि को प्रेम से श्रेष्ठ माना था। घनानन्द के काव्य से यह स्पष्ट होता है कि प्रेम में तो प्रेमी इतना डूब जाता है कि रहनि और गति दोनों अटपटी हो जाती हैं, व्यथा ही उसका जीवन होता है और संयोग में भी विछोह की आशंका से अधीर रहता है। जब हृदय इतना व्याकुल होता है, प्रेमी को अपनी ही सुध नहीं होती, तब कहाँ रह जाता है सुनियोजित मार्ग, रीति, नीति, नियम व बंधन। सच्चे प्रेम का मार्ग तो अत्यंत सीधा है, उसमें कहीं भी बाँकपन नहीं कोई छल-कपट, दुराव, झिझक आदि का वहाँ कोई काम नहीं। इस लोक की मर्यादा को त्याग कर प्रेमी प्रेम की मर्यादा को निभाता है—छिप कर नहीं—साहस के साथ। अपनी इसी बात को घनानंद ने बड़े विशिष्ट ढंग से 'सूधे शब्दों में कहा है—

अति सूधो सनेह को मारग है, जहां नेकु सतानप बांक नहीं ।
तहां सांचे चलै तजि आपुनकौ, झिझकें कपटी जे निसांक नहीं ।।
घनानन्द प्यारे सुजान सुनौ, इत एक ते दूसरो आंक नहीं ।
तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटांक नहीं ।।

घनानंद ने अपनी प्रेम विषयक दृष्टि को स्पष्ट करने के लिए सैद्धान्तिक रूप से कोई स्वतंत्र काव्य नहीं लिखा। उनकी 'प्रेम-पद्धति' नामक रचना को देखकर लगता है कि उसमें प्रेम संबंधी कवित्त मिलेंगे परन्तु ऐसा नहीं है—इस कृति में कहीं भी 'प्रेम-तत्त्व' का प्रतिपादन नहीं किया गया। प्रेमी संबंधी कुछ सैद्धान्तिक कवित्त उनकी कृति 'सुजान-हित' में मिलते हैं। वे भी कवि ने जान बूझकर नहीं लिखे—अनायास ही आ गये हैं। इस कृति में ५०७ कवित्त हैं जिनमें आठ-दस कवित्त ऐसे हैं जिनमें साफ झलकता है कि 'प्रेम' को घनानंद क्या समझते थे। इसमें लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकार के प्रेम के विषय में उन्होंने लिखा है। वे मानते हैं कि सच्चा सनेही इस विश्व में मिलना असम्भव है क्योंकि प्रेम मार्ग में इतनी भीषण यातनाएं झेलनी पड़ती हैं कि कोई भी अन्त तक इस मार्ग पर नहीं चल सकता। व्यक्ति में अहं का भाव इतना प्रबल होता है कि शुद्ध आत्मसमर्पण संभव ही नहीं हो सकता। इस विश्व में जितना भी प्रेम है—वह सब श्रीहरि और राधा से उत्पन्न हुआ है और उन्हीं में उसे देखा भी आ सकता है। राधा कृष्ण का प्रेम विशाल सागर के समान है और इस संसार में व्याप्त प्रेम उसी राधा-कृष्ण प्रेम का एक कण है। इसी कारण प्रेम रहित व्यक्ति के संसर्ग पर भी आपत्ति की है क्योंकि वह सदा दूसरों के दोष ही देखता है। प्रेमी ऐसे लोगों की परवाह नहीं करता वह तो अपनी टेक 'प्रेम' पर अडिग रहता है—

टरै नहीं टेक एक घनानन्द जो,
निरक अनेक सीस खीसांन परै ।

और भी—

नेह-रस-दीत-हीन अन्तर मलीन लीन,
दोष ही रहै गहै कौर भांति वे गुनै ।

प्रेम का महत्त्व

आचार्य शांडिल्य ने प्रेम की परिभाषा करते हुए लिखा है कि संयोग में भी वियोग सा बना रहने की वृत्ति को प्रेम कहते हैं। घनानन्द की प्रेमानुभूति उक्त परिभाषा को पूर्णत: चरितार्थ करती हुई प्रतीत होती है, क्योंकि घनानन्द का प्रेम ऐसा है जिसके सुयोग में भी वियोग भरा हुआ है। इनको संसार में सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व प्रेम ही लगता है जिसके बिना व्यक्ति का जीवन व्यर्थ है। घनानन्द की दृष्टि में प्रेम का पंथ ज्ञान पंथ से भी ऊँचा है क्योंकि ज्ञान मार्ग में साधक को यह ज्ञान रहता है कि वह और साध्य दो व्यक्ति हैं, वह भक्त है और आराध्य भगवान परन्तु

प्रेम क्षेत्र में शारीरिक रूप से ही प्रिय और प्रेमी दो होते हैं परन्तु वस्तुत: वे एक ही होते हैं। प्रेम अपने आप में एक ऐसी शुद्ध और निर्मल वृत्ति है, जिसको धारण करते ही समस्त लौकिक वासनाओं का लोप हो जाता है और प्रेमी के हृदय में ऐसी भावना का जन्म होता है जो—

चंदहि चकोर करै, सोऊ ससि देह धरै,
मनसा हू ररै, एक देखिबे कौ रहै द्वै ।
ज्ञान हूँ के आगे जाकी पदवी परम ऊंची
रस उपजावै तामैं भोगी भोग जात ग्वै ।

(घनानन्द ने प्रेम विहीन मनुष्य को तुच्छ माना है क्योंकि उसमें विवेक नहीं होता। वह दूध और दही दोनों को रंग-साम्य के कारण एक मान लेता है कोयल व काग भी उसकी दृष्टि में बरावर हैं। इस कारण ऐसे मनुष्यों को जिन्हें प्रेम की मार्मिकता का ज्ञान नहीं—उनसे दूर रहना ही उचित है—

मही-दूध सम गनै, हंस बग भेद न जानैं ।
कोकिल काक न ज्ञान, कांचमनि एक प्रमानें ।।
चंदन ढाक समान, रांग रूपौ सम तोलै ।
बिन विवेक गुन-दोष, मूढ़ कवि ब्यौरि न बोलैं ।।
प्रेम-नेम हित चतुराई, जे न बिचारत नेकु मन ।
सपनेहु न विलंबिये, छिन तिन ढिग आनन्दघन ।।

घनानन्द ने अनेक प्रकार से प्रेम के महत्त्व की चर्चा की है। प्रेम-विहीन मनुष्य को इस असार संसार की बातों का ज्ञान रहता है अच्छा, बुरा, लाभ, हानि सभी की चिंता उसे रहती है, अगर कुछ नहीं होता तो हृदय में प्रेम नहीं होता। रहिन और करनी में कोई अन्तर नहीं होता परन्तु जैसे ही व्यक्ति को प्रेम हो जाता है, बुद्धि खो जाती है, सुध सो जाती है और प्रियतम को देखते ही सुध-बुध खोकर उसे देखता है। 'प्रेम का प्रेत' लगना इसी को कहा है—

खोय दई बुधि, सोय गई सुधि,
रोय हंसै उन्माद जाग्यो है ।
मौन गहै चकि चकि रहै,
चलि बात कहै तन दाह दग्यो हैं ।
जानि परै नपीं जाब तुम्हें लखि,
ताहि कहा कछु आहि खग्यो है ।
सोचनि ही परिचय घनआनन्द,
हेत पग्यो किधौं प्रेत लग्यो है।

कवि ने प्रेम के महत्त्व को इस प्रकार भी कहा है कि इस विश्व में जो प्रेम उमड़ता दृष्टिगोचर होता है वह वास्तव में श्री हरि और राधिका के प्रेम का ही

पुण्य-प्रताप है, उन्हीं के प्रेम के प्रकाश से इस विश्व में प्रेम बना हुआ है और यही अलौकिक प्रेम किसी भांति अपना एक कण इस विश्व को दे पाया है जिससे इस संसार में प्रेम का ज्वार आ गया है—

प्रेम को पयोदधि अपार हेरि कै विचार,
बापुरी हहरि बार ही तें फिरि आयो है।
ताको कोई तरल तरंग संग छूट्यो कन,
पूरि लोकनि लोकीन उमंड़ि ऊफनायो है।
सोई घनआनन्द सुजान लगि हेत होत,
ऐसे मथि मन पै सरूप ठहरायो है।
ताहि एक रस है विवस अवगाहैं दोऊ,
नेसी हरि-राधा जिन्हैं हेरे सर सायो है।

प्रेम का उद्भव

घनानन्द के जीवन में प्रथम बार प्रेम का स्फुरण उस समय हुआ जब उन्होंने सुजान का साक्षात्कार किया। सुजान को देखा तो देखते ही रह गये। लगा पूरे विश्व की सुन्दरता उसमें समाई हुई है। यहीं पर उनके हृदय में प्रेम का जन्म हुआ। आज सुजान को देखा वह बहुत सुन्दर लगी परन्तु अगले दिन की तो बात ही और थी। आज की सुजान उन्हें एकदम नयी लगी। रूप की सौन्दर्य छटा निराली थी। वे समझ नहीं पाये और कहा—

रावरे रूप की रीति अनूप, नयो-नयो लागत ज्यौं-ज्यौं निहारियै।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी, अघानि कहूँ नहीं आनि तिहारियै॥
एक ही जीव हुतौ सुतौ वारयौ, सुजान संकोच औ सोच सहारियै।
रोकी रहै न, दहै घनआनन्द, बावरी रीझ के हाथन हारियै॥

घनानन्द के रोम-रोम में सुजान का प्रेम बसा हुआ था। उन्होंने प्रेम के उद्भव के बाद जो भी लिखा प्रेमी कवि होने के नाते लिखा। उनका समस्त काव्य सुजान के रूप-सौन्दर्य की कहानी है। कहीं उनकी तिरछी चितवन को सहारा है तो कहीं तीव्र गौर वर्ण को, कहीं सुजान के काननचारी नेत्र गजब ढा रहे हैं तो अत्यन्त 'नव जोवन की सुथराई' से वे अभिभूत हैं। प्रिय के सौन्दर्य उन्हें उस सागर समान लगता है जिसमें नित-नवीन लहरें हर समय उमड़ती रहती हैं। वे उस सौन्दर्य सागर के किनारे बैठकर उन सभी लहरों को पी जाना चाहते हैं। नृत्य के समय सुजान के शरीर में बिजली की सी गति होती है उसकी मुस्कान में हँसी में लगता है फूलों की वर्षा हो रही है—

झलकै अति सुन्दर आनन गारै,
दृकै दृग राजत काननि छ्वै,
हंसि बोलन में छवि फूलन की,
बरषा ऊर-ऊपर जाति है ह्वै।

लट लोल कपोल कलोल करैं,
कल कण्ठ बढ़ो जलजावलि द्वै ।
अंग-अंग तरंग उठै दुति की,
परिहै मनो रूप अबै धरच्वै ।।

घनानन्द को सुजान से इतना प्रेम था कि वे स्वयं उसे पूर्ण रूप में अभिव्यक्त करने में असमर्थ थे परन्तु सुजान को उनसे कितना प्रेम था यह कहा नहीं जा सकता परन्तु सुजान के निर्मोहीपन की चर्चा उन्होंने स्थान-स्थान पर की है। घनानन्द ने सैकड़ों छन्दों में सुजान से शिकायत की है पर इसके लिये कहीं भी उन्होंने सुजान को दोष नहीं दिया। सारा दोष अपने भाग्य का है—जिस कारण वह विरह की व्यथा को झेल रहे हैं। भाग्य का लिखा क्या आज तक कभी मिटा है—

कैसे घनआनन्द अदोषनि लगाय खोरि,
लेखनी लिलार की परेखनी मुरति है।

अपने प्रेमी को तनिक भी बुरा-भला कहना उन्हें सह्य नहीं। वे तो अपने प्रेम को चातक के प्रेम तुल्य बतलाते हैं। प्रियतम मेघ के समान अतुल आनन्द प्रदान करने वाला है, तभी तो वह दिन राति उसी की ओर देखता रहता है—

चातिक लौं चाहैं घनआनन्द तिहारी ओर,
आठों जाम नाम लैं, बिसारि दीनौं मौन ह्वै ।

घनानन्द के हृदय में प्रेम का उद्भव हुआ और उसका अनोखा विकास हुआ। उनका प्रेम रीझ से पैदा हुआ और वे स्वयं उस 'बावरी रीझ' के हाथ बिक गये। परन्तु इतना भर रहता तो कोई बात न थी। वे तो ऐसे निराले प्रेमी हैं कि संयोग भी उन्हें सुख और शान्ति नहीं दे पाता क्योंकि प्रिय दर्शन की उत्कट लालसा के पश्चात् ही आज प्रिय का सामना हुआ पर नेत्र मिल भी न पाये। हृदय इतना अधिक व्याकुल हो उठा कि नेत्रों में आंसुओं की झड़ी लग गई—

मेरी मति बावरी ह्वै जाय जानराय प्यारे
रावरे सुभाय के रसीले गुन गाय गाय ।
देखिन के चाय प्रान आँखिन मैं झांकै आय,
राखौ परचाय पै निगोड़े चलें धाय धाय ।
बिरह बिषाद छाय आंसुन को झर लाय,
भाहै मुरझाय मैंन—तावरेन ताय-ताय ।
ऐसे घनआनन्द बिहाय न बसाय हाय,
धीरज बिलाय बिललाय फिरौं हाय-हाय ।

यह सारी दशा उस 'बावरी रीझ' का परिणाम है। प्रेमी का अपने पर से विश्वास उठ सा गया है और समस्त नेम-बाधाओं का त्याग कर सर्वत्र प्रेम की दुहाई देता फिरता है। क्रम उलट जाने से यहां रीझ पटरानी बन गई और बेचारी बुद्धि दासी--

प्रेम दुहाई फिरी घनआनन्द,
बांधि लिए कुल नेम गढ़ासी।
रीझ सुजान सची पटरानी,
बची बुधि बावरी ह्वै करि दासी॥

प्रेम पंथ अत्यन्त सीधा अत्यन्त टेढ़ा

समस्त रीतिमुक्त कवियों के प्रेम की यह विशेषता रही है कि उन्हें प्रेम के मार्ग में अत्यंत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। रीतिबद्ध कवि इस जंजाल से मुक्त थे, और होते भी क्यों न। पड़ोसी की प्रेमिका ने विश्वासघात किया और प्रेमी बेचारा चकोर सम अंगारे चुग रहा है। उसे देखकर कविता तो लिखी जा सकती है पर—

जाके पैर न फटी बिवाई
वो क्या जाने पीर पराई

वाली कहावत इन रीतिबद्ध कवियों पर पूरी उतरती है। रीतिमुक्त धारा में तो प्रेमी प्रेम करता था और यातनाएं सहकर कराहते हुए कहता था—

अति खीन मृनाल के तारहु ते,
ते हि ऊपर पांव है आवनो है।
सुई बेह कै द्वार सकै न तहां,
परतीति को टाडो लयावनो है।
कवि बोधा अनी घनी नेजहु तैं,
चढ़ि तापै न चित्त डरावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल महा,
तरबारि की धार पै धावनो है।

कवि बोधा ने प्रेम मार्ग की भीषण यातनाओं का पूरा परिचय इस कवित्त में दिया है। संभवतः इसी कारण इनके पूर्वज कवि इस मार्ग को अपनाने में संकोच कर गये।

प्रेम का मार्ग अत्यन्त सीधा है। उनमें किसी प्रकार के छल, कपट, बौद्धिक श्रम की आवश्यकता नहीं—केवल एक वस्तु की अपेक्षा है और वह 'अनन्यता'। अनन्य भाव से प्रेमी जब आत्मसमर्पण के लिए उद्यत हो जाता है, उस समय उसके हृदय का कपट, झिझक सब समाप्त हो जाते हैं। इसलिए जो इस सीधे मार्ग पर चलना चाहे उसके लिए अपने मन का समस्त मैल धोना अनिवार्य है अन्यथा वह इस मार्ग का अधिकारी नहीं हो सकता। घनानन्द ने इस प्रेम मार्ग की व्यंजना बहुत ही सुन्दर ढंग से की है—

अति सूधो सनेह को मारग है जहां नेकु सयानप बांक नहीं।
तहां सांचे चलें तजि आपुनपौ झझकें कपटी जे निसांक नहीं।

घनआनन्द प्यारे सुजान सुनो इत एक तो दूसरो आंक नहीं ।
तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटांक नहीं ।

घनानन्द ने प्रेम के मार्ग को अत्यन्त सीधा कहा है परन्तु प्रेमी को जो यातनाएं झेलनी पड़ती हैं, वे उसके प्रेम की कसौटी होती हैं । यदि कहीं भी चूक हो गई तो प्रेमी अपने साध्य से गिर जाता है । इस प्रेम की साधना के लिये किसी भी प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता नहीं । प्रेम की साधना से पीड़ा भी मधुर हो जाती है । इस प्रेम मार्ग का नित्य लक्षण है परम संताप की साधना । इस प्रेम का नाम लेने मात्र से ही जीभ में छाले पड़ जाते हैं । आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है—"जहां प्रेम की चर्चा में ही यह स्थिति है वहां उनकी साधना करना, उसके मार्ग पर चलना कितना कठिन है, केवल कल्पना से ही जाना जा सकता है ।" कवि ने इस असाधारण प्रेम-साधना की चर्चा इस प्रकार की है—

जान घनाआनन्द अनोखो यह प्रेम पंथ,
भूले ते चलत, रहै सुधि के थकित ह्वै ।
बुरो जिग मानो जो न जानो कहुं,
सीखि लेहु रसना के छाले परे प्यारे नेह नावें छ्वै ।।

घनानन्द ने अपने काव्य में अनेक स्थलों पर इस तरह के भाव व्यक्त किये हैं। कष्ट और वेदना तो उनके काव्य के मानो प्राण हैं । सच्चा प्रेमी ही विश्व में कितना दुर्लभ है तो फिर कष्ट सहे कौन । परन्तु यदि परमात्मा ने किसी के हृदय में सच्चे प्रेम का बीज बो दिया तो फिर उस पर अपार आपत्तियों-विपत्तियों की वर्षा होने लगती है । कारण स्पष्ट है प्रेमी ने जिस को चाहा वह मिल गया तो कहानी ही खत्म परन्तु मनुष्य को 'मनचाहा' भला कब मिला है । नकली प्रेमी तो प्रेम की डींग भरते हुए दूसरा प्रेमी खोज लेते हैं—उन्हें भला क्या आवश्यकता है वियोग झेलने की, तो वे प्रेम की पीड़ा को, कसक को और दर्द को क्या समझे ! परन्तु 'दुर्भाग्य' से घनानन्द ने सच्चा प्रेम किया—बदले में मिली वियोग, विरह की असह्य यातना, जिसने उनके जीवन को विषाक्त कर दिया—यहाँ तक कि प्रभु ने संयोग सुख में भी वियोग की वेदना का कांटा चुभा दिया । विरह की तीव्राग्नि को फिर भी प्रेमी सहर्ष सहने के के लिए तैयार है—

इक तो जग मांझ सनेही कहां
पै कहूं जो मिलाप की बास खिलै ।
तिहि देख सके न बड़ो विधि कूर,
वियोग-समाजहि सजि पिलै ।।
घनआनन्द प्यारे सुजान सुनो,
न मिलो तो कहो मन काहि मिलै ।
अमिले रहिबो लै मिले तें कहा,
यह पीर मिलाय मैं धीर गिलै ।।

रीतिबद्ध काव्यधारा में प्रेम का सीधा वर्णन वर्जित था क्योंकि उसमें लक्षण-जन्य वक्रता का अभाव रहता था। परन्तु रीतिमुक्त कवियों ने डंके की चोट से प्रेम किया—उसके मार्ग की विशेषताओं को बताया और अपने प्रेमी की सराहना करते हुए अत्यन्त 'सूधे' रूप से उसके सौन्दर्य की प्रशंसा भी की। सामान्यतः व्यक्ति वियोग में आंसू पीकर जीता है। वह नहीं चाहता कि किसी दूसरे को उसके दुःख का, प्रेम का पता भी चले। परन्तु घनानंद ने जिस साहस से सुजान के साथ निश्छल प्रेम किया, वियोग को उन्होंने उसी की स्मृति मे झेला। यह रीतिमुक्त प्रेमी की सादगी है कि उसने अपने प्रेम की निश्छल अभिव्यक्ति की है—

अंक भरौं चकि चौंकि परौं,
कबहूंक लरौं, छिन ही में मनाऊं।
देखि रहौं, अनदेखे दहौं,
सुख सोच सहौं, जु लहौं सुनि पाऊं।
जान तिहारी सो मेरी दसा,
यह को समझै अरु काहि सुनाऊं।
यौं घनआनन्द रैन दिना नहीं बीतत,
जानियै कैसे बिहाऊं।।

घनानन्द ने '**प्रेम मार्ग में सफलता**' पाने के लिये वियोग झेलने की क्षमता पर बहुत बल दिया है। उसके अनुसार वही प्रेमी इस मार्ग पर चल सकता है जो कठिनाई से डरे नहीं और अपने कुछ सिद्धांत बना ले। जैसे किसी भी कष्ट में पीछे न हटने की कामना, सर्वस्व समर्पण की भावना, प्रेम में अनन्य निष्ठा, तथा झिझक का लोप इत्यादि। अनेक कवित्तों में इस प्रकार की चर्चा मिलती है—

(क) जान घरआनन्द अनोखो यह पंथ,
भूले ते चलत, रहैं सुधि के थकित है।
(ख) नेह भीजी बातै रसना पैउ आंच लगे,
जागै घनआनन्द ज्यौं पुंजनि-मसाल हैं।
(ग) अंतर उदेग-दाह, आंखिन प्रवाह आंसू,
देखी अटपटी चाह भी जानि दहनि है।
सोयबो न जागिबो हो, हंसिबो न रोयबो हू,
खोय खोय आप ही मैं चेटक-लहनि है।
(घ) प्रीति की रीति सुक्यों समुझै जड़ भीत के पानि परे को प्रमानै।
या मन की जु दसा घनाआनन्द जीव की जीवनि जान ही जानै।

प्रेम का संयोग पक्ष

घनानन्द के काव्य में सर्वत्र प्रेम का साम्राज्य है। उन्होंने जो कुछ भी लिखा, सुजान के प्रेम में लिखा। जब तक सुजान का संयोग उनके भाग्य में बदा था उन्होंने

उसे आनन्दपूर्वक भोगा और सहारा परन्तु भाग्य ने अधिक समय तक उनका साथ न दिया। उनका सौभाग्य-दुर्भाग्य में परिवर्तित हो गया। सुजान उनसे वियुक्त हो गई परन्तु उसकी स्मृति की तीव्रता ने मानसिक रूप से उन्हें सुजान के समीप ही रखा। घनानन्द के काव्य पर दृष्टिपात करें तो उसमें संयोग सम्बन्धी कवित्तों की संख्या वियोग की तुलना में अत्यन्त अल्प है। जितने भी कवित्त हैं उन्हें पढ़ने से ज्ञात होता है कि कवि सुजान के साथ शारीरिक सामीप्य के सुख का सुयोग प्राप्त हुआ था। इस अल्प सुख का उन्होंने अत्यन्त खुले रूप में चित्रण किया है। डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने इस विषय में लिखा है—"घनानन्द की प्रेमानुभूति में शृंगार के संयोग या सम्भोग का हर्ष, उल्लास एवं सुख भी भरा हुआ है। यद्यपि घनानन्द ने थोड़े से शब्दों में ही प्रेम शृंगार के संयोग पक्ष का निरूपण किया है, जिसमें सम्भोग-सुख की उमंग, मिलन का उल्लास, आनन्द-क्रीड़ा की आतुरता, रति-सुख का उत्साह, सामीप्य लाभ का हर्ष, तथा संसर्ग की लालसा का उद्दाम वेग भरा हुआ है।" घनानन्द ने संयोग के वर्णनों में रीझ, उत्सुकता, लालच, रोम-रोम का आनन्द से भरना, तथा अंग-प्रत्यंग से प्रसन्नता फूटना, संयोग के समय शताधिक भावनाओं का तीव्र गति से आना प्रेमी का अपने शरीर पर से शासन उठ जाना आदि बातों का कैसा सजीव चित्रण किया है—

ललित उमंग बेलि आलबाल अन्तर ते,
आनन्द के धन सींची रोम-रोम ह्वै चढ़ी।
आगम-उमाह-चाह छायो सु उछाह रंग,
अंग-अंग फूलनि दुकूलनि परै कढ़ी।
बोलत बधाई दौरि-दौरि छबीले दृग,
दसा सुभ सगुनौती नोकें इन है पढ़ी।
कंचुकी तरकि मिले सरकि उरज, भुज,
फरकि सुजान चोप-चुहल महा बढ़ी।

घनानन्द ने प्रेम के संयोग वर्णन सम्भोग के खुले चित्र प्रस्तुत किये हैं। कहीं भी किसी भी प्रकार की झिझक और दुराव को मन में नहीं रखा। प्रिय के साथ संयोग में सम्भोग का सुख-संयोग की अन्तिम परिणति है, परन्तु बिचारे घनानन्द! वहां भी मानसिक उहापोह उनका पीछा नहीं छोड़ता। नायिका उनके आलिंगनपाश में जकड़ी हुई है, किसी प्रकार का विरोध नहीं कर रही, पर वहां प्रेमी के मन की आतुरता उसके मस्तिष्क पर अधिकार जमा लेती है। मन और मानस में द्वन्द्व होता है।

पौढ़ै घनआनन्द सुजान प्यारी परजंक,
धरे धन अंक तऊ मन रंग-गति है।
भूषण उतारि अंग अंगहि सम्हारि नाना,
रुचि के विचार सों समोय सीझि मति है।

ठौर-ठौर लै-लै राखै और और अभिलाषें,
बनत न भाखें तेहि जानें बसा अति है।
मोद-मोद छाकै घूमैं रीझि भीजि रस झूमैं,
गहैं चाहि रहै चूमैं अहा कहा रति है।

घनानन्द ने सुजान के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उसके प्रति अपने तीव्र अनुराग को व्यक्त किया है। सुजान के यौवन को देखकर प्रेमी उन्मत्त सा हो जाता है। उसको अत्यन्त समीप और नशे में छका हुआ देखकर प्रेमी के अंग-प्रत्यंग में काम की पिपासा जाग उठती है। हृदय में काम जागते ही मुख पर पसीने की बून्दें झलक उठती है और एक टक अपनी 'प्यारी' को निहारते हैं, हवा में उड़ते हुए उसके पीत वस्त्र हृदय की व्याकुलता को और बढ़ावा दे रहे हैं। कांपते हुए हृदय से वह उसे अपने पास खींचते हैं, आलिंगनबद्ध करने को और प्रेमिका सुजान लाज में सिमटती हुई, हँसते हुए नेत्रों से प्रेमी को सींच देती है—इससे बड़ा सुख तो सम्भवतः घनानन्द ने चाहा भी न होगा—

रति-सुख स्वेद ओप्यो आननि बिलोकि प्यारी,
प्राणति सिहाय मोह-माविक महा—छकै।
पीत पट छारे लै लै ढोरत समीर धीर,
चुम्बन की चायनि लुभाय रहि न सकै।
परसि सरस विधि रूचिर चिबुक त्यौंही,
कंपति करनि केलि-चाव-दांव ही तकै।
लाजनि लसौंही चितवनि चाहि जान प्यारी।
सींचति आनन्द घन हांसी सो भरी नकै।

घनानन्द ने संयोग ने चित्र दो प्रकार से चित्रित किये हैं। एक रीतिबद्ध शैली में अर्थात् नायक व नायिक की कामोत्तेजक चेष्टाओं, सकेतों, रति क्रीड़ाओं आदि का वर्णन और दूसरे प्रकार के चित्रों में संयोग वर्णन रीतिमुक्त है। परन्तु रीतिमुक्त होते हुए भी वर्णन लगभग रीतिबद्ध कवियों का सा है। प्रथम प्रकार के वर्णनों में पूर्व सम्भोग दशा, सम्भोग दशा और सम्भोग पश्चात् की दशाओं का वर्णन लिया जा सकता है। रति क्रीड़ा से पूर्व की समस्त तैयारी, जैसे नेत्रों का मिलना, दृष्टि में चंचलता, आँखों में काम का निमन्त्रण, स्पर्श, आलिगन, चुम्बन, मस्तक पर स्वेद कणों का आना और सम्भोग के समय हृदय की आतुरता, व्याकुलता, आनन्दातिरेक, सुध का खोना तथा सम्भोग उपरान्त शैथिल्य, विश्रान्ति आदि का वर्णन मिलता है। इन समस्त वर्णनों में कथ्य में किसी भी प्रकार की नवीनता नहीं है। सम्पूर्ण चित्रण परम्परागत है। इस दृष्टि से घनानन्द में और रीतिबद्ध कवियों में कोई अन्तर नहीं। यदि कुछ भेद देखना हो तो वर्णन शैली में देखा जा सकता है, रीतिबद्ध कवियों ने यही वर्णन लक्षण उदाहरण शैली में किया था, क्योंकि उन्होंने एक ओर अपने कवि-कर्म

को पूरा करना था तो दूसरी ओर कवि-शिक्षा के ग्रन्थ लिखकर 'आचार्य' के पद को प्राप्त करना था—परन्तु घनानन्द के साथ इस प्रकार की कोई समस्या नहीं थी। सम्भोग के खुले चित्र उन्होंने अवश्य दिये हैं और खूब दिये हैं, परन्तु उनमें उनकी आत्माभिव्यक्ति की छाप स्पष्ट दीखती है। विषय वही होते हुए भी वह चर्वित चर्वण प्रतीत नहीं होता क्योंकि कवि का ढंग अपना है, शैली अपनी है, अनुभूति और अभिव्यक्ति में पूर्ण स्वतन्त्रता है। इसी कारण परम्परागत वर्णन होते हुए भी वे अधिक चित्रात्मक बन पड़े हैं जैसे—

(क) बोलत बधाइ दौरि-दौरि के छबीले दृग
बसा सुभ सगुनौती नोकें इन है पढ़ी।
कंचुकी तरकि मिले सरकि उरज, भुज,
फरकि सुजान चोप-चुहल महा बढ़ी।

(ख) केलि की कला निधान सुन्दरि महासुजान,
आन न समान छवि छांह पं छिपैयै सौंनि।
माधुरी मुदित मुख उदित सुसील भाल
चंचल बिसाल नैन लाज भीजिए चितौनि।

(ग) पिय अंग संग घनआनन्द उमंग हिय,
सुरति तरंग, रस बिबस उर-मिलौनि।
झुलनि अलक आधी खुलनि पलक, स्त्रम,
स्वेदहिं झलक भरि ललक सिथिल हौनि।

घनानन्द ने सम्भोग के अनेक चित्र अन्यत्र भी दिये हैं जिनमें से कुछ तो नायिका के रात्रि-सुख भोगने पर प्रातः की मानसिक और शारीरिक दशा का वर्णन है जैसे वह उठकर जम्हाइयाँ ले रही है—नेत्रों में रात्रि की मादकता की लाली है, शरीर रति-सुख के मद से छलक रहा है और वह बिहारी की नायिका के समान इठला

'सूधे पग न धर सकत सोभा ही के भार'

रही है। मुख पर तृप्ति और प्रसन्नता की झलक है।

रस मारस भोय उठो कछु सोय लगी लसैं पीक पगी पलकैं।
घनआनन्द ओप बढ़ी मुख औरैं सुफलि फबीं सुथरी अलकैं।
अंगराति जम्हाति लजाति लखैं अंग-अंग अनंग दिपै झलकैं।
अधरानि में अधियै बात धरै लड़कानि की आनि परै छलकैं।

(घनानन्द का प्रेम वास्तव में संयोग पक्ष में अधिक नहीं उभरा क्योंकि उनके सम्पूर्ण साहित्य में भक्ति और वियोग संबंधी पदों, कवितों और छन्दों की संख्या अधिक है) कारण स्पष्ट है, उनको अपने जीवन में संयोग-सुख इतना कम मिला कि वे उसे पूरी तरह भोग नहीं पाये। संयोग जन्य तृप्ति का उनके काव्य में अत्यन्त अल्प वर्णन

है। वे तो 'प्रेम की पीर' के कवि थे। तड़प ही उनका जीवन था और सुजान-स्मृति उस जीवन का पाथेय। फिर भी जितना भी वर्णन हमें संयोग का मिलता है, उसमें कहीं सुरुचि की प्रधानता है। रीतिबद्ध कवियों की-सी कुत्सा, कुण्ठा, अश्लीलता का उसमें कहीं लेश भी नहीं है। इन्द्रियों की हर भावना, वासना को उन्होंने उन्मुक्त भाव से कह दिया है। सुजान के साथ संयोग सुख भोगते समय उनका ध्यान स्थूल शारीरिक चेष्टाओं की अपेक्षा मानसिक दशा पर अधिक है। इसी कारण शुद्ध कामुकता का उसमें सर्वथा अभाव है। वे तो वास्तव में 'रीझ' के कवि हैं। अपनी 'रीझ' के हाथ वे बुरी तरह से बिक चुके हैं, अपने शरीर पर से उनका शासन उठ गया है क्योंकि बुद्धि जो शरीर को चलाती है, वह दासी बन गई है—

रीझ सुजान सची पटरानी,
बची बुधि बावरी ह्वै कर दासी।'

इसी कारण से उन्हें 'रीझ' पर बड़ा नाज है। परन्तु बिचारे घनानंद, उनका संयोग भी वियोग से सम्पृक्त है, वियोग, संयोग भी पीछा नहीं छोड़ता।

संयोग में वियोग

हिन्दी साहित्य में शायद ही कोई ऐसा कवि हुआ हो जिसे संयोग में भी वियोग में भी सालता है। प्रेमी तो मरकर भी साथ रहनें की कसमें खाते हैं, दुआएं मांगते हैं लेकिन घनानन्द अपने इस प्रेम-क्षेत्र के निराले पथिक थे। मन में अनेकानेक अभिलाषाएं भरी पड़ी हैं, हृदय तो क्या रोम-रोम प्रिय के दर्शन चाहता है परन्तु दर्शन होते हैं भागकर आंसू प्रिय मिलन के लिये पहले भाग पड़ते हैं। जब आंसू से नेत्र लबालब हैं तो संयोग कैसे हो, स्वयं कवि भी दुविधा में है—

यह कैसो संजोग न बूझि परै,
कि बियोग न क्यों हूं बिछोहत है।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपनी पुस्तक घनानंद कवित्त की भूमिका में लिखा है—"घनानंद की प्रेम साधना इसलिये चरम साधना के रूप में प्रतिष्ठित है। उसकी चरम साधना सामान्य प्रेम प्रवाह में बहुत आगे है। विरह में मंजिष्ठा रोग हो जाता है प्रेम का पूरा परिपाक हो जाता है या प्रेम का योग न होने से वह राशीभूत हो जाता है, यह साहित्य परम्परा कहती चली आ रही है, पर वहां प्रेम की वह चरम साधना नहीं दिखाई देती जहां वियोग में ही संयोग में भी वियोग का अनुभव होता रहता है। प्रिय के वियोग में ही नहीं संयोग में भी अशांति साथ नहीं छोड़ती। प्रिय के वियोग की आशंका संयोग में भी बनी रहती है। संयोग में भी वियोग का अनुभव।"

संयोग में भी वियोग की आशंका, खटक प्रेमी को हर समय अधीर करती रहती है—

हिलग अनोखी क्यों हूं धीर न धरत मन,
परि पूरे हिय मैं धरक जागियै रहै।

मिले हू मिले को सुख पाय न पलक एको,
निपट बिकल अकुलानि लागियै रहै।

संयोग में वियोग की स्थिति की चर्चा कवि ने अनेक प्रकार से अनेक स्थानों पर की है। कई स्थानों पर ऐसा प्रतीत होता है मानो कृष्ण की भक्ति के वशीभूत होकर वे अपने आराध्य के दर्शन चाहते हैं और उनके सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए 'महा-मोह' की चर्चा करते हैं। अपने हृदय की इस अद्भुत लगन को वे स्वयं भी समझने में असमर्थ हैं जो बिछुड़ने के बाद तो मिलना चाहता है और मिलने के बाद उस संयोग सुख का आनन्द ही नहीं उठा पाता क्योंकि मिलन समय में यह 'खरक' उसे मार डालती है कि यह मिलन शाश्वत नहीं केवल थोड़े समय का और यह थोड़ा समय बीतते ही वियोग का साम्राज्य छा जायेगा—

मोहन अनूप रूप सुन्दर सुजान जू को,
ताहि चाहि मन मोहि दसा महा-मोह की।
अनोखी हिलग दैया, बिछुरै तौ मिल्यो चाहे,
मिले हू में मारे और खरक बिछोह की।

वैसे तो सभी प्रेमी प्रेम में आँसू बहाते हैं बिहारी की नायिका के आंसुओं की बाढ़ में पूरा नगर बह जाने की आशंका होती है लेकिन कहीं भी किसी कवि ने आँसुओं को वह महत्त्व नहीं दिया जो घनानन्द ने। प्रेमी आँसू बहाकर दुनिया को बताता है कि उसका प्रिय कितना निर्दयी है परन्तु घनानन्द को आँसुओं से बहुत शिकायत है। उधर आँसू उसका पीछा नहीं छोड़ते उधर रात्रि पर्यन्त नींद नहीं आती। प्रिय मिलते हैं तो भाग कर जैसे आँसू पहले ही उनके दर्शन कर लेना चाहते हैं और संयोग नहीं हो पाता। स्वप्न सयोग से भी दिल को शान्त किया जा सकता है पर वह भी उसके भाग्य में नहीं बदा—

साधनि ही भरिये भरिये,
अपराधनि बाधिनि के गुन छावत।
देखौं कहा? सपनो हू न दैखत,
नैन यौं रैनि-दिना झर लावत।
जो कहूं जान लखै घनआनन्द,
तौ तन नेकु न औसर पावत।
कौने वियोग-भरे अंसुवा,
जु संयोग में आगेई देखन धावत।

घनानन्द के प्रेम काव्य में अधिकतर वर्णन वियोग के हैं क्योंकि वास्तव में यह विरह की पीर, प्रेम की पीड़ा के कवि हैं, फिर भी संयोग का सुख तो उन्होंने अवश्य भोगा और छक कर भोगा, इसी कारण विरह में इतनी तीव्रता है, पीड़ा है, दंश है। ऊपर संयोग में वियोग की स्थिति का चित्रण दर्शाया गया है लेकिन घनानन्द ने कुछ

कवित्त ऐसे भी लिखे हैं जिनमें वियोग में भी संयोग की विद्यमानता कही गई है—हृदय में तो प्रिय रहता ही है, आंखों में भी झूला करता है। भले ही वह पार्थिव रूप से दूर हो, वियुक्त होकर स्मृति उसे वियोग में भी समीप ला बैठाती है—

ऐसे कहौं कैसे घनआनन्द बताऊं दूरि,
मन-सिंघासन बैठे सुरति महीप ही।
दीठि आगे डोलो जो न बोलो कहा बस लागै,
मोहि तो वियोग हू मैं दीसत समीप हैं।

घनानन्द का विरह-वर्णन

प्रेम के दो पक्ष होते हैं, संयोग और वियोग। संयोग में प्रेमी प्रेमिका के साथ-साथ रहते हैं और वियोग में किसी भी कारण से परस्पर सान्निध्य टूट जाता है। कहते हैं प्रेम सच्चा है कि नहीं, इसकी कसौटी विरह है। संयोग में तो एक दूसरे के महत्त्व का पता नहीं चलता परन्तु वियोग होते ही 'प्रेमी' की व्याकुलता सिद्ध कर देती हैं कि प्रेम सच्चा था। घनानन्द ने अपने जीवन में सुजान से प्रेम किया और इतना कियाकि सुजान के अतिरिक्त उन्हें कुछ दीखता न था, सूझता न था। यह नहीं कह सकते कि सुजान ने घनानन्द से प्रेम नहीं किया। उसने प्रेत तो किया पर घनानन्द सा नहीं। तभी तो साथ चलने से इंकार किया सुजान का मना करना ही घनानन्द के नये जीवन का आरम्भ था। वैभव और सम्मान को ठुकरा वे मुहम्मद शाह रंगीले के दरबार से सुजान की स्मृति को सीने से लगाये निकल पड़े। जीवन पर्यन्त सुजान की याद उनकी अमूल्य निधि रही। इनके काव्य का अधिकांश भाग सुजान के विरह में लिखा गया प्रेम काव्य है। हिन्दी साहित्य में इन्हें 'प्रेम की पीर' का कवि कहा जाता है। मीरा सी व्याकुलता और सूर की गोपियों सी दृढ़ता हमें इनके प्रेम कवित्तों में मिलती हैं। घनानन्द का विरह काव्य अपने प्रिय के प्रति उत्कट चाह, तीव्र आकांक्षा सुदृढ़ लालसा एवं उद्दाम आकुलता का काव्य है। उसमें रीतिबद्ध कवि का सा बाह्य आडम्बर नहीं है जिसमें नायिका विरह के समय व्याकुल होकर रात-रात भर करवटें बदलती हैं तो उसके शरीर पर गुलाब की पंखरियों से खरोंच आ जाती है अथवा गुलाब जल की पूरी शीशी विरहणी केऊपर उड़ेली जाती है, परन्तु विरह ज्वाल की अधिकता के कारण वह उस तक न पहुंच कर रास्ते में ही सूख जाती है। वह हर समय विरह के हिंडोले पर सवार रहती है—इस प्रकार की कोई उक्ति इनके काव्य में न मिलेगी। इनमें तो अनुभूति की तीव्रता है, अन्तःकरण की सात्विक वेदना का आधिक्य है और बाह्य आडम्बर लेशमात्र भी नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही लिखा है—"यद्यपि इन्होंने संयोग और वियोग दोनों पक्षों को लिया है, पर वियोग की अन्तर्दशाओं की ओर ही इनकी दृष्टि अधिक है। इसी से इनके वियोग सम्बन्धी पद प्रसिद्ध हैं। वियोग वर्णन भी अधिकतर अन्तर्वृत्ति निरूपक है, बाह्यार्थ निरूपक नहीं घनानन्द ने न तो बिहारी की तरह विरह ताप को बिहारी माप से मापा है, न बाहरी उछल कूद दिखाई है। जो कुछ हलचल हैं वह भीतर है—बाहर से वह वियोग प्रशान्त

और गम्भीर है, न उसमें करवटें बदलना है, न सेज का आग की तरह से तपना है, न उछल-उछल कर भागना है (उनकी 'मौनमधि-पुकार' है)' घनानन्द के विरह वर्णन के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से आलोचना की है, परन्तु एक बात सभी में समान रूप से मिलती हैं और वह है इनकी 'प्रेम की पीर'। सभी ने इनकी 'पीर' को विलक्षण माना है और उससे अधिक पीर की अभिव्यक्ति। सामान्यत: दुख में व्यक्ति रोता है, चीखता है, पर इनकी पुकार मौन है। डा० कृष्णचन्द्र वर्मा ने इसकी विरह व्यथा के सम्बन्ध में लिखा है—"इसमें सन्देह नहीं कि घनानन्द की विरह-व्यथा अपरिचित थी। बहुत कुछ कह जाने के बाद भी काफी कुछ कहने को रह गया है, ऐसा तो हमें ही प्रतीत होता है, पर घनानन्द की प्रतीत इससे बहुत आगे है।"

प्रेम की व्यथा, उसकी पीड़ा मधुर है। वह ऐसी व्यथा है कि प्रेमी उस से मुक्ति नहीं पाना चाहता। सामान्यत: जीवन में जब व्यक्ति पर कोई कष्ट, आपत्ति आती है तो वह सौ-सौ यत्नों के द्वारा उसे दूर करने की चेष्टा करता है परन्तु घनानन्द के सम्बन्ध में विलक्षणता दृष्टिगोचर होती है। सुजान का सान्निध्य भगवान ने छीन लिया परन्तु उसकी स्मृति को वे किसी कीमत पर छोड़ना नहीं चाहते, चाहे उस से कितने ही कष्ट क्यों न हो। प्रिया के वियोग में उसके हृदयाकाश पर विरह के बादल हर समय छाये रहते हैं और हृदय रूपी सागर पर दिन रात आँसुओं की वर्षा होती रहती है। इस प्रकार की अनोखी दशा में वह प्रिय को पत्र लिखे भी तो कैसे? हर समय नेत्र विरह जल में डूबे रहते हैं—

विरह कवि सौं घट व्योम त्चयौं,
बिजुरी सी खिवै इकली छतियां।
हिय सागर तै दृग मेघ भरे,
उघरे बरसैं दिन कौ रतियां।
घनाआनन्द जान अनोखी दसा,
न लखौं दई वैसे लिखौं पतियां।
नित सावन दीठि सु बैठक मैं,
टपकै बरुणी तिहि ओलतियां।

घनानन्द ने अपनी आत्मदशा का निवेदन करते हुए कहा है कि मेरी विरह-यातना की व्याकुलता की कोई भी प्रेमी समता नहीं कर सकता क्योंकि इस विश्व में प्रेमियों की विरह जन्य व्याकुलता के लिये पतंग (शलभ) और मीन (मछली) का उदाहरण दिया जाता है, पर मेरी दृष्टि में विरह का सच्चा स्वरूप प्रेमी की तड़प में दृष्टिगत होता है जहां वह मरने की कामना नहीं करता अपितु जीते जी विरह की ज्वाला में जलता और जीता रहता है—

हीन भये जल मीन अधीन,
कहा कछु मो अकुलानि समानै।

नीर सनेही को लाय कलंक,
निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यों समुझै,
जड़ मीत के पानि परे को प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनन्द,
जीव की जीवनि जान ही जानै।

इस प्रकार घनानन्द के प्रेम की परि की समानता मीन तथा जल के प्रेम से नहीं की जा सकती। उनका प्रेम तो उदात्त, ललित और स्वच्छन्द है।

सुजान के विरह में हर समय वियोग की भट्टी हृदय में जलती रहती है और उसकी उमस से प्रेमी के प्राण व्याकुल हो रहे हैं, उद्वेगों की आग से अंगों में छाले पड़ गये। और नेत्र विचित्र प्रकार की बरखा से घिरे पड़े हैं। विरह धन में सुजान का मुख चन्द्र कहीं भी दिखाई नहीं देता और विरह जन्य व्याकुलता शोभित नहीं होती—

अन्तर-आंच उसास तचै आति,
अंग उसीजै उदेग की आवास।
ज्यौं कहलाय मसोसनि उमस,
क्यों हूँ सु धरै नहीं थ्यावस।
नैनउ धारि विये बरसैं,
घनआनन्द छाई अनोखिये पावस।
जीवन मूरति जान को आनन,
है बिन हेरें सदाई अमावस।

घनानन्द के विरह-वर्णन में जितना भी लिखा जाय कम है क्योंकि इस 'प्रेम की पीर' के कवि ने अगर कुछ लिखा है तो 'विरह' है। वह विरह इतना गम्भीर है, अथाह है कि उसकी थाह पाने के लिए—

समुझै कविता घनआनन्द की,
हिय आंखिन नेही की पीर तकी।

की आवश्यकता है। यह सर्वसाधारण की समझ के बाहर की वस्तु है। इसे तो कोई रसिक ही समझ सकता है जिसने प्रेम को पीड़ा को हृदय की आँखों से साकार देखा हो।

प्रेम वैषम्य

घनानन्द के प्रेम वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता है वैषम्य। रीतिकालीन कवियों ने प्रिय की उपेक्षा, तिरस्कार का वर्णन बहुत बढ़ा-चढ़ाकर किया है उसमें कहीं तो अतिशयोक्ति आ गई है और कहीं अश्लीलता अथवा अन्यत्र पिछली मनोवृत्ति का दिग्दर्शन होता है परन्तु प्रेम की विषमता का जितना साफ सुथरा वर्णन और गम्भीर

चित्रण घनानन्द ने किया है, उतना अन्य किसी कवि ने नहीं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य का इतिहास में लिखा है—"प्रेम की अनिर्वचनीयता का आभास घनानन्द ने विरोधाभासों द्वारा दिया है। उनके विरोधमूलक वैचित्र्य की प्रवृत्ति का कारण यही समझना चाहिये।" विरोधमूलक वैचित्र्य से सम्भवत: शुक्ल जी का संकेत प्रेम-वैचित्र्य की ओर ही रहा होगा। वास्तव में घनानन्द का (व्यक्तिगत जीवन ही वैषम्यों का भण्डार रहा) और इसी कारण से उनका काव्य भी इससे ग्रस्त हो गया। सुजान को चाहा, अपेक्षित प्रत्युत्तर नहीं मिला, राज्य से निष्कासन के समय साथ चलने को कहा, उसने इन्कार कर दिया—हृदय से जितनी बार भी सुजान को भूलने के लिए कहा, उसने एक न सुनी। यही सब बातें हैं, जिनके कारण उन्हें वैषम्य से प्रेम हो गया—

चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै आनन्दघन,
प्रीति रीति विषम सु रोम-रोम रमी है।

'हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य' नामक पुस्तक में डॉ० ओमप्रकाश ने इस सम्बन्ध में बहुत ही सुन्दर लिखा है—"प्रेम एक विषय दशा है, यह सबपे बुरी भी है और सबसे अच्छी भी। जो मिटना चाहता है, उसके लिए प्रेम के समान कोई दूसरी वेदी नहीं और जो लाभ-हानि का हिसाब रखता है, उसे इस मार्ग पर भूलकर भी कदम नहीं उठाना चाहिए। इसलिए प्रेमी मर-मरकर अमर होता है, सर्वस्व खोकर जीवन का फल प्राप्त करता है। प्रेमियों ने इन विरोधी भावों को चमत्कारिणी उक्तियों द्वारा अभिव्यक्त किया है। घनानन्द इस क्षेत्र में सजातियों से आगे हैं।"

घनानन्द के सम्पूर्ण काव्य में जो भाव सर्वाधिक मिलता है, वह प्रेम-वैषम्य ही है। शताशत छन्दों, कवित्तों में अनेकानेक प्रकार से प्रेम की विषमता की चर्चा की गई है। सुजान की निष्ठुरता, निर्मोहिता और उदासीनता ने घनानन्द के जीवन को विषमता की चट्टान बनाकर रख दिया था। इधर वे हर सांस से सुजान को याद करते थे, प्रत्येक बार पलक झपकती, तो दो बूंद आँसू धरती पर ढुलका देती और उधर सुजान की बेफिक्री, एक ओर सघन स्मृति, दूसरी ओर शुद्ध विस्मृति। इन सभी कारणों से उनकी सम्पूर्ण भावना वैषम्यपरक हो गई। डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा के शब्दों में—"वस्तुत: यह विरोध और विपरीतता की प्रकृति कवि में इतनी बद्धमूल थी, संस्कार रूप में व्याप्त हो चली थी कि विषमता-रहित उक्ति विधान उनके लिए संभव ही न था। नाना प्रकार के विरोधमूलक कथनों के मूल उत्स तथा उनके सौन्दर्य की समस्त भंगिमाओं का उद्घाटन अपने-आप में एक स्वतन्त्र और महत्त्वपूर्ण कार्य है।"

घनानन्द ने अपने काव्य में प्रेम-वैषम्य को दिखाने के लिए कई स्थानों पर विरोधाभास तथा निदर्शना आदि अलंकारों का आश्रय लिया है। इन्हीं के द्वारा वह प्रेम की विषमता को और अधिक तीव्र कर पाये हैं। कुछ आलोचकों जैसे डॉ० मनोहरलाल गौड़ इत्यादि ने इनकी प्रेम विषमता के सम्बन्ध में लिखा है कि वह

विशुद्ध भारतीय नहीं है, अपितु फारसी कवियों की देन है, क्योंकि फारसी कवियों का दृष्टिकोण पीड़ापरक था—इसी कारण प्रेम की पीर उनके काव्य में उमड़ पड़ी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इनकी 'प्रेम की पीर' को फारसी काव्य द्वारा प्रभावित बताया है, क्योंकि सूफी कवियों का प्रतिपाद्य विषय ही 'प्रेम की पीर' था और उन्होंने उसे सिद्धान्त रूप में ग्रहण भी किया। सूफी-दर्शन में प्रेमी सम्पूर्ण सृष्टि में विरह का दर्शन करता है, समग्र सृष्टि को विरह के बाणों से विद्ध मानता है। सूफियों की इसी भावना को स्वच्छन्दधारा के कवियों ने ग्रहण किया और अपने काव्य में स्थान दिया। सूफी और फारसी दोनों कवि वियोग को साहित्य में प्रमुखता देते हैं और उनके मत में वियोग ही वह शाश्वत तत्त्व है, जिसके कारण प्रेमी साधना करता है। स्वच्छन्दधारा के कवियों और विशेषतः घनानन्द ने फारसी काव्य-पद्धति से प्रिय की कठोरता और सूफी कवियों से प्रेम की पीर की प्रेरणा ली है। फलतः उनकी रचनाओं में वियोग का प्राधान्य स्वाभाविक है।

घनानन्द की प्रेमाभिव्यंजना मुख्य रूप से विरह की ही अभिव्यक्ति है। अनेक स्थलों पर उन्होंने विभिन्न प्रकार से अपनी दुखी आत्मदशा का वर्णन किया है—

बात अनोखी कहा कहिये,
सुनि बैठे सरै न करै कछु कीबो।
देखत देखत सूझि परै नहीं,
बूझत बूझत बौरई लीबो।
ऐहो सुजान दुहेली दसा,
दुख हाथ लगै हू न छीजत छीबो।
है घनआनन्द सोच महा,
मरिबो अनमीच बिना जिय जीबो।

विरही व्यक्ति दुःख में बावला हो जाता है। एक ही बात को बार-बार कहता है, फिर भी उसे तृप्ति नहीं होती कि उसने अपनी मनोव्यथा को अभिव्यक्त कर दिया है। जितनी बार अपने मन की बात कहता है, लगता है पहली बार ही कह रहा हो। घनानन्द में यह प्रवृत्ति बहुलता से मिलती है। ऊपर जिस कवित्त में अपनी 'विकट दशा' का वर्णन किया है—

अन्तर उदेग दाह, आँखिन प्रवाह आँसू,
देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है।
सोयिबो न जागिबो हो, हँसिबो न रोयबो हू,
खोय खोय आप ही में चेटक लहनि है।

घनानन्द ने अपने विरह की तीव्रता को विभिन्न प्रकार के चित्रों द्वारा चित्रित किया है। कहीं तो परम्परागत चन्द्र चकोर को ले आये हैं और अन्यत्र वैद्यकी के शब्दों द्वारा उसे अभिव्यक्त किया है। निम्न पद में कवि ने अपनी विरह और पीड़ा

से दग्ध हृदय की तुलना 'भसमी बिथा' से की है। यह एक ऐसा रोग है, जिसमें रोगी को बहुत भूख लगती है और वह सामान्य मनुष्य से कहीं अधिक मात्रा में भोजन करता है, फिर भी उसकी भूख शान्त नहीं होती है। यहाँ आँखें प्रिय के दर्शन की तीव्र लालसा से युक्त हैं, आँखों में भीषण जलन होती है। प्रिय-दर्शन का अंजन ही एकमात्र औषधि है, परन्तु वह अप्राप्य है। तीव्र मुमुक्षा और तीव्र दर्शनेच्छा दोनों को कवि ने 'भसमी-बिथा' द्वारा सिद्ध किया है—

> घेर घबरानी उबरानी ही रहित घन,
> आनन्द आरति-राती साधनि मरती है।
> जीवन आधार जान रूप के आधार बिन,
> व्याकुल बिकार भरी खरी सुजरति है।
> अतन-जतन ते अनखि अरसानी बीर,
> प्यासी पीर भीर क्यों धीर न धरित है।
> देखिये दसा असाध अँखियाँ निपेटिनी की,
> भसमी बिथा पै नित लंघन करति हैं।

इस प्रकार नाना रूपों में कवि ने स्वतंत्र छन्दों में अपनी परम दुखदायी वियोग दशा का चित्रण किया है। कहीं नेत्रों द्वारा, कहीं स्मृति द्वारा, कहीं ऋतुओं की परिवर्तनशीलता उसके विरह को और अधिक प्रज्ज्वलित करती है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

(क) अँखियाँ दुखियानि कुबानि परी,
न कहूँ लगैं कौन घरी सु लगी।

(ख) तब तौ छबि पीवत जीवत थे,
अब सोचन लोचन जात जरैं।

× × ×

तब हार पहार से लागत थे,
अब आनि के बीच पहार परैं।

(ग) चेटक-रूप-रसीले सुजानि! दई बहुतै बिन नेकु दिखाई।
कौंध में चौंध भरे चख हाय! कहा कहौं हेरनि हासे हिराई।

(घ) बूंद लगैं सब अंग दगैं, उलटी गति आपने पापनि देखी।
पौन सों जागति आगि सुनी ही, पै पानी सों लागति आँखिन देखी।

(च) नेह निधान सुजान समीप तौं सींचति ही हियारा सियराई।
सोच किधौं अब और भई, दई हेरति ही मति जात हिराई॥
है बिपरीति महा घनआनन्द अम्बर तें धर कों झर आई।
जारति अंग अनंग की आँचनि जोन्ह नहीं सु नई अगिलाई॥

उपर्युक्त उदाहरणों में विरह का वर्णन वैषम्य सहित है, परन्तु कुछ छन्द तो इतने सीधे और स्पष्ट हैं कि ऐसा प्रतीत होता है मानों अपने काव्य में प्रेम की इस विषमता के सम्बन्ध में कवि ने जान-बूझकर सिद्धान्त रूप में वे कवित्त रचे हों—जब कि वास्तव में ऐसा है नहीं। कवि को जीवन में इतना निरादर, उपेक्षा और विषमताओं का सामना करना पड़ा कि—

(क) जान प्यारे प्राननि बसत पै आनन्दघन,
विरह विषम-दसा मूक लौं कहनि है।

(ख) और जे सवाद घनआनन्द बिचारै मौन,
विरह विषम जुर जीवो करुवो लगै।

(ग) विषम उदेग-आगि लपटैं अंतर लागैं,
कैसे कहौं जैसे कछु तचनि महा तई।

(घ) मीठे मीठे बोल बोलि, ठगो पहिले तौं तब,
अब जिय जारत कहौ धौं कौन न्याय है।
सुनी है कै नाहीं यह प्रकट कहावति जू,
काहू कलपाय है सु कैसे कल पाय है।

(च) तोहि चैन चाँदनी मैं सरसै छब सुधा,
सोहि जारै बारै ह्वै विषाद को अरक है।
कहूँ घनआनन्द घमंडि उघरत कहूँ,
नेह की विषमता सुजान अतरक है।

प्रेम की विषमता के विषय में घनानन्द ने इतना लिखा है और सुन्दर लिखा है कि लगता है वियोग पक्ष का सारा सौन्दर्य प्रेम वैष्णव में सिमट आया हो। डॉ० कृष्ण चन्द्र वर्मा के शब्दों में—"इसमें सन्देह नहीं कि प्रेम-विषमता का घनानन्द से बड़ा पोषक हिन्दी संसार में दूसरा नहीं है। हिन्दी सूफी कवियों में भी वह प्रेम-वैषम्य कहाँ, जो घनानन्द के विरह काव्य का प्राण है। 'प्रेम की पीर' और 'प्रेम विषमता' ये मानो घनानन्द के विरह काव्य की मूल्यवान भाव सम्प्रदायें हैं। इन्हें निकाल देने पर फिर उसमें कुछ नहीं रह जाता।"

प्रेम का उदात्तीकरण

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में छायावाद जिस प्रकार रहस्यात्मकता से ग्रस्त हो गया था, उसी प्रकार घनानन्द का प्रेम-काव्य भी लौकिक प्रेमपरक अनुभूतियों को पार करके अलौकिक से जुड़ गया। 'सुजान' शब्द का प्रयोग कवि ने उभय रूप में किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रेम का प्रारम्भ मुहम्मद शाह रंगीले के दरबार की 'सुजान' वेश्या को लेकर हुआ, परन्तु उसके तिरस्कार का यह परिणाम हुआ कि कवि का मन इस निर्मोही संसार की स्वार्थपरता से ऊपर उठ कर सच्चे

सु+ज्ञान में परिणत हो गया और प्रेम तथा भक्ति का समन्वय हो गया। कवि के जीवन के अन्तिम वर्ष राधा-कृष्ण की आराधना करते हुए वृन्दावन में बीते थे और उन्होंने भगवद्भक्ति को अपने जीवन का चरम लक्ष्य बना लिया था—

मोहन-सोहन-जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति।
कान्ह परे बहुतायन में, इकलैन की वेदन जानो कहा तुम॥

वास्तव में 'सुजानहित' में अनेकों ऐसे छन्द मिलते हैं, जिनमें कवि के प्रेम के उदात्तीकरण का पता चलता है। भक्तिकाल के लगभग सभी कवि संस्कारवश भक्त बने थे, परन्तु घनानन्द की रचनाओं से ऐसा लगता है कि वे जीवन के अन्तिम समय में निराश हो कर भगवदोन्मुख हो गये थे। 'सुजानहित' में जहाँ एक ओर लौकिक प्रेम परक छन्दों की कमी नहीं हैं, वहीं जीव को प्रबोधन देने वाले वैराग्य-परक छन्द मिलते हैं, जिनके पढ़ने से ऐसा लगता है कि ये विरक्तिमूलक भाव विरह-व्यथा से ही उत्पन्न हों। घनानन्द को तो प्रेम करना था—वह प्रेम जब उन्हें जीवन में न मिला तो उनके प्रेमानुराग का भंडार कृष्ण की ओर ढुलक पड़ा। उन्होंने अपने ध्यान को सब ओर से खींच कर कृष्ण में केन्द्रित कर दिया—

सब ओर तें ऐंचि कै कान्ह किसोर में,
राखि भलो थिर आस करे।

(घनानन्द को 'ब्रज' से अत्यन्त प्रेम था) क्योंकि वही तो उनके प्यारे की निवास-भूमि थी। वही ब्रज जहाँ नित्य नये त्योहारों का मेला लगा रहता और सुख का सागर हिलोरें लेता। नेत्रों को अगर कहीं आनन्द मिलता है तो ब्रज में।

यह ब्रज नित सुख सिंधु कलोलें।
ब्रज को चन्द सदा ब्रज डोलै॥
आँखिन को सुख ब्रज बरसन है।
आनन्दघन बरसन सरसन है॥
अहो भाग या ब्रज को लखौं।
ब्रज की सींव न कबहूँ रखौं॥

प्रेम साधना करते समय प्रेमी के समस्त ज्ञान का लोप हो जाता है और वास्तव में ज्ञान की आवश्यकता ही नहीं रहती, क्योंकि ज्ञान का सम्बन्ध बुद्धि है, मस्तिष्क से और प्रेम का सीधा हृदय से। इस सम्बन्ध में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है—"इस प्रेम की साधना के लिए ज्ञान की दृष्टि अपेक्षित नहीं है। प्रेम की साधना से पीड़ा भी मधुर हो जाती है। माधुर्य का कारण यह है कि प्रेम की चरम अवस्था पर पहुँचने पर जगत् के द्वन्द्व भाव का विनाश हो जाता है। ज्ञान भेद कराने वाला है और प्रेम या राग अभेद उत्पन्न करने वाला।

× × ×

हर्ष का अर्थात् आनन्द का पूर्ण अनुभव बिना विषाद की अनुभूति के नहीं हो

सकता। इसलिए विषाद भी आनन्द की साधना का अंग बन जाया करता है। प्रेम की ऐसी परम दृष्टि जिसे हो, उसी की दृष्टि दृष्टि है अन्यथा अन्य आँखें मोरपंख की भाँति जड़ हैं—

जान प्राण प्यारे के बिलोकें अविलोकिबे कों,
हरष विषाद स्वाद वाद अनुमान हों।
चाह मीठी पीर जिन्हें उठती आनन्दघन,
तेई आँखें साखें और पाँखो कहा जानही।

घनानन्द में जहाँ-जहाँ रहस्यवाद आया, वह सूफी प्रभाव के कारण ही। यह उनके प्रेम का उदात्तीकरण ही है --

जो बुरा देखति हौं घनआनन्द रैन-दिन बिना जान सुतंतर।
जानै वेई दिन राति, बखाने ते जाय परै दिन राति को अंतर।

घनानन्द की प्रेमाभिव्यक्ति अत्यन्त गम्भीर है। उसकी थाह पाना साधारण सहृदय के बस के बाहर की बात है। वास्तव में उनका प्रेम असाधारण था, विरह असाधारण था और प्रेम का उदात्तीकरण अलौकिक था। उनकी इस मूल्यवान निधि को ब्रजनाथ ने भली प्रकार समझा और ठीक ही लिखा है—

नेही-महा, ब्रजभाषा प्रवीण औ,
सुन्दर तानि के भेद को जानै।
जोग-वियोग रीति में कोविद,
भावना-भेद स्वरूप को ठानै॥
चाह के रंग में भीज्यो हियो,
बिछुरे-मिले प्रीतम सांति न मानै।
भाषा-प्रवीण, सुछंद सदा रहै,
सो घनजी के कवित्त बखानै॥

४ घनानंद और रूप-सौन्दर्य

रावरे रूप की रीति अनूप,
नयो-नयो लागत ज्यों-ज्यों निहारियै।
त्यों इन आँखिन बानि अनोखी,
अघानि कहू नहीं आनि तिहारियै।
एक ही जीव हुतो सो वारयो,
सुजान सकोच और सोच सहारियै।
रोकी रहै न, वहै, घनआनन्द,
बावरी रीझ के हाथनि हारियै।

रीति स्वच्छंद काव्यधारा के कवि घनानंद वास्तव में रूप सौन्दर्य के कवि हैं। अपनी सुन्दर-सलोनी सुजान के रूप-सौन्दर्य पर वे इतने आसक्त थे कि उसे देखते हुए कभी भी उनकी भूख नहीं मिटी। सुजान की सुन्दरता का वर्णन उन्होंने 'सुजान-हित' में अनेक स्थानों पर अनेकों प्रकार से किया है। ऐसा लगता है मानो एक बार लिख कर उन्हें तसल्ली नहीं होती थी और होती भी कैसे? सुजान के रूप की रीति ही अनूप थी, जो हर क्षण उन्हें नयी लगती थी। घनानंद के जीवन वृत्त से यह सिद्ध हो चुका है कि सुजान उनके लिए क्या थी? वे बादशाह को भी उसके आगे कुछ नहीं समझते थे। इसी के परिणाम स्वरूप उन्हें अपना पद, समस्त सुख साधन छोड़ने पड़े, क्योंकि सुजान के रूप पर उन्मत्त पतंगे की भाँति वे हर क्षण उसमें जल जाना चाहते थे। निष्ठुर सुजान की स्मृति को सीने से लगाये वे वृन्दावन आ गये और उसके लिए समस्त काव्य रचना करते रहे। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि वे घनानंद जो राजदरबार में रहते थे, एक-से-एक सुन्दर स्त्रियों को देखते थे, फिर सुजान में ऐसी क्या विशेषता थी कि वे अपना सर्वस्व ही लुटा बैठे। निश्चय ही वह कोई मामूली स्त्री न होकर असाधारण रूपवती रही होगी। घनानंद ने 'सुजानहित' में उसके प्रत्येक अंग-प्रत्यंग की शोभा का, लावण्य का और सुकुमारता का वर्णन किया है। व्यक्ति जिसे प्रेम

करता है, उसकी एक-एक चेष्टा, हाव-भाव, हर बात मधुर लगती है। सुजान के रूप-सौन्दर्य वर्णन में घनानंद की इसी 'रीझ' की अभिव्यक्ति हुई है।

रीतिकाल में रूप-सौन्दर्य की चर्चा साहित्य का प्रमुख विषय रही है। लगभग सभी कवियों ने नायिका के अंग-प्रत्यंग को इस बारीकी से चित्रित किया है कि बिचारी नायिका पेट की रोमावली को भी छिपा नहीं सकी। मतिराम, देव आदि कवियों ने लक्षण ग्रन्थों के निर्माण में जो लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, उनमें नायिका का झीना आवरण और भी महीन हो उठा है। परन्तु घनानंद ने सुजान के रूप का क्रमबद्ध रीति से अथवा परम्परागत कवि-परिपाटी के अनुसार शिख से नख तक वर्णन नहीं किया। उन्होंने सुजान के विशेष अंग को लेकर एक-एक कर वर्णन नहीं किया अपितु उसकी समस्त छवि के जिस अंग का आकर्षण अधिक रहा है अथवा जिन अंगों का प्रभाव मन पर पड़ा है, उसी के चित्रण में वे प्रवृत्त हो गये हैं। अतः कवि का ध्यान छवियों के चित्रण पर रहा है। कवि अंगों के सामूहिक सौन्दर्य का चित्रण करने में ही सिद्धहस्त है। एक-एक अंग को, उसकी सुन्दरता को अलग-अलग करके देखने-दिखाने की प्रवृत्ति उसमें नहीं है। लजीले और रसीले सौन्दर्य का चित्रण अत्यंत मनोहर रूप में हुआ है—

लाजीन लपेटी चितवनि भेद-भाव-भरी,
लसति-ललित-लोल-चख तिरछनि मैं।
छबि को सदन गोरो बदन रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुस्कानि मैं।
दसन-दमक फैलि हियें मोती-लाल होती,
पिय सों लड़कि प्रेम-पगी बतरनि मैं।
आनंद की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनंग-रंग ढुरि मुरि जानि मैं॥

रीतिकालीन अन्य कवियों में भी इसी प्रकार के सौन्दर्य चित्रण की प्रवृत्ति पायी जाती है, परन्तु घनानंद ने रूप के चित्रण के परम्परागत विषय को भी अपनी प्रतिभा से नवीनता दे दी है। इसके तीन कारण हैं, एक तो दृष्टिकोण या दृष्टिबिन्दु के बदल जाने से, दूसरा सुजान के रूप की असीम शोभा के कारण और तीसरा हृदयगत प्रेमाधिक्य के कारण। कवि की दृष्टि भिन्न अंगों पर एक साथ पड़ती है और उन अंगों की सामूहिक शोभा का प्रभाव इतना तीव्र होता है कि कवि एक अंग पर टिक ही नहीं सकता। इनके पूर्वज कवियों में और इनमें यहीं पर अन्तर आ जाता है। रीतिबद्ध कवि एक अंग को लेकर घंटों निहारा करते और फिर उसकी शोभा में दोहा, छन्द आदि का सृजन करते। संश्लिष्ट छवि सौन्दर्य के चित्रण उन्होंने अत्यंत अल्प मात्रा में किये हैं। सुजान का रूप इतना प्रखर था कि प्रेमी उसे एक नजर में सह नहीं पाता था, दूसरी बार दृष्टि डालने पर रूप की अतिशयता अधिक वृद्धि को लिये होती थी। इस कारण भी घनानंद बिचारे बावरे से रहते थे कि यह कैसा रूप

जो क्षण-क्षण नवीन लगता है। रीतिकालीन रीतिबद्ध कवियों ने नायिका के रूप सौन्दर्य का, रूप के प्रभाव का और सौन्दर्य की सुकुमारता का वर्णन शताधिक बार किया है, लेकिन उनका वर्णन घनानंद-सा प्राणवान नहीं हो पाया। इसका कारण सम्भवतः यही हो सकता है कि सभी कवियों को एक मास्टर-पीस नायिका दे दी जाती थी, उसे देख कर और लक्षणों के नियमों को ध्यान में रख कर, उन्हें उसके सौन्दर्य का वर्णन करना होता था। यहाँ दूसरी ओर घनानंद ने स्वयं प्रेम किया। अपने हृदय पर सुजान के नेत्रों के वारों को सहा, उसकी तिरछी चितवन से घायल हुए, उसकी एक-एक अदा पर रीझे और अपने मन से उस बावरी रीझ के हाथ बिक गये। यही कारण है कि सुजान के रूप-सौन्दर्य के वर्णन में घनानंद-सी ताजगी, नवीनता और कान्ति का रीतिबद्ध कवियों में प्रायः अभाव-सा लक्षित होता है। कुछ चित्र का वर्णन रीतिबद्ध शैली पर भी मिलते हैं। जिसमें कवि ने अलंकारों के द्वारा सौन्दर्य को चित्रित किया है, परन्तु उनमें भी नयापन और ताजगी मिलती है। मात्र पिष्ट-पेषण औरों में तो मिल भी सकता है, पर घनानंद में नहीं।

घनानंद ने अपने काव्य में सुजान के रूप सौन्दर्य का वर्णन क्रमबद्ध रूप में नहीं किया, पर यहाँ सुविधा के लिए भिन्न-भिन्न अंगों के सौन्दर्य का चित्रण प्रस्तुत है।

केश और भाल घूंघट

सुजान के चमकीले केश जब बिखर कर इधर-उधर उड़ते हैं तो उसकी कुछ लटें उसके सुन्दर मुख पर बिखर जाती हैं और बिन्दी से सुशोभित उसके उन्नत भाल को और अधिक शोभा प्रदान कर देती हैं, जिसका वर्णन अत्यंत सुन्दर रूप में किया है—

चीकने चिहुर नीके आनन बिपुरि रहै,
कहा कहौं सोभा भाग भरे भाल सीस की।
मानो घनानंद सिंगार रस सों सँवारी,
चिक में बिलोकति बहन रजनीस की॥

सुजान के लुभावने केश बिखर कर घनानंद पर तो गजब ढा ही रहे हैं, प्रकृति भी उसके प्रभाव से नहीं बच सकी। खुले हुए केशों की सघनता को देख कर पपीहे को लगता है कि उसके प्रियतम मेघ आज इतने पास कैसे आ गये हैं। और वह उनकी ओर दौड़ पड़ता है। 'भ्रमर की भक्ति' के वश में हो कर केशों को देख कर भ्रमित हो जाते हैं। दोनों चित्रों के कुछ अंश—

(क) छुटे बार हेरि कै पपीहा पुञ्ज धावहीं,
(ख) बारनि भौंर कुमार भजें।

अन्यत्र कुछ स्थलों पर कवि ने सुजान के उन्नत 'भाल' पर लगे सौभाग्य बिन्दु को सराहा है—

सुहाग सों ओपित भाल बिपै,
घनआनंद जान पिया अनुरागै।

भौं और नेत्र

सुजान के रूप-सौन्दर्य में जितना प्रभाव उसके 'तीछन' नेत्रों का कवि के मन पर पड़ा है, अन्य किसी अंग का नहीं। 'सुजानहित' में अनेकों बार घनानंद ने विविध स्थलों पर भौं और नेत्रों की सुन्दरता का और उसके प्रभाव को चित्रित किया है। भौं की वक्रता का उल्लेख इस प्रकार है—

भंजन कै अंजन दै भूषण-बसन साजि,
राजि रही भृकुटी जुटौंहीं बकतनि मैं।

सुजान के नेत्र इतने सुन्दर हैं और साथ ही कटाक्ष कलाओं में पंडित। एक पंक्ति में नेत्रों की कितनी विशेषताओं को घनानंद ने जतलाया है—

बंक बिसाल रंगीले रसाल,
छबीले कटाछ कलानि में पंडित।

उसके नेत्र विशाल हैं, बांकापन लिए हुए हैं, काम की मदमस्ती से रंगीले हैं, उनसे उसकी प्रवृत्ति का रसीलापन छलकता है, छबीले हैं और दूसरे को बेधित करने की कला में भी प्रकाण्ड हैं। अन्यत्र कवि ने सुजान की नेत्रगत विशेषताओं और बिलक्षणताओं को अभिव्यक्त किया है कि वे नेत्र कर्णावलम्बित हैं, अंजन की रेखा से युक्त हैं, लजीली चितवन लिये हुए हैं। उनमें अनुरक्ति है, रसार्द्रता है, नशीलापन है और काम के मद में रंगे हुए हैं। कवि ने नेत्रों की चंचलता और चपलता के द्वारा सुजान की आंतरिक मनोवृत्ति को भी जान लिया है। कुछ चित्र इस प्रकार हैं—

(क) बंक बिसाल रंगीले रसाल छबीले कटाक्ष कलानि मैं पंडित।
सांवल सेत निकाई निकेत हियौ हरि लेत हैं आरस मंडित।।
बेधि कैं प्रान करैं फिरि दान सुजान खरे भरे नेह अखंडित।
आनन्द आसव घूमरे नैन मनोज के चोजनि ओज प्रचंडित।।

(ख) रूप-गुन मद-उन्मद नेह-तेह भरे,
छल-बल-आतुरी चटक चातुरी पढ़े।
घूमत घुरत अरबीले न मुरत ने कौं,
प्रानन सो खेलैं अलबेलैं लाड़के बढ़े।
मीन-कंज-खंजन-कुरंग-मान भंग करैं,
सींचे घनआनंद खुले संकोच सो मढ़े।
पैने नैन तेरे से न हेरे मैं अनेरे कहूँ,
छाती बढ़े काती लियैं छाती पै चढ़े रहैं।।

(ग) अलकैं अति सुन्दर आनन गौरै,
छके दृग राजति काननि छ्वै।

हँसि बोलन में छबि फूलन की,
बरखा उर-ऊपर जाति है ह्वै ।।
लट लोल कपोल कलोल करैं,
कलकण्ठ बनी जलजावलि द्वै ।
अंग अंग तरंग उठै दुति की,
परिहै मनो रूप अबै धर च्वै ।।

(घ) जोबन गरूर गरबाई सो भरे बिसाल,
लोचन रसाल चितवनि बंक छैल है ।

नेत्रों के सौन्दर्य वर्णन में कवि ने परम्परागत उपमानों का प्रयोग करते हुए भी अभिव्यक्ति में नवीनता उत्पन्न की है । सुजान के नेत्र सौन्दर्य उसके रुचि अभिरुचि को भी लक्षित करने वाले हैं । इसी से पाठक को उनकी सलज्जता, अनुशक्ति और चंचलता आदि गुणों का पता चलता है । H81/G415

P.GH 6907

कटाक्षपात

साहित्य में आदिकाल से ही नेत्रों और कटाक्षों का वर्णन मिलता है । आदिकाल में पृथ्वीराज की संयोगिता भरे भवन में से बाहर आ प्रथम तो नेत्रों द्वारा अपनी मूक स्वीकृति देती है, फिर पृथ्वीराज की मूर्ति में फूलों की माला डालती है । भक्तिकाल में कबीर और जायसी, सूर और तुलसी सभी ने प्रभु-प्रिया के नेत्रों के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कटाक्षपात पर भी अभिरुचि दिखाई है । रीतिकाल में आकर यह बड़े काम की वस्तु हो गयी है जैसे—

'कहत नटत रीझत खिझत,
मिलत खिलत लजियात ।
भरे भौन में करत है,
नैनन ही सों बात ।
—बिहारी

जिह्वा जिस बात को कहने में असमर्थ होती है, नेत्र उसे बड़ी आसानी से कह देते हैं । कटाक्षपात के सम्बन्ध में घनानन्द ने बड़ी सतर्कता और सूक्ष्मता से काम लिया है, क्योंकि यही व्यापार नेत्रों को और अधिक प्रभावशाली बना देता है । वास्तव में कटाक्ष का असर विष के तीर के प्रकार पैना और घातक होता है । प्रेमी विचारा रण के मैदान में जाकर तीरों के बाण अपनी छाती पर सह सकता है, पर प्रेमिका का कटाक्ष — तोबा-तोबा, उसकी पीड़ा जितनी विषम है, उतनी ही मधुर भी —

नैनन में लागै जाय, जागै सु करेजे बीच,
या बस ह्वै जीव धीर होत लोट-पोट है ।
रोम-रोम पूरि पीर, व्याकुल सरीर महा,
घूमैं मति गति-आसैं, प्यास की न टोट है ।

चलत सजीवन-सुजान-दृग-हाथन तें,
प्यारी अनियारी छबि रखवारी ओट है।
जब-जब आवें तब-तब अति भावें ज्यावें,
अहा कहा विषम कटाच्छ सिर-चोट है।

नासिका, दसन, ग्रीवा और मुख

सुजान के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करते समय प्रेमी की दृष्टि उसके प्रत्येक अंग पर जाकर ठहरी है और उसने बड़े प्रेम से, रीझ से उसे निहारा है तथा उसकी प्रशंसा की है। नासिका के वर्णन में कवि ने किसी परम्परागत उपमान का प्रयोग नहीं किया, न तो उसे 'सूये' (तोते) की चोंच के समान तीखा बताया है और न ही उसकी तुलना 'तीर से तीखा' होने से की है। घनानन्द ने सुजान के नाक के विषय में लिखा है कि हर समय चढ़ी रहती है। यह एक मुहावरा भी है। जो स्त्रियाँ बहुत ज्यादा सुन्दर होती हैं, उनकी नाक भी हर समय गर्व के कारण चढ़ी रहती है। इस चढ़े रहने में रूपगत अभिमान की ओर संकेत किया गया है। साधारण व्यक्ति को भी यदि बहुत सम्मान मिल जाय, तो उसमें इतना घमंड आ जाता है कि हर समय चढ़ी रहती है, फिर जो हो ही असाधारण रूप का मालिक उसकी प्रकृति तो—

अनखि चढ़े अनोखी चित्त चढ़ि उतरें न,
मन-मग मूँदै जाको बेहु सब ओर तें।
बड़े मैन-मतवारे नैनन के बीच परी,
खरिदें निडर ऊँची रहै रूप जोर तें।

नासिका के विषय में घनानन्द ने बहुत कम लिखा है, पर जहाँ भी उसे मौक़ा मिला है, हर जगह चढ़ी हुई, मुड़ी हुई नाक को ही दर्शाया है—

नीकी नासापुर ही की उचनि अचम्भे भरी,
मुरि कै इचनि सों न क्यों हूँ मन तें मुरै।

दाँतों के वर्णन में भी कवि ने कमाल कर दिया है। सुजान के 'दसन' इतने सुन्दर हैं कि उनकी शुभ्रता व चमक के आगे बड़े-से-बड़े उपमान भी फीके पड़ गये हैं। सुन्दर दन्तावली के कारण सुजान के मुख पर बिखरा हुआ हास्य उसके रूप की कान्ति को अत्यन्त रंगीन बना देता है—

सहज हँसोंही छबि फबति रंगीले मुख,
दसननि जोतिजाल मोती सी झरै।

सुन्दर दन्तावली ने प्रकाश से हृदय पर मोतियों की माला बिखर जाने का वर्णन सूर ने भी किया है, पर घनानन्द के वर्णन में वही भाव नवीनता लिये हुए है। सुजान के रूप का चित्रण करने के साथ-साथ उन्हें कवि ने अपने हृदय और भावों के संस्पर्श देकर उन्हें और अधिक सजीव बना दिया है। इससे साफ जाहिर है कि

परम्परागत परिपाटी को छोड़कर उन्हें अपने काव्य में जिस आत्म-तत्त्व (Subjectivity) को प्रमुखता दी है, वह उनकी तीव्र अनुभूति का ही परिणाम है। सामान्यत: रीतिबद्ध कवियों ने इसी तत्त्व की उपेक्षा की है और इसका परिणाम यह हुआ है, उनकी अभिव्यक्ति सुन्दर होते हुए भी सजीव और प्राणवान प्रतीत नहीं होती। मुख की सुन्दरता का वर्णन करने के लिए कवि ने बहुत उछल-कूद नहीं मचाई, अप्रस्तुतों की भीड़ में मुख को गुम नहीं होने दिया और रूप की इतनी चकाचौंध भी इकट्ठी नहीं की कि उसमें मुख ही ओझल हो जाय। मुख की सुन्दरता, लावण्य और अरुणाई को उन्होंने सिंधोरिया फल के समान माना है। अनुमान है कि इस प्रकार की उपमा घनानन्द से पूर्व किसी ने नहीं दी—

सब मुख भोर ही सिंधूरा की सो फल है।

मुख की सुन्दरता का वर्णन करने के लिए सम्पूर्ण अंगों जैसे अधर, नासिका, दसन, नेत्र, भाल और केश सभी को कवि ने एक साथ लिया है। इन समस्त अंगों के सामूहिक प्रभाव का हृदय पर जब प्रभाव पड़ता है तो—

झलकै अति सुन्दर आनन गौर,
छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलनि में छबि-फूलन की बरखा,
उर ऊपर जाति है ह्वै॥
लट लोल कपोल कलोल करैं,
कल कंठ बनी जलजा वलि द्वै।
अंग अंग तरंग उठै दुति की,
परिहै मनो रूप अबै धर च्वै॥

उरोज, उदर, पीठ और कटि

घनानन्द ने सुजान के उन्नत उरोजों का वर्णन अवश्य किया है, पर कहीं भी उन्हें नंगा नहीं होने दिया। रीतिबद्ध कवि हों या भक्तिकालीन भक्त कवि सभी ने (तुलसी को छोड़कर —उन्होंने उरोजों का वर्णन किया, पर 'सीता-माता' कहकर, सामान्य नायिका नहीं) उरोजों के वर्णन में विशेष रुचि दिखाई है। रीतिकाल में रीतिबद्ध कवि तो वहीं पर चिपक कर रह गया है, बड़ी मुश्किल से नीचे उतरा, तो नीवी-बन्ध में अटक गया, परन्तु घनानन्द ऐसा नहीं कर पाये। कारण स्पष्ट है —वे सुजान को प्रेम करते थे सच्चा प्रेम। इसी कारण से इस प्रकार का वर्णन संक्षिप्त, साफ-सुथरा और सहज है—

अंगनि पानिप ओप खरी,
निखरी नवजोबन की सुथराई।
नैननि बोरति रूप के भोरैं,
अचम्भे-भरी छतियाँ-उथराई॥

इसी प्रकार का एक और वर्णन—

घनआनन्द ओपित ऊँचे उरोजनि,
चोज मनोज के ओज बली।
गति ढीली लचीली, रसीली
सुजान मनोरथ बेलि फली॥

साहित्य में कवियों ने नायिका की सुन्दरता के वर्णन के लिए नेत्र, भौंह, दसन, अधर, उरोज आदि का वर्णन तो खुलकर किया है, पर बिरले ही सहृदयों की दृष्टि उदर या पीठ पर गई है। वे एकदम छलांग लगाकर सीधे कटि पर आ गये हैं। घनानन्द ने इसका विस्तार से वर्णन तो नहीं किया, परन्तु अत्यन्त संक्षिप्त रूप में बहुत ही सुन्दर तरीके से सुजान के उदर को सराहा है—

चलदल-पात की प्रभा को है निपात जातें,
यातें बाय बावरो डराय काँपिबो करै।
थोरे थिर गुन मैं बिराजै बीचि आभा ऐन,
नैन हेरें हेरनि हिये मैं भूल लैं भरैं॥
नेको सन्मुख भये दीजै सब सन पीठी,
मीठी हाथ लागै मन पायन कहूँ परै।
ताकें तो उदर घनआनन्द सुजान प्यारी,
ओछी उपमान कौं गरूर और लौं गरैं॥

इसी प्रकार उन्होंने पीठ की सुन्दरता की भी प्रशंसा की है। घनानन्द पर सुजान के रूप-सौन्दर्य का प्रभाव इतना तीव्र था कि वे अंग जिन्हें रीतिबद्ध कवियों ने कोई विशेषता नहीं थी अथवा यों कहा जाय कि उनकी स्थूल सौन्दर्य दृष्टि में वे अंग आ ही नहीं पाये, उनका हृदय-आह्लादक वर्णन कवि ने किया है। पेट और पीठ के चित्र इसी से नितान्त स्वच्छन्द हैं और परम्परागत पद्धति से एक कदम हट के हैं। पीठ की सुन्दरता का भाव-भीना वर्णन अत्यन्त मनोहर है—

सोभा सुमेरु की संधित री,
किधौ मान-भवास गढ़ास की घाटी।
कै रसरास-प्रवाह को मारग,
बेनी बिहार सों यों दृग दाटी॥
काम कलाधर ओपि दई,
मनो प्रीतम-प्यार-पढ़ावन पाटी।
जान की पीठी लखैं घनआनन्द,
आवन आन तें होत उचाटी॥

पीठ के पश्चात् कटि का वर्णन देखें, तो ज्ञात होगा कि इसमें भी घनानन्द ने नवीनता उत्पन्न की है। साहित्य प्रेमियों के लिए नायिका की कटि का बड़ा प्रिय

विषय रहा है। आलम बिचारे तो 'कटि' की छन्दपूर्ति में ही आजीवन शेख के दास हो गये—

कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन।

—आलम

कटि को कंचन के, कुचन मध्य धरि दीन।

—शेख

रीतिबद्ध कवि चाहे बिहारी हों या पद्माकर अथवा देव या मतिराम सभी ने कटि को बड़े चाव से सराहा है। यहाँ घनानन्द ने लगभग परम्परागत शैली का ही अनुसरण किया है और उसी प्रकार का ही वर्णन—

(क) अलप अनूप लम्पटी सु लपेटी रूप,
अलग लगी सी तामैं केती सूध बाँक है।
कोटिक निकाई मृदुताई की अवधि सोधौं,
कैसे कै रचिहै जामैं विधि बुद्धि राँक है।
दीठि नीठी आवै कोऊ कहि क्यों बतावै, जहाँ,
बात हूँ के बोझ हिय, होत नमी साँक है।
चलि चित चोरे मुरि मनहि मरोरै सुठि,
सुभग सुदेस अलबेली तेरी लाँक है।

(ख) है किधौं नाहीं लगी अलगी सी,
लखि न परै कवि क्यों हू प्रमानो।
तो कटि-भेदहि किंकनि जानती,
तेरी सौं ऐरी सुजान हौं जानो॥

पिंडली और चरण

चरणों की सुन्दरता का वर्णन प्रत्येक काल के कवि ने किया है। शिख से सौन्दर्य प्रशंसा करता हुआ कवि चरण-नख तक अवश्य पहुंचता है। तुलसी ने सीता माता के पाँवों की सुन्दरता का वर्णन करते हुए लिखा है कि वे इतने सुन्दर हैं मानो दो केतकी कुसुम धरती पर धीरे-धीरे चल रहे हों और पृथ्वी उन सुन्दर चरणों के अपने ऊपर रखे जाने से सौभाग्यशाली हो उठी हो। राधा के पाँवों को भी सूर, विद्यापति आदि ने बहुत सराहा है। रीतिकाल में बिहारी की नायिका के चरण इतने सुन्दर हैं कि नायिन को भी भ्रम होने लगता है—

पांव महावर देन को, नायिन बैठी आय।
पुनि पुनि जान महावरी, ऐड़ी मीड़त जाय॥

तो मैथिली शरण गुप्त की सीता माता—

पा कर विशाल कच भार ऐड़ियाँ धंसती,
तब नखज्योति मिण मृदुल उंगलियाँ हँसती।
पर पग उठने में भार उन्हीं पर पड़ता,
तब अरुण ऐड़ियों से सुहास सा झड़ता।

घनानन्द ने साक्षात् रति-सी सुजान की सुन्दर पिंडली (ऐड़ी के ऊपर चारों ओर का हिस्सा) की गोराई को देखकर अपने मन की रीझ की रस को अभिव्यक्त किया है। उसकी गोरी पिंडली और चरण इतने ज्यादा सुन्दर हैं कि उनकी छवि को देखकर मन पागल हो उठता है—

रति साँचें ढकी अछगई भरी,
पिंडुरीन गुराइयें पेखि पगें।
छबि घूमि घुरैं न मुरैं मुखान सों,
लोभी लसे रस झूमि खगें॥
घन आनन्द एँड़िनि आनि भिड़ैं,
तरवानि तरे तें भरैं न डिगें।
मन मेरो महाउर चायनि च्वै,
तुव पायनि लागि न हाथ लगें॥

पाँव की सुन्दरता के साथ-साथ उसके पैरों पर लगी मेंहदी की चर्चा भी कवि ने की है। जैसे—

(क) मिहँदी लगी पायीन रंग लहै।

(ख) और पिंगारन सबही रहै,
याहि बिचारति ही मति रागति
पायनी तेरे रची मिहँदी,
लखि सौतनि के तरवनि तें लागति॥

इस प्रकार घनानन्द ने अपनी प्रेयसी सुजान के रूप का, अंग सौन्दर्य का चित्रण किया है। सम्पूर्ण वर्णन में कवि का प्रेमी हृदय दोनों हाथों में रीझ लिये हुए दृष्टिगोचर होता है। रूप-सौन्दर्य से प्रभावित सुजान का कोई भी चित्र ऐसा नहीं जिसमें सजीवता न हो, ताजगी न हो। रीतिबद्ध कवि नायिका के शिख-नख अथवा नख-शिख वर्णन में जो कमाल दिखाते थे, उनमें अनुमति की वह तीव्रता नहीं होती थी, जो घनानन्द में मिलती है। कोई विशेष कारण नहीं—बात एकदम सीधी है। उनका वर्णन शब्दों की दृष्टि से अलग-अलग था, पर मजेदार बात यह है कि एक ही नायिका को देख कर दस प्रेमियों को एक-सी अनुभूति होती थी। प्रेम करने की जैसे कोई तकनीक हो और परिणाम कमप्यूटर से निकाले गये हों, जिनमें अन्तर आने का प्रश्न ही नहीं उठता। घनानन्द ने स्वयं प्रेम किया है और प्रेमी अपनी प्रेमिका को हर दिन नयी दृष्टि से देखता है—उसे दिन बदलने के साथ-साथ रूप भी नयेपन को लिये हुए दृष्टिगत होता है। सिवाय प्रेमी के यह कोई कह ही नहीं सकता—

रावरे रूप की रीति अनूप,
नयो नयो लागत, ज्यों ज्यों निहारियै।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी,
अघानि कबहूं नहीं आनि निहारियै॥

जो रूप इतना अनूप है कि उसे देखते हुए प्रेमी का मन कभी नहीं भरता, उस रूप का प्रभाव कितना अधिक रहा होगा—यह एक विचारणीय प्रश्न है। व्यक्ति घर से बाहर जाता है, विभिन्न प्रकार की परिचित अपरिचित वस्तुओं, व्यक्तियों से मिलता है, लेकिन सबके प्रति उसका ध्यान एक-सा आकृष्ट नहीं होता। किसी विशेष व्यक्ति की विशेष छवि से ही वह प्रभावित होता है। घनानन्द जैसे रसिक कवि विद्वान 'खास-कलम' जिस सुजान से प्रभावित हुए वह कोई असाधारण रूप वाली, गुण-सम्पन्न नारी रही होगी, जिसे वे नित्य देखते होंगे और जिस पर नित्य निसार होते होंगे। इसी कारण सुजान का सौन्दर्य वर्णन परम्परागत नहीं हैं, कल्पित नहीं है। उसमें एक प्रकार की स्वच्छंदता है, जो कृत्रिमता से कोसों दूर है। प्रत्येक अंग के विवेचन के पश्चात् रूप के सामूहिक प्रभाव को कवि ने कई प्रकार से व्यंजित किया है।

सौन्दर्य का सूक्ष्म वर्णन

प्रभावोत्पादकता

घनानन्द के पास विधि-प्रदत्त सूक्ष्म दृष्टि थी, जिससे उनका काव्य परम्परागत स्थूल चित्रण से भिन्न प्रकार का है। स्थूल अवयवों के सौन्दर्य का उद्‌घाटन करते हुए भी वे अंगों की सूक्ष्म विशेषताओं और रमणीयता का वर्णन कर गये हैं। सुजान के रूप का प्रभाव उन्हें सम्मोहित किये दे रहा है। उसके रूप-सौदर्य का सूक्ष्म प्रभाव प्रस्तुत करने के लिये कितने सुन्दर रूप से शब्द योजना की है—

उपमा बिचारी न बिचारी जाँहि जान प्यारी,
रूप की निकाई और अवरेखियति है।
सरस-सनेह-सानो राजती खांनी बसा,
तरुनाई—तेज—अरुनाई पेखियति है।
मंडित अखंड घनआनन्द उजास लिए,
तरै तन दीपति दिवारी देखियति है।

इस प्रकार के वर्णन यद्यपि अधिक नहीं हैं, फिर भी कुछ उदाहरणों से ही कवि की सूक्ष्म सौन्दर्य दृष्टि की तीव्र पकड़ का परिचय सहज ही मिल जाता है। सुजान के तन के स्थूल चित्रण में कवि ने अंगों की कांति, उज्ज्वलता, अरुणाई, सौन्दर्य, तरुनाई, सरसता, सुकुमारता, मधुरता, ताजगी और नवीनता तथा दीवाली-सा उत्साह होना आदि बातों का मर्म-स्पर्शी चित्रण किया है। नृत्य करते समय सुजान के अंगों की चपलता, अभिनय और रूप सौन्दर्य की गतिशीलता से प्रेमी का मन मुग्ध हो जाता

है। जैसे-जैसे सुजान के अंगों में थिरकन होती है, वह घूम कर कटाक्ष फेंकती है, उसे देखते-देखते प्रेमी की बुद्धि उसके हाथ से निकल जाती है और वह बेसुध हो जाता है। रूप के प्रभाव का इससे तीव्र नमूना और क्या होगा—

रूप मतवारी घनआनन्द सुजान प्यारी,
घूमरे कटाछि घूम करै कौन पै घिरै।
नाच की लटक लसै अंगनि मटक रंग,
लाड़िली लटक-संग लोचन लगै फिरै॥
अभिनै निकाई निरखत ही बिकाई मति,
गति भूली डोलै सुधि सोधौं न लहौ हिरै॥
राते तरवानि तरें चूरे चोप-चाड़-पूरे,
पाँवड़े लौं प्रान रीझि है कनावड़े गिरै॥

घनानन्द ने सुजान के रूप को ऐसा 'अनूप' कहा है, जो प्रत्येक क्षण बदलता रहता है। मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य की यह प्रवृत्ति है कि उसे वही वस्तु, वही सौन्दर्य अधिक सुन्दर लगता है, जिसमें नवीनता हो। नवीनता के प्रति आकर्षण की चाह घनानन्द के अन्तर्मन को भी है, इसी से सुजान के रूप में वेश-विन्यास से, आभूषणों के बदलने से, अभिनय से नित्य नया जो परिवर्तन आता है, उससे वे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। रीतिकालीन अन्य कवियों ने 'नायिका' की शोभा का वर्णन करते हुए यहाँ तक लिख दिया है—

सूधे पाँव न धर सकत,
सोभा ही के भार।

वहीं घनानन्द का हृदय तो इस शोभा की नित नवीनता के कारण रीझ के हाथ बिक गया है। सुजान को देख कर वह कभी नहीं अघाता और नेत्र भी कभी थकने का नाम नहीं लेते। इसीसे कहा है—

रावरे रूप की रीति अनूप,
नयो नयो लागत ज्यौं ज्यौं निहारियै।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी,
अघीन कहू नहीं आनि तिहारियै॥
एक ही जीव हुतो सो वारयो,
सुजान सकोच और सोच सहारियै।
रोकी रहै न दहै धन आनंद,
बावरी रीझ के हाथनि हारियै॥

सुजान के रूप-सौन्दर्य की प्रत्येक कल्पना उसके 'रूप की रीति' के समान 'अनूप' है। कहीं पर रूप का प्रभाव दीवाली की चमक पैदा करता है तो अन्यत्र बुद्धि ही उसके हाथ से निकल जाती है। इसी प्रकार एक स्थान पर उसके रूप के प्रभाव

को राखी के समान कहा है। रूप चित्रण के लिये ऐसी रीति-निरपेक्ष और स्वच्छन्द कल्पनाएँ प्रस्तुत करना घनानन्द जैसे स्वच्छन्द मति कवियों का ही काम था —

पानिप मोती मिलाय गुही गुन पाट,
पुही सु जु ही अभिलाखी।
नीके सुभाय के रंग भरीहित,
जाति खरी न परै कछु भाखी॥
चाह तो बांधी दै प्रीति की गाँठी,
सु है घनआनंद जोबन साखी।
नैनन जानि विराजति जान जू,
रावरै रूप अनूप की राखी॥

घनानन्द ने रूप चित्रण में संयोग के खुले चित्र भी दिये हैं, परन्तु उनमें खुलापन दिखाना ही उनका उद्देश्य न था। (जैसा कि परम्पराबद्ध कवि किया करते थे) क्या केवल स्थूल वर्णन करने में मांसलता आ जाती है और जहाँ केवल मांसलता का उद्घाटन ही कवि का उद्देश्य हो, वहाँ शालीनता का अभाव हो जाता है। घनानन्द ने कहीं ऐसा प्रयास नहीं किया, जिससे उनकी कलात्मक काव्य अभिरुचि को ठेस पहुँचे। इस प्रसंग में एक चित्र प्रस्तुत है, जिसमें ऐन्द्रिता का अभाव नहीं, परन्तु शालीनता की चुनरी उतरी नहीं है —

रस-रैनि जगी प्रिय प्रेम पगी,
हार सानो सों अंगनि मोरति है।
मुख ओप अनूप बिराजि रही,
ससि कोटिक वारने, को रति है।
अँखियानि मैं छाकनि की अरुनाई,
हियो अनुराग लै बोरति है।
घनआनंद प्यारी सुजान लखें,
डरि दीठि हितू तिन तोरति है॥

इस प्रकार के चित्रण में ऐन्द्रियता प्रधान होते हुए भी नग्नता के दर्शन नहीं होते। इसी कारण से रूप-सौन्दर्य अधिक प्रभावशाली हो गया है। रस-रैनि के जागने के पश्चात् नायिका की सलज्ज दशा ने उसके लावण्य को द्विगुणित कर दिया है। डॉ० बच्चन सिंह के शब्दों में —"अपने प्रिय का रूपचित्र खींचने में घनानन्द ने रीतिबद्ध कवियों की भाँति स्थूल अप्रधान यौन अंगों (सेकेण्डरी सेक्सुअल करैक्टर्स) के आकार और व्यापार का वर्णन नहीं प्रस्तुत किया है। वे मुख्यतः प्रिय के तरल सौन्दर्य पर रीझे हैं। प्रिय की पात्रता प्रायः दो वस्तुओं में निहित दिखाई देती है— रूप में और गुण में। घनानन्द की प्रेमिका में इन दोनों का मणि कांचन योग है।"

सुजान का रूप और मुख पर उस रूप की कांति

घनानन्द के प्रेम का मूल कारण—उनको प्रेयसी सुजान का अनिंद्य सौन्दर्य था, जो उनके रोम-रोम में बसा हुआ था क्योंकि वे उसकी सहज सुकुमारता और अप्रितम सुन्दरता के पुजारी थे। सुजान के रूप वर्णन में एक ओर जहां उसके अंगों का अलग-अलग वर्णन किया है जैसे नेत्र, मुख, कपोल, अधर, भौंह, दसन, चिबुक, ग्रीवा, उदर, कटि इत्यादि वहीं अपेक्षाकृत अधिक संख्या में उसके रूप के प्रभाव का, मुख पर छाई गर्वीली कांति का वर्णन किया है। घनानन्द के हृदय में प्रेयसी सुजान की 'तिरछी चितौनी', 'चंचल-विसाल नैन', 'रसीली हंसी' 'जोबन-गरूर-गरुबाई' और 'रूप की निकाई' समाई हुई थी। अपनी प्राणप्रिया के रूप का कई प्रकार से वर्णन किया है। जैसे—

(क) सहज उज्यारी रूप जगमगी जान प्यारी,
रति पै रतीक आभा है न रोम-रीस की।

(ख) रूप की निकाई कहा कहौं,
अंगीन जोति सुरंगीन जागति

(ग) चारु चाभीकर चंद चपाल चंपक चोखी,
केसर चटक कौन लेखें लेखियति है।
उपमा बिचारि न बिचारी जाहि जान प्यारी।
रूप की निकाई औरें अब रेखियति है।

(घ) स्याम घटा लिपटी थिर बीच,
कि तोहे अमावस अंक उजियारी।
धूम के पुंज में ज्वाल की माल सी,
पै दृग सीतलता सुखकारी॥

सुजान का मुख हर समय अपनी कांति के कारण दमकता रहता है। इस रूप गर्वीली 'नार' के मुख पर हास्य की छटा छाई रहती है, वर्ण भी अत्यधिक गोरा है—

'झलकैं अति सुन्दर आनन गोर'

जिससे सुन्दर नेत्र, बिजली की चमक लिये हुए सुन्दर दांत, दमकते हुए कपोल और कर्णावलम्बित नेत्रों ने उसको चार चाँद लगा दिये हैं। सुजान की छवि के सामने करोड़ों चन्द्रमा फीके पड़ जाते हैं और जब उसके 'चीकने चितुर' (मुख पर बिखरते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है) मानो चन्द्रमा की बहिन बाल रूपी चिक में से झांक रही हो।

चीकने चिहुट नीके आनन बिछुरि रहै,
कहा कहौं सोभा भाग भरे भाल सीस की।
मानो घनआनन्द सिंगार रस सों सँवारी,
चिक में बिलोकति बहन रजनीस की॥

सुजान की छवि उसके मुख की कांति से और भी मनोहर हो उठती है, जिसे देखते हुए नेत्र नहीं थकते। विशेषकर उस समय पर नायिका मधुपान करती है, कवि उस पर सौ-सौ बार निछावर हो उठता है—

दृग छाकत हैं, छवि ताकत ही,
मृगनैनी जबै मधुपान छकै।
घनआनन्द भीजी हँसै सुलसै,
झुकि झूमति-झूमति चौंकि परै।

सुजान के रूप वर्णन को कवि जब प्रेम के उदात्तीकरण के समय भी नहीं भूला। सुजान का स्थान तब सु+ज्ञान ने ले लिया। वृन्दावन में कृष्ण के मनोहर रूप की कामना सुजान के रूप वर्णन की भाँति ही सुन्दर है—

छवि को सदन मोद-मंडित बदन चंद,
तृषित चखनि लाल! कब धौं दिखायहौ।
चटकीलो भेष करें, मटकीली भाँति सों ही,
मुरली अधर धरें लटकत आय हौ।

सुजान की छवि के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं, जिनमें उसका सादा सौन्दर्य, हँसती हुई छवि का हृदय में पैठ जाना, दृष्टि का थक जाना और अनिंद्य सौन्दर्य को देखकर मति का मारा जाना, इत्यादि भाव वर्णित हैं—

(क) तेरी निकाई निहारि छाकें छवि,
हू को अनुपम रूप कढ्यो है।
(ख) कैसे घनआनंद सुजान प्यारी छवि कहौं,
दीठी सो चकित औ थकित भाँति भई है।
(ग) सहज हसौंही छवि पवति रंगीले मुख।
(घ) रावरे रूप की रीति अनूप,
नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारियै।
(च) छबि को सदन गोरा बदन रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु-मुस्क्यानि में।

तरल रूप सौन्दर्य

घनानन्द के रूप-सौन्दर्य की आलोचना करते समय जो विशेष बात उभरकर आती है वह है— सौन्दर्य के प्रति उनकी व्यापक दृष्टि। सौन्दर्य का चित्रण तो विद्यापति, जायसी, सूर, तुलसी, देव, पद्माकर, बिहारी सभी कवियों ने सभी कालों में किया। विद्यापति के सौन्दर्य में तरलता मिलती है, पर वह विशुद्ध मांसल तरलता है, जिसमें कवि राधा के उरोजों में अटक कर रह गया है। प्रकृति का सहारा लेकर ही वह अपने काव्य को आगे बढ़ा पाया। तदुपरान्त जायसी आदि ने सुन्दरता का

वर्णन किया और खूब किया परन्तु जायसी की अनुभूति विशुद्ध भारतीय अनुभूति नहीं थी। वे भी फारसी काव्य शैली से प्रभावित थे, नागमती की सुन्दरता का वर्णन नख-शिख परम्परा का है, जिसमें तरलता का नितान्त अभाव है। यदि कहीं थोड़ा-सा आभास मिलता है तो वह भी ब्रह्मत्व के कारण बोझिल हो गया है। सूर ने राधा-कृष्ण के सौन्दर्य का चित्रण बहुत ही सुन्दर शैली में किया, जिसे पढ़कर भक्ति भाव से आल्हादित हुआ जा सकता है; परन्तु यौवन के सौन्दर्य शृंगार पर आध्यात्म का आवरण चढ़ा हुआ है जिससे तरलता बाधित होती है। रीतिबद्ध कवियों ने सौन्दर्य के अनूठे चित्र प्रस्तुत किये हैं जिनमें बिहारी और मतिराम मुख्य हैं। इन कवियों के सौन्दर्य की यह विशेषता है कि नायिका के एक अंग को देखा, रुके और सराहा, दूसरे अंग को देखा कुछ ठहरे और लिखा। इस प्रकार हर एक अंग को अलग-अलग फ्रेमों में फिट करके सराहा है। इससे रूप-सौन्दर्य की सामूहिकता को पकड़ पाने की असमर्थता इन कवियों में पाई जाती है। घनानन्द रीतिकाल के ही कवि हैं, पर रीति-स्वच्छन्द होने के कारण उन्होंने समस्त परम्परागत पमम्पराओं को नकारा है और सौंदर्य की तरलता की दीप्ति को उजागर करके हृदय-पक्ष की प्रधानता दिखाई है।

घनानन्द ने अनेक पदों में सुजान की मुस्कान, मधुर बातों और उसकी मनोहर छवि का चित्र चित्रित किया है। इससे उसके प्रेम की तीव्रता और सुजान के रूप तरलता का बोध होता है, जिसकी सुध मात्र ही प्रेमी को बेसुध कर देती है।

वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि,
वहै लड़कोनी बानि आनि उर में अरति है।
वह गति लैन औ बजावनि ललित बैन,
वह हँसि दैन हियरा है न टरति है।
वहै चतुराई सौं चिताई चाहिबे की छबि,
वह छैलताई न छिनक बिसरति है।
आनन्द विधान प्रान प्रीतम सुजान जू की,
सुधि सब भाँति सौं बेसुध करती है।

इस तरल सौन्दर्य की यह विशेषता है कि यह कभी मिटता नहीं। यह सौन्दर्य चित्र के रूप में आँखों में समा गया है। साधारण चित्र पर थोड़ा-सा भी पानी पड़ जाय तो वह अस्पष्ट हो जाता है, धूमिल पड़ जाता है, परन्तु यहाँ तो यह बिडम्बना है कि रात-दिन नेत्रों से जल-प्रवाह होता है, पर इस चित्र में कोई कसर नहीं आती, क्योंकि यह सामान्य चित्र नहीं—रूप का चित्र है, जिसे चित्त रूपी चितेरे ने चित्रित किया है—इसी से यह विचित्र है—

लिखि राख्यौ चित्र यौं प्रवाह रूपी नैननि पै,
लह्यौ न परति गति अलट अनेरे की।
रूप को चरित्र है आनन्दघन जान प्यारी,
ऐ किधौं विचित्रताई मो चित्त चितेरे की।

इस रूप-चित्रण में रीतिबद्ध कवियों की अपेक्षा कितनी सूक्ष्मता है, पर्यवेक्षण की कितनी गहराई है, यह देखते ही बनता है। इनका रूप-वर्णन किसी (सिद्धांत के अन्तर्गत नहीं आता, बल्कि हृदय पर पड़े हुए सुजान के सौन्दर्य की छाप का पुनरांकन है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार—"रूप में भी अनोखापन है, अनुपमता है, ज्यों-ज्यों उसे ध्यान से देखा जाता है, वह नया दिखाई देता है, सौन्दर्य की परिभाषा भी तो यही है--

क्षणे-क्षणे य'नवतामुपैती तदेव रूप रमणीयतायाः।

आँखों की वृत्ति भी अनोखी है कि इन्हें अन्य कहीं तृप्ति नहीं मिलती।

रावरे रूप की रीति अनूप,
नयो-नयो लागत ज्यौं-ज्यौं निहारियै।
त्यौं इन आंखिन बानि अनोखी
अघानि कहूं नहीं आनि तिहारियै।

अंगदीप्ति—सलज्जता और यौवनोन्माद

घनानन्द की सुजान का रूप इतना आकर्षक और मनोहर था कि अनेक प्रकार से वर्णन करने पर भी उन्हें लगता मानों वे उस दीप्ति का वर्णन रूप से नहीं कर पाये, जो हर समय उसके मुख पर छाई रहती थी। कभी वह मुख को निहारते, नेत्रों को सराहते, अरुण कपोलों की चमक से चकित होते और दर्पण से उसके अंगों की दीप्ति की तुलना करके अपनी बुद्धि के कुंठित होने का परिचय देते। सुजान का अंग-अंग एक तरल (द्रवित) सौन्दर्य से आपूरित है, ऐसा लगता है मानो इन्द्रधनुषी रंगों ने उसके चारों ओर घेरा डाल रखा है। इसका वर्णन—

अंग-अंग आभा संग द्रवित स्रवित ह्वै कै,
रचि सचि लीनो सौंज रंगिन घनेरे की।

सुजान के रूप-वर्णन से उसकी अंग-दीप्ति का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। वही सुजान जिसने घनानन्द को अपने सौन्दर्य से पागल कर रखा है, कोई मामूली रूप वाली स्त्री न रही होगी। गौर वर्ण वाली सुजान के मुख पर बिखरे हुए केश उसे चन्द्रमा की बहिन बना देते हैं। हर घड़ी प्रेमी को उस का रूप नया लगता है जब वह हँस कर बोलती हैं तो लगता है उसकी छवि से फूलों की वर्षा हो रही हो और जब उसके मुख पर लाज की आभा बिखरती है तो उसका गौरे वर्ण केतकी कुसुम की कली-सा हो जाता है। अधखुले नेत्रों में से प्रेम छलकता है। अधरों पर मंद मुस्कान है, कपोल हार्दिक उल्लास से और अधिक चमक जाते हैं और उस चितवन से कवि प्रेमी की रीझ और बढ़ जाती है। रूप सौन्दर्य से युक्त अंग दीप्ति के कुछ चित्र इस प्रकार हैं—

(क) सहज सुछवि देखें दबि जाहिं सबै बाम,
बिन ही सिंगार औरें बानिक बिराजै बीन।

(ख) दीठी और को कहूँ नहीं ठौर,
फिर दृग रावरे रूप की दोही।

(ग) वहै मुस्कानि, वहै मृदु बतरानि वहै,
लड़कीनी बानि आनि उर में अरति है।

(घ) छवि को सदन, मोद, मंडित बदन-चन्द,
तृषित-चखनि लाल, कब धौ दिखायहौ।

(ङ) झलकै अति सुन्दर आनन गौर,
छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलन में छवि फूलन की बरखा,
उर ऊपर जाति है ह्वै॥
लट लोल कपोल कलोल करें,
कल कंठ बनी जल जावील द्वै।
अंग-अंग तरंग उठें दुति की,
परिहै मनो रूप अबै धर च्वै॥

(च) छवि को सदन गोरो बदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुस्क्यानि मैं।
दसन-दमक, फैली हियें मोती माल होती,
पिय सों लड़कि प्रेम-पगी बतरानि मैं।
आनन्द की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनंग-रंग ढुरि मुरि जानि मैं॥

(छ) सुन्दर सलोने लोने अंगनि की दुति आगें,
मन मुरझानो मन्द मैन को सो मैल है।

(ज) मूरति सिंगार की उजारी छवि आछी भाँति,
दीठि-लालसा के लोयननि लै लै आँजिहौ।

× × ×

जान प्रान प्यारे अंग अंग-रुचि-रंगनि मैं,
बोरि सब अंगनि अनंग दुःख मोरज हो।

(झ) एँड़ी ते सिखा लौं है अनूठियै अंगेट आछी।

सुजान के अनिंद्य सौन्दर्य का घनानन्द ने स्थान-स्थान पर उल्लेख किया है। एक बार तीव्र गौर वर्ण वाली सुजान ने नीले रंग की साड़ी पहन ली। कवि घनानन्द

ने इस रंग वैषम्य द्वारा छलकते हुए सौन्दर्य-सुधा-सागर का कैसा अनुपम चित्र अंकित किया है—

स्याम घटा लिपटी थिर बीच,
कि सो है अमावस अंक उजियारी।
धूम के पुञ्ज में ज्वाल की मालती,
पै दृग सीतलता सुखकारी॥
कै छीक छायो सिंगार निहारि,
सुजान-तिया-तन-दीपति प्यारी।
कैसी फबी घनआनंद चोपनि सौं,
पहिरी चुनी साँवरी सारी॥

लज्जा नारी का भूषण समझा जाता है। सुजान अनेकानेक आभूषणों से सुसज्जित होकर भी इस भूषण से विहीन नहीं है। सुन्दर तो वह थी ही, मदिरापान करते समय पर उसके नेत्र मद से मतवाले हो कर झुक जाते थे और झूम कर ताकती थी, तब लगता था लज्जा ही रीझ गई है - कवि इस मदोन्मत्त ललित सौन्दर्य में डूब कर कहता है—

दृग छाकत हैं छवि ताकत ही,
मृगनैनी जबै मधुपान छकै।
घनआनंद भीजि हँसै सुलसै,
झुकी झूमति घूमति चौंकि चकै।
पल खोलि ढकै लगि जात जकै,
न सम्हारि सकै बलकै अरु बकै।
अलबेली सुजान को कौतुक पै,
अति रीझ इकौसी ह्वै लाज थकै।

लाज का निदर्शन अनेक छन्दों में कवि ने अनेकों प्रकार से किया है, कहीं उसके विशाल और चंचल नेत्रों की चितवन में लाज का निवास है और कहीं तिरछे कटाक्षपात भी हैं और दृष्टि भी लाज में लिपटी हुई है—बिचारा प्रेमी कवि कहाँ तक बच पाता होगा। अभिनय कला में निपुण, काम कला में प्रवीण और अप्रतिम सुन्दरी नर्तकी कभी भूल से घूंघट निकाल कर बैठ जाय तो लगता है, मानो लज्जा की ही वर्षा हो रही है। निम्न चित्र में कवि ने एक पूरा का पूरा छन्द लाज पर रचा है—

घूंघट काढ़ि जो लाज सकेलति,
लाजहि लाजति है बिन काजनि।
नेननि बेनीन मैं तिहि ऐन सु,
होत कहा अब सजे पट साजनि।

सील की मूरति जान रची विधि,
ताहि अचम्भे भरी छवि छाजनि ।
देखत देखत वीसो परै नहिं,
यौं बरसै घनआनंद लाजनि ।

अधिकतर छन्दों में कवि ने लज्जा को चितवन के साथ जोड़ा है । चितवन लाज से मानो आवेष्टित है या लज्जा से ही भीगी हुई है । उसके नेत्रों अथवा चितवन का वर्णन करते हुए घनानंद ने अनेक छन्दों में सलज्जता का चित्रण किया है—

(क) लाज लपेटनी चितवनि भेद-भाप-भरी,
लसति ललित लोल चख-तिरछनि मैं ।

(ख) चंचल बिसाल नैन,
लाज भीजियै चितौनि ।

(ग) मीन कंज खंजन कुरंग मान भंग करै,
सीचैं घनआनंद खुले संकोच सों मढ़ै ।

(घ) बड़ी-बड़ी अखियानि मैं अंजन रेख,
लजीली चितौनी हिया रस पागै ।

अंगदीप्ति और सलज्जता के समान कवि ने सुजान के यौवन और उसकी मद-मस्ती का भी वर्णन किया है । यौवन और रूप सौन्दर्य की पुतली सुजान को जब से कवि ने देखा तब से, उसके नेत्र उस मदमस्त यौवन को पुनः देखने के लिए हड़ताल किये हुए हैं । इस उत्कट लालसा को बलवती बनाने का कारण केवल सुजान का अप्रतिम यौवन और सौन्दर्य ही है, उसके चित्त पर सुजान की छवि की छाप ऐसी पड़ी है कि वह उस रूप-राशि को दुबारा देखने के लिए बेचैन है—

मृदु मूरति लाड़ दुलार भरी,
अंग-अंग विराजति रंग-मई ।
घनआनंद जोबन-माती दसा,
छवि ताकत ही मति छाक छई ।
बसि प्रान सलोनी सुजान रही,
चित्त पै हित-हेरनि-छा वई ।
वह रूप की रासि लखी जब तें,
सखी आँखिन के हटतार भई ।।

सुजान रूप गर्विता नारी थी । यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि नारी में गुमान होता है और खुदा जब उसे असीम रूप-राशि दे देता है, तब तो उसका यौवन गरूर से भर उठता है । सुजान के यौवन का वर्णन करते हुए उसके यौवन के गरूर या अभिमान का, उसकी गुरूता का, यौवन के नशे से थके होने और प्रमत्त होने का

तथा यौवन में स्वभाव में आयी मस्ती और अलबेले-पन का कवि ने अनेक प्रकार से अनेक स्थलों पर चित्रण किया है। कहीं पर रूप यौवन को दीवाली के अवसर पर जोशीला जुआरी कहा है और कहीं यौवन के मदमाते रूप की राखी बांधी गई है—

रूप खिलार दिवारी किये,
नित जोबन छाकि न सूधें निहारें।
नैननि सेन छलें चित सों,
चित-चाव भरयो निज दाव बिचारें॥

नेत्रों की विशालता में यौवन का, रूप का गर्व स्पष्ट झलक रहा है—

जोबन गरूर गरूवाई सौं भरे बिशाल,
लोचन रसाल चितवनिबंक छैल ह्वै।

घनानंद ने सुजान को प्रेम किया—वे उसके यौवन के रूप के सच्चे पुजारी थे। वे उससे जिस तरह से प्रभावित थे, उन्हें लगता था कि राजदरबार का प्रत्येक व्यक्ति सुजान पर आसक्त है, उसकी प्रशंसा करता है। सुजान जब नृत्य करती थी और नृत्य की मुद्रा में कभी घूमती थी और कभी दर्शकों पर कटाक्षपात करती थी, उस समय कवि सोचता है कि इस रूप की मतवाली सुजान के कटाक्ष से कौन बच पाता होगा—

रूप-मतवारी घनआनन्द सुजान प्यारी,
घूमरे कटाक्ष घूम करें कौन पै घिरें।

रूपगर्विता और यौवन की मस्ती के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

(क) **रूप-लाड़-जोबन-गरूर चोप चरक सों**
अनखि अनोखी तात गावै लै मिहीं सुरें।

(ख) **जोबन गहेली अलबेली अति ही नबेली,**
हेली हैं सुरति बेली आंचर टरें टरी॥

सुजान के रूप सौन्दर्य का, उसके यौवन की उन्मत्तता का खुला चित्रण भी कवि ने किया है, जिनमें उसके अंगों की आभा, नव-यौवन की चमक, नैनों को रूप के भंवर में डूबे रहना आदि वर्णन हैं। यहाँ रूप-गर्विता के स्तनों का अत्यंत मनोहर चित्रण हुआ है। सुजान के अप्रतिम रूप को उसकी छातियाँ अचम्भे में भर देख रही हैं। रीतिबद्ध परिपाटी से एकदम विनिर्मुक्त कवि की सौन्दर्य-परक व्याख्या है। जहाँ उन्होंने दुन्दुभियों को औंधा किया है, पर्णकुटी के बीच शिवजी को बिठाया है और 'कलश-पयोधरों' की संज्ञा दी है—वहीं घनानंद इस प्रकार के वर्णन से साफ बच गये हैं। **'अचम्भे भरी छतियाँ उथराई'** कह कर स्तनों की सुदीर्घता, पुष्टता और कठोरता की ओर संकेत किया है—

अंगनि पानिप ओप ढरी,
निखरी नव जोबन की सुथराई।

नैनति बोरति रूप के भौंर,
अचम्भे भरी छतियाँ उथराई ।।
जान-महा-गरुवे-कुन मैं,
घनआनन्द हेरि रह्यो थुथराई ।
पैंने कटाछनि ओज मनोज के,
बानन बीच बिधि मथुराई ।।

घनानंद का काव्य नितान्त अन्तर्मुखी काव्य है। उन्होंने सुजान के रूप-सौन्दर्य का उसके यौवन की मस्ती का, गरूर का—इन सब की सहज सूक्ष्म झलक को बड़ी चतुराई से साकार करने में अपना शिल्पगत चमत्कार दिखाया हैं। डॉ० सावित्री सिन्हा ने घनानंद के रूप-वर्णन को 'तरल सौन्दर्य' शब्द से अभिव्यंजित किया है। उनके अनुसार—"घनानंद के प्रतिपाद्य में अन्तर्वृत्ति का निरूपण अधिक है। इसलिए सहजतापूर्ण चलते फिरते चित्र वे अधिक नहीं खींच पाये हैं। उनमें सौन्दर्य का चित्रण भंगिमापूर्ण, रंगमय और रससिक्त है, परन्तु उनमें आलम्बन के अंग-प्रत्यंगों का चित्रण न हो कर उसके तरल-सौन्दर्य का अंकन हैं। अंग-प्रत्यंग में झलकते हुए लावण्य की अभिव्यक्ति है जो लक्षित चित्र-योजना के क्षेत्र में बड़ी समर्थ बन पड़ी है।" घनानंद के रंगमय तथा भंगिमापूर्ण चित्र भी असाधारण है। निम्न चित्र में एक ओर उनकी सूक्ष्म अन्तर्वृत्ति का निरूपण है, तो दूसरी ओर सुजान के शरीर की समस्त शोभा को, उसके स्वभाव को, चाल-ढाल को शब्द-मय चित्रता प्रदान करता है -

अंग-अंग-आभा-संग द्रवित-स्रवित ह्वै कै,
रचि सचि लीनी सौंज रंगीन घनेरे की।
हँसनि लसनि आछी बोलनि चितौनो चाल,
मूरति रसाल रोम-रोम छवि-हेरे की ।।

घनानन्द ने नायिका के उदीयमान यौवन तथा मुख-मंडल की सुन्दरता का चित्रण करने के लिए 'चन्द्रमा' को उपमान के रूप में रखा है। 'सरस-सुधाकर' जैसे अप्रस्तुत के माध्यम से नायिका के अधरों की आभा का वर्णन कितना सुन्दर है—

नई तरुनाई भई, मुख आछी अरुनाई,
सरद-सुधाकर-उदोत आभा रद की।

सुजान रूप-गर्विता नायिका है, परन्तु उसके चेहरे पर हर समय हंसी, मुस्कान की आभा बिखरी रहती है। गौर वर्ण अपने सौन्दर्य से 'अरुण' हो उठा है। उसके अंगों की लाली जहाँ एक ओर उसके स्वास्थ्य और यौवन का प्रमाण है, वहीं अतर्दीप्ति की भी प्रतिच्छाया है। सुजान के लिये—

मुख आछी अरुणाई।

तथा —

तरुनाई तेज अरुनाई पेखियति है।

आदि में उसके अंगों का सौन्दर्य और रूप की छटा का चित्रण है। घनानन्द ने सुजान के रूप के विषय, उसकी अंग दीप्ति, स्वभाव, वर्ण, अंग सौन्दर्य, अभिनय, नृत्यादि के विषय में इतना अधिक लिखा है कि उस पर जितना भी लिखा जाय कम है। कहीं वे उसके नेत्रों की विशालता को देखकर मुग्ध हैं, तो कहीं 'रूप की निकाई', उनकी मति को कुण्ठित कर देती है। लजीली हँसी उनके चित्त में आकर गड़ जाती है, मधुरता-भरी मुस्कान उनका जीना हराम कर देती है और उन्हें ऐसा लगता है, मानो उसका रूप इतना अधिक है, जिसे वह स्वयं भी संभाल नहीं पायेंगे और वह 'रूप' अभी उनके देखते-देखते धरती पर चू पड़ेगा। सुजान के रूप के प्रभाव का वर्णन नानाविध प्रकार से किया है। नेत्रों पर अथवा बाह्य-सत्ता पर सुजान के रूप के प्रभाव की चर्चा अधिकतम छन्दों में हुई है—जैसे जब से इन नेत्रों ने सुजान को देखा, तो ये रीझ गये और नेत्रों की रीझ के हाथ प्रेमी का मन सुजान के हाथ बिक गया और वह इतनी निष्ठुर है कि 'मन' लेकर छटाँक-भर भी देना नहीं चाहती, नेत्रों में हर समय सुजान के रूप को देखने की लालसा बनी रहती है, जब से सुजान को इन नेत्रों ने देखा, फिर किसी ओर देखने की चाह ही मर गई। कभी नेत्र उसको देखकर स्थिर हो जाते हैं और कभी सामने न पाकर चंचल हो उठते हैं। नेत्र बिचारे करें भी क्या -- वियोग की अवस्था में सुबह से शाम तक और रात्रि से भोर पर्यन्त वे कानन की ओर ही निहारते रहते हैं। इस प्रकार वे सुजान के रूप सम्मोहन में फँस गये हैं कि बिचारे घनानन्द का उन पर—अपने पर से अधिकार जाता रहा है। सुजान के रूप-वर्णन में निम्न उदाहरण एकदम सटीक बैठता है—जहाँ प्रेमी घनानन्द अपनी लुटी हुई दशा का वर्णन करते हैं, परन्तु अन्तर यह है कि अपने लुटने का, हारने का उन्हें जरा भी खेद नहीं—यही तो प्रेम की जीत है, जहाँ मन हार जाता है, बुद्धि साथ नहीं देती है—

रावरे रूप की रीति अनूप,
नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारियै।
त्यों इन आँखिन बानि अनोखी,
अघानि कहूँ नहीं आनि तिहारियै॥
एक ही जीव हुत्यो सो तो वार्यो,
सुजान संकोच और सोच सराहियै।
रोकी रहै न, दहै घनआनन्द,
बावरी रीझ कै हाथनि हारियै॥

कुछ छन्दों में सुजान के स्वभाव का चित्रण भी मिलता है। एक ओर उन्होंने सुजान को अत्यन्त निर्मोही, कठोर, हृदयहीन, निष्ठुर आदि कहा है, परन्तु यह सब दोष केवल व्यथा-वर्णन के समय ही आये हैं। फिर भी किसी प्रकार का दोषारोपण सुजान पर नहीं किया। वह एक रूप गर्विता युवती है, जिसका स्वभाव अभिमानपूर्ण, यौवन, गरूर और गुमान से युक्त है, परन्तु प्रेमी की दृष्टि कभी दोष नहीं देखती,

उसे उसका गर्व अत्यन्त सहज और स्वाभाविक लगता है। सुजान के गरूर की चर्चा प्रसंगवश घनानन्द ने की है, जहाँ उसके स्वभाव का परिचय मिलता है—

रूप-लाड़ जोवन-गरूर चोप चटकसों
अनखि अनोखो गावें लें मिहीं सुरें।

× × ×

सरस सुजान घनआनन्द भिजावें प्रान,
गरबीली ग्रीवा जब आनि मति पैं बुरें।

सुजान के नेत्रों में उसके रूप का उन्माद हर समय झलकता रहता है। कहा जाता है नेत्रों को देखकर मनुष्य के स्वभाव का पता बड़ी आसानी से चल जाता है, क्योंकि नेत्र मन के दर्पण होते हैं और व्यक्ति का मन उसके स्वभाव के अनुकूल कार्य करता है। डॉ० सावित्री सिन्हा के शब्दों में —"नेत्रों के द्वारा विभिन्न मानसिक स्थितियों की अभिव्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के उपमानों के संयोजन द्वारा नेत्रों को हृदय का दर्पण सिद्ध कर दिया जाता है।'

रूप-गुन-मद-उनमद नेह-तेह-भरे,
छल-बल-आतुरी चटक-चातुरी पढ़े।
घूमत घुरत अरबीले न मुरत नेकौं,
प्रानन सो खेलें अलबेले लाड़ के बढ़े॥

एक ओर जहाँ नायिका अपने रूप और यौवन के कारण मदमाती है, वहीं दूसरी ओर घनानन्द ने उसके 'आधे सुभाव' का भी वर्णन किया है। वहाँ बहुत ही स्पष्ट शब्दों में सुजान के स्वभाव को अत्यन्त सहज कहते हुए कवि कहता है—

पानिप मोती मिलाय गुही,
गुन-पाट पुही सु जु ही अभिलाखी।
नीके सुभाय के रंग भरी,
हित-जोति खरी न परें कछु भाखी॥

अन्यत्र—

तू अलबेली सरूप की रासि,
सुजान बिराजति सादे सुभायनि।

घनानन्द ने सुजान के स्वभाव के विषय में उपर्युक्त प्रकार के छन्द बहुत अल्प मात्रा में लिखे हैं। अधिकता उन कवित्तों और छन्दों की है, जिनमें एक ओर उसके अप्रतिम सौन्दर्य का वर्णन है और दूसरी ओर उसकी स्वभावगत और चरित्र-गत निष्ठुरता का वर्णन है। कारण एकदम स्पष्ट है, सुजान के साथ संयोग का काल अत्यन्त अल्प रहा और दूसरी बात सुजान की पेशेगत उपेक्षा-दृष्टि। कुछ चित्र इस प्रकार हैं, जिनमें उसके स्वभाव का परिचय मिलता है —

(क) झूठ की सचाई छाक्यौ
त्यौं हित-कचाई पाक्यौ,
ताके गुन-गन घनआनन्द कहा गनौ।

(ख) कहौ कछु और, करौ कछु और,
गहौ कछु और, ललावत औरे।
मिलौ सब रंग, कहूँ नहीं संग,
सिहारी तरंग तकैं मति बौरे।
गढ़ौ बतियानि मढ़ौ छतियानि,
डढ़ौ छतियानि, निवान की ठौरै।
महा छल छाय, खुलै हौ बनाय,
कितै घनआनंद, चातिक दौरे॥

घनानन्द के रूप-सौन्दर्य की आलोचना से एक बात साफ जाहिर है कि उन्होंने अपनी काव्य पद्धति में रीतिकालीन परिपाटी का अनुसरण नहीं किया। नायिका के नख-शिख वर्णन में उन्होंने उन समस्त अंगों को विवेचित किया, जिन्हें उनके पूर्वज कवि कर चुके थे, परन्तु अन्तर दृष्टि-भेद में है। सौन्दर्य के प्रति घनानन्द का दृष्टिकोण व्यापक था। अपनी स्वच्छन्द मनोवृत्ति के कारण और व्यक्तिगत रूप से प्रेम करने के कारण सौन्दर्य की जो छटा उन्होंने प्रस्तुत की है, वह अपनी प्रभावोत्पादकता में अत्यन्त सहज और स्वच्छ है। इसी कारण से लोगों की भाँति उन्होंने कवित्तों की रचना नहीं की, अपितु उनको तो उनके कवित्तों ने ही बनाया। उनकी सौन्दर्यपरक दृष्टि भाव-भावित है, बुद्धि-बोधित नहीं। इसी कारण आन्तरिकता से युक्त उनका सौन्दर्य-चित्रण एक ऐसा तारल्य प्रस्तुत करता है, जो अपनी अनूठी चमक से देदीप्यमान हो उठा है—मांसलता उसे छू भी नहीं पाई।

५ | घनानन्द और श्रृङ्गार-वर्णन

संयोग पक्ष

संस्कृत काव्यशास्त्र के इतिहास में रस आदि से अन्त तक किसी-न-किसी रूप में निरूपित होता रहा। आद्याचार्य भरत ने रस-विषयक प्रायः सभी सामग्री साक्षात् रूप से अथवा प्रकारान्तर से प्रस्तुत की थी। उनके उपरान्त भामह के समय तक काव्यशास्त्र का इतिहास नहीं मिलता। भामह, दण्डी, उद्भट यद्यपि अलंकारवादी थे, फिर भी, इन्होंने रस को समुचित स्थान दिया। यही स्थिति रीतिवादी वामन, ध्वनि-वादी आनन्दवर्द्धन और वक्रोक्तिवादी कुन्तक की भी रही। वास्तव में रस-काव्य की आत्मा है। भरत मुनि ने प्रारम्भ में इनकी संख्या आठ मानी और कालान्तर में यह नौ हो गये। धीरे-धीरे भक्ति और वात्सल्य भी रस संख्या में आ गये। अब रसों की संख्या ग्यारह मानी जाती है। शृंगार को सभी रसों में मूर्धन्य स्थान प्राप्त है। हिन्दी के कतिपय रीतिकालीन आचार्यों ने शृंगार रस को रसनायक, रसपति और रसराज आदि कहा है। संस्कृत के काव्यशास्त्रियों ने इसे इन उपाधियों से विभूषित तो नहीं किया, पर वे इसे स्पष्टतः अथवा प्रकारान्तर से एकमात्र रस या अन्य रसों की अपेक्षा सर्वोत्कृष्ट रस घोषित करते रहे। भरत, रुद्रट, आनन्दवर्धन तथा अभिनव गुप्त ने इसे सर्वोत्कृष्ट रस माना। भोजराज और अग्निपुराण ने इसे एकमात्र रस माना और रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने भी इसी धारणा की पुष्टि की। इसके साथ-साथ पहली धारणा भी प्रचलित रही—विश्वनाथ आदि अनेक अन्य आचार्यों ने भी इसे सर्वोत्कृष्ट रस स्वीकृत किया।

'शृंगार' ही सर्वोत्कृष्ट रस है—इस सम्बन्ध में विभिन्न संस्कृताचार्यों ने निम्नोक्त कथनों का उल्लेख किया है—

भरत—

"संसार में जो कुछ भी पवित्र, विशुद्ध, उज्ज्वल और दर्शनीय है, उसकी उपमा शृंगार रस से दी जाती है।"

रुद्रट—

"श्रृंगार रस जैसी रस्यता को अन्य कोई रस उत्पन्न नहीं कर सकता। इसी रस में ही आबाल-वृद्ध सभी मानव ओत-प्रोत हैं। इस रस के समावेश के बिना काव्य हीन कोटि का है। अतः इसके निरूपण में कवि के लिए विशेष प्रयत्न अपेक्षित है।"

आनन्दवर्द्धन—

"श्रृंगार ही सर्वाधिक मधुर और परम आह्लादक रस है।"

अभिनव गुप्त—

"श्रृंगार रस सर्वाधिक कमनीय है—यह तथ्य अनुभव सिद्ध है, अतः यह सर्वप्रधान है।"

विश्वनाथ—

"यह रस सर्वाधिक व्यापक है, क्योंकि इस रस में उग्रता, मरण और आलस्य को छोड़कर शेष सभी संचारी भावों तथा जुगुप्सा को छोड़कर शेष सभी स्थायी भावों का समय अथवा परिस्थिति के अनुसार सम्बन्ध रहता है।"

श्रृंगार रस पर लिखते हुए पंडित रामवहिन मिश्र ने कहा—

"नौ रसों में श्रृंगार रस की प्रधानता है। भरत आदि आचार्यों ने इसकी प्रथम गणना की है। इसे आदि-रस भी कहते हैं और रसराज भी। कारण यह है कि इसकी तीव्रता और प्रभावशीलता सब रसों में बढ़ी चढ़ी है। दूसरी बात यह कि काम-विकार सर्वजाति सुलभ, हृदय आकर्षक और अत्यन्त स्वाभाविक है। इस रस के प्रभाव से महामुनियों के हृदय भी बदल गये हैं, उनका आसन भी डगमगा गया है।"

श्रृंगार रस अपनी रसनीयता के कारण ही सब रसों का प्रधान है—

नवरस सब संसार में, नवरस में ससार,
नवरस सार श्रृंगार रस, युगलसार संसार।

रुद्र भट्ट ने अपने ग्रन्थ 'श्रृंगार-तिलक' और भोजराज ने 'सरस्वती कण्ठाभरण' में तथा 'श्रृंगार-प्रकाश' में श्रृंगार की महानता स्वीकार की है। इसी प्रकार अनेक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ श्रृंगार को ही रसराज मानते हैं। 'केशव' ने 'रसिक-प्रिया' में श्रृंगार के अन्तर्गत अन्य सभी रसों को घटा दिया। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—

"कवियों तथा आचार्यों का एक समूह बराबर ही इस रस को ही एकमात्र या प्रधान रस मानता रहा। हजारों वर्षों की सुदीर्घ परम्परा में इस समूह से आचार्यों की कभी भी कमी नहीं हुई। काव्य में श्रृंगार रस के इस महत्त्व का कारण है।"

इस प्रकार उक्त आचार्यों के अनुसार श्रृंगार को सर्वोत्कृष्ट रस मानने के कारण हैं—

रति (काम) सर्वजन काम्य है।

श्रृंगार रस में सर्वाधिक अपितु सभी स्थायी भावों और संचारी भावों का

समावेश संभव है। वस्तुतः इतना ही नहीं, सभी अनुभावों और सात्त्विक भावों की स्थिति भी श्रृंगार रस के दोनों भेदों—'संयोग और विप्रलम्भ' के साथ संभव है। अन्य रसों की अनुभूति खंडित होती है, वह क्षणिक होती है, जबकि श्रृंगार की अनुभूति स्थायी है। श्रृंगार रस के आलम्बन नायक और नायिका दोनों हुआ करते हैं। रति के उद्दीपन और रस-दशा ग्रहण के सम्बन्ध में यह तथ्य सर्वमान्य है कि प्रेम की अनुभूति सार्वत्रिक है और उस अनुभूति में जीवन के सभी रूपों का ग्रहण हो जाता है। भाव के प्रायः सभी रूप श्रृंगार में अन्तर्भूत हो जाते हैं। नर और नारी का आकर्षण ही श्रृंगार का मूल है। व्यापकता और प्रसार का मुख्य कारण श्रृंगार के प्रेम, स्नेह, मैत्री, वात्सल्य, श्रद्धा, भक्ति और सख्य इत्यादि अनेक भेद हैं। व्यापकता का एक दूसरा कारण शुक्लजी के अनुसार यह है कि यही एक रस है, जिसकी अभिव्यक्ति हँसकर भी होती है और रो कर भी। अनुभूति के स्तर पर संयोग-वियोग दोनों समान हैं।

इन सभी परिभाषाओं और कारणों के आधार पर श्रृंगार रस को सर्वजन ग्राह्य, सर्वाधिक कमनीय, सर्वाधिक आह्लादक, सर्वाधिक व्यापक तथा किसी सीमा तक परम्परा-सम्बन्ध से अन्य रसों का उत्पादक कारण मानने के कारण इसे रसराज अथवा रसपति कहा जा सकता है।

'श्रृंगार' शब्द की व्युत्पत्ति 'श्रृंग' तथा 'आर' शब्द से हुई है। 'श्रृंग' का लक्षणा के आधार पर यह अर्थ लिया जाता है कि यह अनुभूति का सर्वोच्च शिखर, अनुभूति का श्रृंग है अर्थात् श्रृंग का तात्पर्य है, कामोद्रेक और कामोद्रेक की उत्पत्ति का कारण ही श्रृंगार कहलाता है। श्रृंगार मानव की मूल भावना 'काम' से सम्बद्ध है। काम जिसके अन्तर्गत वासना का परिगणन है, नर-नारी का परस्पर आकर्षण है। शास्त्रीय विवेचन की दृष्टि में श्रृंगार की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है -

श्रृंग हि मन्मथोद्भेदस्त दागमनहेतुकः।
उत्तम प्रकृति प्रायो रसः श्रृंगार इष्यते ॥

—साहित्य-दर्पण

वात्सायन के अनुसार भी काम ही मानव की भावनाओं का मूल है। पाश्चात्य मनोविज्ञान भी काम को मूल वृत्ति के रूप में स्वीकार करता है। फ्रायड ने काम को सारे जीवन-व्यापारों की एकमात्र प्रेरणा माना है। युंग ने उसी काम को शक्ति अर्थात् Libido कहा है। अभिप्राय यह है कि श्रृंगार इस प्रकार मनोविज्ञान एवं चिंतन के आधार पर जीवन का मूल भाव और तात्त्विक अंश है।

श्रृंगार-रस का स्थायी भाव 'रति' है। भरत के अनुसार 'रति' मूर्त्त रूप में उज्ज्वलवेषात्मक, पवित्र एवं दर्शनीय है। श्रृंगार का वर्ण्य-विषय उत्तम स्वभाव के पुरुष और स्त्री की रति है। 'साहित्य-दर्पणकार' ने काम के अंकुरण को श्रृंग कहा है। पर स्त्री अथवा अनुरागशून्य वेश्याओं के अतिरिक्त अन्य नायिकाएँ और दक्षिण

इत्यादि नायक भी इस रस के, विश्वनाथ के अनुसार आलम्बन-आश्रय हो सकते हैं, स्वयं भगवान् इसके देवता हैं। शृंगार के आलम्बन हैं—नायक-नायिका, सखी, परिहास आदि उद्दीपन हैं। चन्द्रमा फाग ऋतु प्रेमजन्य हाव-भाव, अनुभाव हैं। जुगुप्सा, मरण, उग्रता तथा आलस्येतर सभी संचारी भाव इसमें आ जाते हैं। प्रिय वस्तु के प्रति हमारे मन में उसके प्रति उन्मुखीकरण ही रति है। स्थूल रूप से शृंगार रस की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है कि विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव के संयोग से अभिव्यक्त होने वाला दाम्पत्य रति स्थायी भाव ही शृंगार रस है। इसके दो भेद हैं—संयोग और वियोग। वियोग को शास्त्रीय शब्दावली में विप्रलम्भ शृंगार रस भी कहते हैं।

संयोग शृंगार

नायक और नायिका के परस्पर अनुकूल दर्शन, स्पर्श और आलिंगन आदि व्यापारों को संयोग कहा जाता है। संयोग के लिए आकर्षण का समभाव आवश्यक है। भानुदत्त की रस तरंगिणी के अनुसार "बलात्कार तथा एक ओर से रति का न्यूनाधिक प्रदर्शन रस न रहकर शृंगार रसाभास हो जाता है।" डॉ० भागीरथ मिश्र के शब्दों में —"जहाँ रस रूप स्थायी भाव प्रिय के संयोग से परिपुष्ट होकर विविध अनुभावों तथा संचारियों द्वारा प्रकट होता है, वहाँ संयोग की स्थिति होती है।" संयोग शृंगार के कई भेद किये गये हैं, उनमें आरम्भकर्त्ता प्रकाशन और स्तर-भेद इत्यादि का आधार है।

आरम्भ कर्त्ता की दृष्टि से 'नायकरब्ध' और 'नायिका-रब्ध', प्रकाशन की दृष्टि से 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' तथा स्तर-भेद के विचार से 'संक्षिप्त' 'संकीर्ण' 'सम्पन्नता' और 'समृद्धिमान' भेद है।

उपर्युक्त सूक्ष्म भेदाभेदों को छोड़कर साहित्य में स्थूल रूप से संयोग शृंगार के दो भेद किये गए हैं—(१) संयोग शृंगार, (२) संभोग शृंगार। संयोग शृंगार में पारस्परिक रति होती है, परन्तु संभोग की प्राप्ति नहीं होती। दूसरी ओर संभोग शृंगार में नायक और नायिका की पारस्परिक रति में संभोग शृंगार निहित रहता है।

हिन्दी साहित्य में शृंगार-रस का प्रवेश जयदेव के गीत-गोविन्द से माना जा सकता है। गीत गोविन्द में यथास्थान असंयत तत्त्व भी प्रवेश पा गये हैं। जयदेव के गीत गोविन्द से प्रेरणा प्राप्त करने वालों में विद्यापति अग्रगण्य हैं। कहने को उनका काव्य भक्ति काव्य है, क्योंकि उस पर राधाकृष्ण की छाप हर पद पर मिलती है, परन्तु उन्होंने अपनी पदावली में राधा-कृष्ण के जीवन को सर्वांगीण रूप में न देखकर उनकी शृंगार और विलासमयी लीलाओं को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। यद्यपि विलासिता की गन्ध उसमें आने लगती है, किन्तु उस समय की भक्ति का रूप भी अनेक धर्माचार्यों के द्वारा इस प्रकार से प्रस्तुत किया गया था, जहाँ विशुद्ध शृंगार पर भी भक्ति का आरोप कर लिया था। पर आधुनिक आलोचकों

के मत में विद्यापति में आध्यात्मिकता ढूंढ़नी व्यर्थ है, क्योंकि उन्होंने यौवन विकास तथा वय-सन्धि के वर्णनार्थ राधाकृष्ण का चित्रण किया—

पीन पयोधर दूबरी गता,
मेरु उपजत कनकलता।

भक्तिकाल में 'भक्ति' का ही प्राबल्य था, प्राधान्य था। परन्तु शृंगार चित्रण से यह काव्य नहीं बन सकता। राधा-कृष्ण के माध्यम से सूर आदि अष्टछाप के कवियों ने शृंगार की नीची से नीची और ऊँची-से-ऊँची मनोदशाओं का वर्णन किया है। उन्होंने रति की अंकुर-स्वरूपा प्रारम्भिक आकर्षणमयी जिज्ञासा का बहुत मनोरम वर्णन किया है—

(क) खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी।
× × ×
गये स्याम रवि तनया के तट, अंग लसति चंदनि की खोरी।
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन बिसाल भाल दिस रोरी॥
× × ×
सूर स्याम देखत ही रीझे, नैन-नैन मिली ठगोरी॥

—भ्रमरगीत सार

(ख) बूझत स्याम कौन तू गोरी!
कहाँ रहति काकी तू बेटी? देखी नाहीं कहूँ ब्रज की खोरी।
× × ×
तुम्हरो कहा चोरी हम लै हैं? खेलन चलौ संग मिलि जोरी॥
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, बातीन भुरइ राधिका भोरी॥

जायसी आदि प्रेममार्गियों ने अपनी प्रेमकथा के प्रेम-पात्रों के माध्यम से सूर आदि ने राधाकृष्ण के द्वारा और तुलसी ने (अपेक्षाकृत मर्यादित ढंग से) संयोग शृंगार का चित्रण किया है।

(क) तुम पै कौन दुहावै गैया?
इत चितवत, उत धार चलावत, एहि सिखयो है मैया।

—भ्रमरगीत सार

(ख) तात जनक कन्या यह सोई, धनुष जग्य जेहि कारन होई।
पूजन गौरि सखि लेइ आई, करत प्रकास फिरई फुलवाई।

(ग) देखन मिस मृग बिहँग तरु फिरई बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि, बाढ़इ प्रीति न थोरी॥

यहाँ अवहित्था (एक प्रकार की लज्जा जो हृद्‌गत हर्षादि भावों को छिपाने के प्रयत्न में व्यक्त होती है) और संचारियों की अत्यन्त मनोहर छटा है।

रीतिकालीन काव्य में शृंगार भावना की भक्ति-मंडित भव्यता के स्थान पर स्पष्ट वासनात्मक लौकिकता झलकती है। प्राकृत की गाथा सप्तशती और आर्यासप्तशती आदि से शृंगार की मग्न भावना हिन्दी में आई। विद्यापति पर इनका स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। भक्तिकाल के राधा-कृष्ण मात्र सामान्य नायक-नायिका रह गये। यद्यपि विद्यापति ने किसी निश्चित रूप-रेखा के अनुसार पदावली में नायिका भेदोपभेद प्रस्तुत नहीं किया है, किन्तु राधा कृष्ण के परकीया प्रेम के सीमित वृत्त में नायिका भेद का जो भाग सहज में समाविष्ट हो सकता था, वह सब कुछ पदावली में है। रीतिकालीन कवियों ने जो विस्तृत नायिका भेद प्रस्तुत किया, उसकी परम्परा का आदि स्रोत आदिकाल में देखा जा सकता है। रीतिकाल में भक्तिकालीन राधा कृष्ण नायक-नायिका बन गये, बृन्दावन की कुंज, 'गलियाँ महलों में आकर बस गईं। कवि स्वयं अपनी सत्ता खो बैठे और प्रभु आश्रित होने के स्थान पर राज्याश्रित हो गये। उनका कार्य बाल-कृष्ण को जगाने के स्थान पर राजा की कामुकता को जगाना रह गया। धनोपार्जन तथा यश उनका मुख्य उद्देश्य रहा। इन कवियों में आचार्य बनने का चाव उत्तरोत्तर बढ़ रहा था परिणामतः रीतिकालीन कविता अलंकार युक्त हो गई। इस काल में अश्लील चित्रों की नुमाईश कवियों ने लगा डाली। प्रजा-रक्षक राजा कामिनियों की केशराशि सुलझाने और नीवी बन्ध खोलने की कला में निपुण हो गया। इस युग की शृंगारिकता में प्रेम की एकनिष्ठता न होकर विलास की रसिकता और ऐन्द्रिय चित्रण का प्राधान्य हो गया। इस घोर शृंगारिक वातावरण में 'रीति' की एक ऐसी धारा बह निकली, जिसने स्वयं को 'रीति' से मुक्त करके हृदय की विशुद्ध अनुभूति से काव्य-भूमि को सींचा - यही धारा रीति मुक्त काव्यधारा कहलाई। घनानन्द इसके मूर्धन्य कवि हैं। घनानन्द ने 'भी परम्परागत संयोग शृंगार को ही काव्य का आधार बनाया परन्तु यह आधार अपनी नवीन भाव भूमि पर खड़ा हुआ। परम्परागत संकीर्णता, वासनात्मकता और अश्लीलता को इन्होंने अपने काव्य में स्थान नहीं दिया, डॉ० मनोहर लाल गौड़ के शब्दों में —

"जो प्रेम-वासना मूलक है उसका पर्यवसान भोग में होता है, । पर जो विशुद्ध आत्मानुभूति के रूप में है, उसका पर्यवसान भी प्रेम में ही होता है। ऐसा प्रेम किसी वस्तु जैसे भोगादि का साधन नहीं बनता। इस साध्यभूत प्रेम का मिलन संयोग कहा जाना चाहिए। घनानन्द जी ने अनुभूत्यात्मक प्रेम के प्रसंग से संयोग वर्णन किया है और साधनात्मक प्रेम में राधा और कृष्ण के मिलन में संयोग का वर्णन पदों में किया है।"

घनानन्द का संयोग शृंगार एक अन्य महत्त्वपूर्ण स्थिति को हमारे सामने स्पष्ट करता है। प्रायः यह कहा जाता है कि संयोग में विहार या विलास की प्रधानता होने के कारण भावानुभूति अत्यन्त शिथिल हो जाती है किन्तु घनानन्द के संयोग शृंगार के वर्णन में बराबर भावों का उदय होता है अथवा उनकी अनुभूति होती है। यही कारण है कि कवि ने संयोग हो या वियोग — भावोदय का ही अधिक वर्णन किया है।

ऐसा करने में वह उन परम्परागत अश्लील वर्णनों से बच गया है, जो उसके काव्य को सस्ता बनाकर छिछली मनोवृत्ति का परिचय देते। इसी कारण घनानन्द के संयोग और वियोग दोनों प्रकार के वर्णनों में मानसिकता की ही प्रधानता है। भोग के खुले चित्रों को प्रस्तुत करते समय भी कवि सुजान के साथ मानसिक तादात्म्य बनाये हुए हैं। केवल उसके शरीर के कामोत्तेजक अंगों पर उसकी दृष्टि नहीं रुकी।

घनानन्द के संयोग श्रृंगार का वर्णन करने से पूर्व यदि रीतिमुक्त काव्यधारा के 'श्रृंगार' संबंधी दृष्टिकोण पर एक विहंगम दृष्टि डाली जाय तो ज्ञात होगा कि यह काव्यधारा मूल रूप में काव्यगत दृष्टिकोण के सम्बन्ध में ही परम्परागत काव्यादर्शों से भिन्न है। परम्परागत उपमानों के विधान-मात्र में जो उस काल की कविता में इन्हें विशेष रुचि न थी और न ही वे कवि और काव्य दोनों की सार्थकता इसमें समझते थे। इसी से खीझ कर ठाकुर कवि ने कहा —

सीख लीनो मीन मृग खंजन कमल नैन
सीख लीनो यश औ प्रताप को कहानो है।
सीख लीनो कल्प वृक्ष कामधेनु चिंतामणि,
सीख लीनो मेरु औ कुबेर गिरि आनो है॥
ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात,
याको नहीं भूलि कहूँ बाँधिटात बानो है।
डेल सों बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है।

रीतिमुक्त कवि भावावेग में रचना किया करते; भाव के ऐसे आवेग जिनके सामने काव्य-रीति, कुलमर्यादा, लोकलाज सभी के बन्धन टूट जाया करते थे। इन कवियों के प्रेम और श्रृंगार वर्णन की यह विशेषता है कि यह प्रेम के तरल रंग में सराबोर हैं, संयोग व वियोग स्थितियों में अतृप्त अशान्त हैं और इन्होंने हृदय की आँखों से प्रेम की पीड़ा को देखा है, मात्र शास्त्र ज्ञान में प्रवीण होने वाला कवि इस प्रेम पथ पर पग नहीं रख सकता, क्योंकि उसमें 'तरवार की धार पै धावने' की शक्ति नहीं। रीतियुक्त काव्य-धारा के श्रृंगार वर्णन में नव्यता है, पिष्टपेषण अथवा चर्वित चर्वण नहीं। उनकी काव्यानुभूति का सौन्दर्य नैसर्गिक है। स्वच्छन्द कवियों का मूल व्यक्तव्य प्रेम है। इनकी प्रेम व्यंजना में श्रृंगार के निरूपण में निजी प्रेम-भावना की अभिव्यक्ति है, जिसमें उनका स्वानुभूत हर्ष और विषाद व्यंजित हुआ है। आरोपित या कल्पित श्रृंगार जिसका, आश्रय लेकर रीतिबद्ध कवि स्वयं को श्रृंगार के मास्टर समझते थे इन्होंने नहीं अपनाया। इसी से इनकी श्रृंगारिक रचनाएँ प्राणवान बन पाई हैं और रीतिबद्ध कवियों में जिस मार्मिकता और भावप्रवणता का अभाव मिलता है—रीतिमुक्त काव्य उससे समृद्ध है। पद्माकर, मतिराम, सेनापति और केशव आदि कवि स्थूल प्रणय केलियों और व्यापारों के चित्रण में ऐड़ी चोटी का जोर लगा देते थे।

वही रीतिमुक्त कवियों का शृंगार अनायास और स्वाभाविक रूप से हमारे सामने आ पाया है।

रीतिमुक्त काव्यधारा के शृंगार में वही स्वच्छन्दता है, जो राधा-कृष्ण और गोपियों और कृष्ण के बीच थी। इन कवियों को घर-बार, लोक-परलोक, किसी की चिन्ता न थी। जीवन और जगत के झठे बन्धन इन्हें सर्वथा अस्वीकार थे। इसलिए यह कवि शृंगार रस तथा नायिका भेद के ग्रंथों में निर्दिष्ट प्रेम की सुनिश्चित लीकों पर नहीं चल सके हैं—स्वकीया, परकीया गणिका के अलग-अलग प्रकार के प्रेम, फिर मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा की काम वृत्ति पर आधारित भिन्न वृत्तियाँ और नायिका की अवस्था आदि पर निर्भर आगतपोषिका, प्रोषितपतिका, उत्कण्ठिता, अभिसारिका, खंडिता आदि के प्रेम, प्रेम की लुका छिपी, चोरी-चोरी सन्देश भेजना, मान करना और मानना, मनवाना, बीच में सखियों का इधर उधर सन्देश निवेदन कुलीन, शठ और धृष्ट नायकों के विभिन्न प्रकार के आचरण, सखियों या दूतियों का नायक से रमण और सम्भोग तथा सपत्नीक ईर्ष्या आदि जो नायिका भेद के ग्रन्थकारों द्वारा निर्दिष्ट प्रेम वर्णन के विषय हैं, उन पर ये रीतिमुक्त कवि काव्य रचना करने में नितांत असमर्थ रहे हैं। ये रीतिग्रस्त प्रेम वर्णन की संकरी गलियाँ हैं—इनमें स्वच्छन्द कवियों की साँस घुटती थी। इन गलियों से निकलकर ये उन्मुक्त वातावरण में आये, रीति के निर्वाह से सर्वथा विनिर्मुक्त हो गये। इनके प्रेम वर्णन को शृंगार के संयोग और वियोग पक्ष को नायिका भेद के चौखटे में फिट नहीं किया जा सकता। अपने प्रेम का निवेदन यह स्वयं करते थे, उसके लिये किसी प्रकार संदेशवाहकों जैसे सखियों, दूतियों और दासियों की आवश्यकता इन्हें नहीं थी। इसी कारण इनके शृंगार वर्णन में हृदय की, अन्त.करण की जैसी मनोहर झलक मिलेगी, रीतिबद्ध कवियों में मिलना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। देव, बिहारी, पद्माकार, दास, मतिराम आदि कवियों ने जहाँ अनुभूति के साथ प्रेम की व्यंजना की है, वे भी प्रेम के सुन्दर उद्‌गार और अन्तःकरण की मनोरम अभिव्यक्तियाँ दे गये हैं, पर ऐसा रीति के बन्धन से हृदय को मुक्त करने पर ही हो सका है।

रीतिमुक्त कवियों की शृंगार वर्णन सम्बन्धी एक अन्य विशेषता यह है कि इनकी प्रेम भावना में एक प्रकार की उदात्तता है। उसमें गहराई है, व्यापकता है—रीतिबद्ध कवियों की-सी संकीर्णता और ओछेपन का उसमें अभाव है। शुद्ध वासना के चित्रों में भी हृदयात्मकता और शृंगार सम्बन्धी अनुभूत्यात्मकता बनी रही है, क्योंकि इनकी दृष्टि अतिशय शरीरी और स्थूल न थी। अपितु सूक्ष्म और भावनात्मक थी। बोधा को केवल कुछ सीमा तक इसका अपवाद कहा जा सकता है। रसखान तो प्रम को ही संसार का महत्तम धर्म समझते थे। घनानन्द की दृष्टि भी इस सम्बन्ध में वैसी ही उदात्त और मनोहारिणी थी —उसमें मांसलता, वासना और ऐहिकता का लेश भी नहीं है। शृंगार चित्रण क्या है, लगता है मानो शुद्ध अन्तःकरण ही फूट पड़ा है। प्रेम के शृंगार के इस उदात्त स्वरूप के समक्ष सम-सामयिक रीतिबद्ध और रीतिकार

कवियों का प्रेम ओछा और निकम्मा जान पड़ता है, क्योंकि उसमें रसिकता है, ऐन्द्रिकता है, पार्थिव तृषा है, उपभोग की कामुकता है। उनमें वासना तुष्टि की प्रबल इच्छा है तथा वहाँ त्याग नहीं, तड़प नहीं, आत्मसमर्पण नहीं, बलिदान नहीं और सबसे बड़ी बात यह कि उसमें अन्तर्तम की पीर और पुकार नहीं, किन्तु रीतिमुक्त रचयिताओं में प्रेमगत भोग पर नहीं, त्याग पर विशेष बल दिया है, प्राप्ति से अधिक पीड़ा और व्यथा को महत्त्व दिया है।

घनानन्द का संयोग शृंगार

घनानन्द के काव्य में शृंगार के संयोग पक्ष का बहुत कम वर्णन मिलता है। रीतिमुक्त काव्यधारा के सभी प्रसिद्ध कवि जैसे आलम, बोधा ठाकुर, रसखान आदि ने शृंगार का वर्णन किया है, परन्तु उनका जितना मनोयोग वियोग शृंगार में लक्षित होता है, संयोग में नहीं। कारण स्पष्ट है और वह यह कि इन कवियों ने व्यक्तिगत जीवन में प्रेम किया और (आलम को छोड़कर) प्रेम का पुरस्कार इन्हें वियोग ही मिला—संयोग नहीं। अतः शृंगार के उभय पक्षों का चित्रण करते हुए इनकी वृत्ति वियोग पक्ष में ही अधिक रमी है। रीतिबद्ध काव्यशैली के शास्त्रीय विवेचन का रीतिमुक्त काव्यधारा में पूर्ण अभाव है। यहाँ शृंगार का विशद् चित्रण तो मिलता है, परन्तु इन कविवों को सम्भवतः स्वानुभूत शृंगार का शास्त्रीय वर्णन अभीष्ट न था, क्योंकि इनका प्रेम अनुभूतिपरक था, शुद्ध वासनात्मक नहीं। डॉ० मनोहर लाल गौड़ के शब्दों में—"जो प्रेम वासनामूलक है, उसका पर्यवसाम भोग में होता है, पर जो विशुद्ध आत्मानुभूति के रूप में है, उसका पर्यवसान भी प्रेम में ही होता है। ऐसा प्रेम किसी वस्तु जैसे भोगादि का साधन नहीं बनता। इस साध्यभूत प्रेम का मिलना संयोग कहा जाना चाहिये। घनानन्द ने अनुभूत्यात्मक प्रेम के प्रसंग से संयोग वर्णन किया है और साधनात्मक प्रेम में राधा और कृष्ण के मिलन में संयोग का वर्णन पदों में किया है।"

घयानन्द की प्रेम साधना अप्रतिम थी। उनके सम्पूर्ण साहित्य में पाँच सौ से अधिक छन्द नहीं, जो उन्होंने सुजान के सम्बन्ध में लिखे हों और उनकी इस विशद् काव्य राशि में केवल बीस-पच्चीस छन्द संयोग वर्णन से सम्बद्ध रखते हैं। इसी कारण उनके काव्य में संयोग पक्ष का चित्रण बहुत कम है परन्तु जो कुछ है, उसे देखने से प्रतीत होता है कि कवि को सुजान के साथ शारीरिक सामीप्य प्राप्त करने का सुयोग हुआ था। ऐसे अवसर उनके जीवन में अधिक तो नहीं आये, परन्तु उस अल्पकालीन संयोगावस्था का उन्होंने छककर भोग किया, कदाचित् यही कारण है कि सुख की वे मादक स्मृतियाँ उन्हें वियोग काल में लम्बे समय तक सालती रहीं। इस संयोग की पीठिका में नायिका सुजान के रूप सौन्दर्य की व्यंजना है, कवि पर उस रूप के प्रभाव का अंकन है। सुजान के रूप के स्थूल चित्रण को कवि ने महत्त्व नहीं दिया, उसने तो व्यापक सौन्दर्य चेतना का आकलन किया है। घनानन्द के शृंगार सम्बन्धी चित्र तत्कालीन रीतिमुक्त कवियों में

सर्वाधिक भंगिमापूर्ण, रससिक्त तथा आकर्षक बन पड़े हैं, क्योंकि बोधा जहाँ विरह-निवेदन में रत रहे, वहाँ आलम अपने को रीति-परम्परा से मुक्त नहीं कर पाये। घनानन्द ने अपने प्रिय के स्थूल अंगों, उनके आकार-प्रकार और व्यापार का वर्णन कम किया है उनके तरल सौन्दर्य का और रूप-गुणों का अधिक। रूप-सौन्दर्य का निम्न चित्र अत्यन्त प्रभावशाली और मादक है---

झलकै अति सुन्दर आनन गौर,
छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलन में छबि फूलन की बरखा,
उर ऊपर जाति है ह्वै॥
लट लोल कपोल कलोल करे,
कलकण्ठ बनी जलजावलि द्वै।
अंग अंग तरंग उठै दुति की,
परि है मनो रूप अबै धर च्वै॥

यह रूप अनुभूत्यात्मक है। अंग प्रत्यंग के परिपाटी विहित पुरातन उपमानों की सहायता से किये गये चित्रों की अपेक्षा उन्होंने प्रिय की भंगिमाओं, गौर वर्णन का तरल प्रभाव, प्रेम-मद से छके सुन्दर कर्णावलम्बित नेत्रों तथा हँसने की मधुरता का वर्णन किया है। प्रिया के हँसने से लगता है मानो फूल बरस रहे हों। उपर्युक्त चित्र ऐन्द्रीय होते हुए भी मोती की तरल कांति की तरह कोमल है। अन्यत्र कवि लाजभरी चितवन, सरस वार्तालाप और स्मित युक्त भंगिमा की प्रशंसा करते हुए अपना मोह नायिका के प्रति व्यक्त करता है—

लाजनि लपेटी चितवनि भेद भाव भरी,
लसति ललित लोल चख तिरछनि मैं।
छवि को सदन गोरो बदन रुचिर भाल,
रस निचुरत मृदु मीठी बतरानि मैं॥
आनन्द की निधि जगमगाति छबीली बाल,
अंगनि अनंग रंग ढुरि-मुरि जानि मैं॥

स्पष्ट है कि रीति मुक्त कवि की दृष्टि अंग वर्णन पर उतनी नहीं है, जितनी प्रेयसी की सामूहिक छवि के अंकन पर अथवा उसके रूप-गुण की सम्मिलित शोभा से उत्पन्न प्रभावमयता पर। श्रृंगार वर्णन में मानसिक उल्लास का स्थान प्रमुख है, शरीर का संस्पर्श उसमें बहुत कम हो गया है। संयोग के क्षणों में नायिका के अत्यंत निकट होते हुए भी कवि की दृष्टि बाह्य दृश्य पर नहीं है, वहाँ भी मन की उमंग और मन के उल्लास का चित्रण ही प्रमुख है—

पौढ़े घनआनन्द सुजान प्यारी परजंक,
धरे धन अंक तऊ मन रंक गति है।

× × ×

मोद मद छाक घूम रीझि भीजि रस झूम,
गहैं चाहि रहैं चूमैं अहा कहा रति हैं।

शारीरिक और मानसिक आकर्षण का यह संयोग कितना हृदयग्राही और मनोरम है। न यहाँ झांझरिया झनकती है, न पायल बजती है, न चूरी खनक कर संकेत देती है—यह सब यहाँ देखने को नहीं मिलता। ऐन्द्रीय स्थूलता, शारीरिक मांसलता की उष्ण गन्ध न होते हुए भी ऐन्द्रीय प्रभावोत्पादकता कम नहीं है। रीति-मुक्त कवियों से विनोद प्रसंग, प्रेम क्रीड़ा का उल्लासपूर्ण चित्रण भी रीतिमुक्त कवियों के काव्य में है, अन्तर इतना ही है कि प्रथम में स्थूलता है और दूसरे में मनोल्लास। रीतिबद्ध कवि इस प्रकार के वर्णन की ताक में रहता था, जहाँ उसे नायिका के शरीर को स्पर्श करने का मौका मिले और जहाँ स्पर्श करने की छूट मिली, वहाँ वह सब सीमाएँ तोड़ देना चाहता था—कंचुकी का फट जाना तो एक साधारण बात है। होली के चित्रण में इन कवियों ने नायिका को गुलाल मलने के बहाने पूरे शरीर को ही मल दिया, परन्तु रीति मुक्त कवि ने होली के श्रृंगारिक चित्रण में भी नायक और नायिका के हृदयोल्लास का चित्रण अधिक किया है, गुलाल की गर्द और केसर की कीच का कम—

चौंकि चलै, ठठि छैल छलै,
सु छबीली छराय लौं छाँह न छावै।
घूंघट ओट चितै घनआनन्द,
चोट वितै अंगुठाहि दिखाव॥

घनानन्द ने संयोग श्रृंगार के अत्यन्त अल्प चित्र हमें दिये हैं जिनमें अधिकांश तो सुजान के रूप वर्णन से ही सम्बन्ध हैं। शास्त्रीय शब्दावली में नायिका के साथ नायक के नेत्र मिल जाना भी संयोग कहलाता है और अभिनव गुप्त ने लिखा है कि प्रेमोत्पत्ति में नाच, गायन और वाद्य आदि का बड़ा सम्मोहक प्रभाव परि-लक्षित होता है। संगीत की स्वर लहरी के अलौकिक आनन्दानुभव और व्यापक प्रभाव से वे अछूते नहीं रहे। सुजान एक नर्तकी थी और कुशल अभिनेत्री—वेश्या जो ठहरी उसके रूप और नृत्य तथा प्रेम के अभिनय ने घनानन्द को मस्त कर दिया था। नृत्य करते समय जब उसके दीर्घ, कारे-कजरारे नेत्र घूम कर कटाक्ष करते थे और नृत्य की चपलता उसके नेत्रों के चापल्य से कम नहीं होती थी—यह समस्त अभिनय कौशल घनानन्द को सुध-बुध खोने और आत्मविस्मृत करने के लिए काफी था। निम्न चित्र में एक ऐसे ही संयोग का बिम्ब है—

रूप मतवारी घनआनन्द सुजान प्यारी,
घूमरे कटाछि घूम करै कौन पै घिरै।
नाच की चटक लसै अंगनि मटक रंग,
लाड़िली लटक-संग लोचन लगे फिरैं॥

अभिनै-निकाई निरखत ही बिकाई मति,
गति भूली डोलें, सुधि सोधो न लहौं हिरै।
राते तरवानि तरें चूरे चोप-चाड़-पूरे,
पांवड़े लौं प्रान रीझि ह्वै कनाबड़े गिरें।।

घनानन्द के संयोग श्रृंगार की यह विशेषता है कि उसमें विहार और विलास की प्रधानता होते हुए भी भावानुभूति शिथिल नहीं होने पाई, इस के स्थान पर घनानन्द के काव्य में संयोग श्रृंगार वर्णन में बराबर भावों का उदय होता है अथवा उसकी अनुभूति होती रहती है। यही कारण है कि संयोग का चित्रण हो या वियोग-भावोदय को ही अधिक महत्त्व दिया है, जिस से विहार आदि के परम्परायुक्त अश्लील चित्रण से उनका काव्य बच गया है और संयोग और वियोग में मांसलता का स्थान मानसिकता ने ले लिया है। कवि ने सुजान के रूप-सौन्दर्य की इतनी अधिक प्रशंसा की है, लगता है सुजान से मिल कर, देखकर वह अपने हाथों स्वयं ही बिक गया है। ज्यों ज्यों वह देखता है—रूप नवीन होता जाता है। 'मन' का सम्बन्ध 'रीझ' से है। आँखें सुजान के अनुपम रूप-सौन्दर्य पर रीझ जाती हैं और नेत्रों को पगली रीझ के हाथ बिकना पड़ता है —

रावरे रूप की रीति अनूप,
नयो-नयो लागत ज्यों-ज्यों निहारियै।
त्यों इन आँखिन बानि अनोखी,
अघानि कहूं नहीं आनि तिहारियै।।
एक ही जीव हुतो सो वारयो
सुजान सकोच औ सोच सहारियै।
रोकी रहै न दहै घनआनन्द,
बावरी रीझ के हाथनि हारियें।।

'रीझ' तो अमूर्त्त है। उसके हाथ होने का प्रश्न ही नहीं उठता। रीझ पर हाथों का आरोपण तथा उससे हार जाना, मानवीय क्रिया-व्यापार है। अन्यत्र कवि ने 'रीझ' को 'पटरानी' के रूप में भी चित्रित किया है। इस प्रकार के कवित्तों में घनानन्द के संयोग श्रृंगार की उस सूक्ष्मता के दर्शन होते हैं, जो उसे परम्पराबद्ध श्रृंगार वर्णन से अलग ला खड़ा कर देते हैं। कवि ने जिस सुन्दरता से 'रीझ' और रूप का समन्वय किया है। वह सैकड़ों भावों को, संचारी भावों को हृदय में उत्पन्न करने में समर्थ है। इसी प्रकार का एक और उदाहरण है, जहां पर 'रीझ' के समान ही 'वाणी' भी अमूर्त्त प्रस्तुत है। घनानन्द ने 'वाणी' पर 'दुलहिन' अप्रस्तुत का आरोपण कर के अद्वीतिय मानवीकरण की सृष्टि की है—

उर भौन मैं मौन को घूंघट कै,
दुरि बैठी बिराजति बात बनी।

मृदु मंजु पदारथ भूषण सों,
सु लसै हुलसै रस-रूप-मनी ॥
रसना-अली कान गली मधि ह्वै,
पधरावति लै चित-सेज ठनी ।
घनआनन्द बूझनि अंक बसै,
बिलसै रिझवार सुजान-धनी ॥

यहाँ 'बात' का दुलहिन बनना, मौन का घूंघट डालना, मंजु आभूषणों से सुसज्जित होना, वाणी रूपी सखी द्वारा कान की गली से प्रिय को चित्त की सुसज्जित शैया पर ला बैठाना, बुद्धि की गोद में प्रिय का बसना आदि सभी क्रिया-व्यापार मानवीय हैं, जिनका आरोपण 'बात' पर किया है। इस सुन्दर चित्र में कवि ने भावों के संवेग को प्रस्तुत किया है। संवेगों की सघनता ही इतने उत्कृष्ट बिम्ब-योजना को रूपायित करने में सफल हो पाई है। इस प्रकार कवि ने अपनी कल्पना-शक्ति से नवीन संदर्भ का सृजन किया है।

स्वच्छंद वृत्ति के कवि घनानन्द का संयोग शृंगार एकदम नवीन भाव-भूमि पर खड़ा है। रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों ने संयोग शृंगार के अन्तर्गत कटाक्ष, स्पर्श, चुम्बन, नक्षखत, हस्त-कपोल-मर्दन, आलिंगन आदि समस्त शृंगारिक उपादानों को प्रस्तुत किया है—परन्तु घनानन्द इस शृंगारिक कीच से कमल की भांति निर्लिप्त रहे। इन्हें तो मात्र प्रिय के साक्षात्कार की ही आवश्यकता थी। वे उसी में सन्तुष्ट हो जाते। प्रिय को देखा और देखते ही हृदय प्रेमोद्रेक, भावावेग से भर उठा और वाणी पर जैसे किसी ने ताला लगा दिया, मनचाहा भाग कर प्रिय को भेंट लूं, पर पांव जड़ हो गये, वह भ्रमित-सा होकर बस देखता ही रहा—

चेटक रूप-रसीले सुजान!
दई बहुतै दिन नेकु दिखाई।
कौंध में चौंध भरे चख हाय!
कहा कहौं हेरति ऐसे हिराई ॥
बातैं बिलाय गई रसना पै,
हियो उमग्यो कहि एकौ न आई।
सांस कि संभ्रम हो घनआनन्द,
सोचनि ही मति जाति समाई ॥

शास्त्रीय भेदाभेद विवेचन में शृंगार के संयोग पक्ष के दो भेद किये गये हैं—संयोग शृंगार और सम्भोग शृंगार। संयोग शृंगार में पारस्परिक प्रेम होता है, परन्तु शारीरिक संसर्ग प्राप्त नहीं होता और सम्भोग शृंगार में नायक और नायिका की पारस्परिक रति समाहित रहती है। घनानन्द के काव्य में संयोग शृंगार का वर्णन संयोग की अपेक्षा अधिक हुआ है। कवि ने दर्शन, रीझ, मति के डोले जाने, बिक जाने,

रूप की प्रशंसा आदि संयोग संबंधी अनेकानेक छन्द रचे हैं, परन्तु संभोग शृंगार के पद कवि अधिक संख्या में नहीं है। जितने भी छन्द मिलते हैं, उन्हें पढ़ने से इतना अवश्य प्रतीत होता है कि सुजान के साथ शारीरिक सामीप्य स्थापित करने का स्वर्ण अवसर उसके जीवन में अवश्य आया था। ऐसे प्रसंग वह अधिक लब्ध नहीं कर पाये, परन्तु अल्पकालीन संयोग का पूर्ण लाभ उन्होंने उठाया।

सम्भोग वर्णन

संयोगावस्था का वर्णन करते समय कवि ने सम्भोग के मादक चित्र प्रस्तुत किये हैं। सम्भोग से पूर्व की मानसिक स्थिति जिसमें आसन्न संयोग के सुख का उल्लास रोम-रोम में आनन्द का संचार, अनेकों संचारियों के जगने से हृदय की उत्सुकता तथा आकुलता आदि का वर्णन किया है। नायिका की वाणी, वेशभूषा, शरीरांगों के असामान्य संचालन, नेग के आमन्त्रणी, कटाक्ष, नृत्य और अंगों के मटकाने से जो 'काम' का प्रस्फुरण होता है, उसका बड़ा ही सजीव चित्र घनानन्द ने प्रस्तुत किया है। संभोग शृंगार में शुद्ध रति-क्रीड़ा को भी घनानन्द ने चित्रित किया है, परन्तु इस चित्रण की यह विशेषता है कि यह नग्न होता हुआ भी काव्य-कला के चमत्कार से नग्न नहीं है। कवि ने उसे कुछ इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि शुद्ध मांसलता का बोध उसमें नहीं होता। कारण यही है कि घनानन्द का प्रेम, शृंगार वर्णन अनुभूत्यात्मक प्रेम है, सम्भोग शृंगार के खुले चित्रण में भी कवि की मानसिकता बराबर बनी हुई है, अतः वर्णन मात्र अनुभूति, अनुभूति ही बन कर रह जाता है।

पूर्व सम्भोग वर्णन

सम्भोग पूर्व की दशा का वर्णन करते समय कवि ने किसी प्रकार के दुराव को नहीं रखा। वह सुजान पर आसक्त है, बुरी तरह से मरा पड़ा है, उसे सुजान का दर्शन हो जाय, इसमें ही वह अपना जन्म सफल मानता है। अगर उसे सुजान के साथ सामीप्य का आवश्वासन मिल जाय फिर तो कहना ही क्या, उसे अपनी रंक गति, दीनता, पाँवों पर सिर घिसने में जरा भी संकोच नहीं, क्योंकि उसने प्रेम किया है, सच्चा प्रेम। वह डंके की चोट से जब यह कह सकता है—

अति सूधो सनेह को मारग है,
जहाँ नेकु सयानप बांक नहीं।
जहाँ सांचे चलें तजि आपुनपौ,
झिझकें कपटी जे निसांक नहीं॥

तो उसे सुजान के सम्मुख किसी भी प्रकार की लज्जा नहीं। सम्भोग पूर्व की स्थिति के चित्रण में घनानन्द ने सामीप्य और संसर्ग की लालसा को हृदय की अन्तर्तम अभिलाषा को व्यक्त किया है—

उर आवत है अपने कर हूँ,
बर बेनी बिसाल सों नीके कसौं।

अति दीन ह्वै दीन नीचियें,
दीठि किये अनखौहैं सुभाव के त्रास त्रसौं ।।
घनआनन्द यों बहु भाँतिनि ह्वौं,
सुखदान सुजान-समीप बसौं ।
हित-चायिन च्वै चित्त चाहत ते,
नित पायन ऊपर सीस घसौं ।।

सम्भोग से पूर्व, सम्भोग सुख की प्राप्ति के लिए वह परम दीन होकर, हाथ जोड़ कर, आँखें नीची कर के उसके हुकुम का गुलाम बन जाने के लिए तैयार है, क्योंकि सखदायिनी सुजान के समीप, अत्यन्त समीप होने की लालसा उसमें उत्कृष्ट रूप से बलवती हो रही है । यहाँ तक कि शारीरिक सामीप्य के लिये वह पूरे मन से सुजान के पैरों पर अपना माथा रगड़ने के लिये भी तैयार हो गया है । इससे घनानन्द की शारीरिक तृषा और क्षुधा के साथ अशेष रूप से उसके मानसिक आत्मसमर्पण का भी पता चलता है । वह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि 'काम' से प्रेरित होकर काम तुष्टि से पूर्व पुरुष अपनी इच्छा से कुछ भी करने को तैयार हो जाता है, क्योंकि सम्भोग पूर्व दशा में वह इतना बेचैन हो जाता है कि हर कीमत पर अपनी प्रेयसी को प्रसन्न कर के वह उससे पूर्ण सहयोग (Co-operation) चाहता है । घनानन्द ने भी वासना से प्रेरित होकर अपनी जीवन्त मनोदशा का वर्णन किया है, जिसमें अनेक बार सुजान के पैरों पर अपना सिर रख देने का भाव तक वर्णित है । प्रेम के 'सूधे मारग' पर उन्हें कुछ भी करने में लज्जा नहीं आती । अर्जुन की भाँति उनकी दृष्टि भी सुजान पर केन्द्रित है । सुजान के अंग-अंग से बरसते रूप के प्रति, नृत्य-गायन के प्रति अत्यन्त आसक्त है । अपना मन तक उन्होंने सुजान के नाम लिख दिया है फिर अगर वह दो गाली भी दे दे तो क्या उसके लिये भी उसका मन तरसता है—

दसन-बसन ओली भरिय रहै गुलाल,
हँसनि-लसनि त्यौं कपूर सरस्यौ करै ।
साँसनि सुगंध सौंधे कोरिक समोय धर,
अंग अंग रूप रंग-रस बरस्यौ करै ।।
जान-प्यारी ! तो तन आनन्दघन-हित-नित,
अमित सुहाग राग फाग दरस्यौ करै ।
इतै पै नवेली लाज अरस्यौ करै जु, प्यारो,
मन फगुवा है गारी हूं कौं तरस्यौ करै ।।

घनानन्द के सम्भोग शृंगार के विषय में डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना का मत अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि' में लिखा है—"घनानन्द की प्रेमानुभूति में शृंगार के संयोग या सम्भोग का हर्ष, उल्लास एवं सुख भी भरा हुआ है । यद्यपि घनानन्द ने थोड़े से छन्दों में ही प्रेम शृंगार के संयोग पक्ष का निरूपण किया है, जिसमें सम्भोग-सुख की उमंग, मिलन का उल्लास,

आनन्द क्रीड़ा की आतुरता, रति-सुख का उत्साह, सामीप्य लाभ का हर्ष तथा संसर्ग की लालसा का उद्दाम वेग भरा हुआ है। घनानन्द ने इसीलिये संयोग सुख के आनन्द से प्रफुल्लित रोम-रोम तथा अंग-अंग से फूटते हुए हर्षोल्लास का सजीव चित्रण किया है।" नायिका के साथ शारीरिक संयोग निकट काल में ही होने वाला है, इस कारण सुन्दर उमंगें हृदय के अन्तर से आनन्द के रस में भीग कर रोम-रोम पर चढ़ गई हैं। शरीर के प्रत्येक अंग में विचित्र प्रकार का उल्लासमय स्पंदन हो रहा है और हृदय के दर्पण नेत्र मानो इस कामोत्सव की बेला में भाग-भाग कर प्रत्येक अंग-प्रत्यंग की बधाई देते फिर रहे हैं (नेत्रों की चंचलता कामातुरता के समय बढ़ जाती है—यह मनोवैज्ञानिक सत्य है)

ललित उमंग बेली आलबाल अन्तर ते,
आनन्द के घन सींची रोम रोम ह्वै चढ़ी।
आगम-उछाह-चाह छायो सु उछाह रंग,
अंग अंग फूलनि दुकूलनि परै कढ़ी॥
बोलत बधाई दौरि-दौरि के छबीले दृग,
दसा सुभ सगुनौती नौंके इन है पढ़ी।
कंचुकी तरकि मिलै सरकि उरज, भुज,
फरकि सुजान चोप चुहल महा बढ़ी॥

सम्भोग पूर्व की दशा का चित्रण कवि ने उभय रूप से किया है। नायक की नायिका के प्रति कामासक्ति और नायिका की मूक स्वीकृति—जिसमें विभिन्न प्रकार के कामोत्तेजक संकेत सम्मिलित हैं। नायिका यौवन की मस्ती के नशे में छक कर चूर है, भागे बिहारी की नायिका के समान सूधे पांव न धर सकत सोभा ही के 'भार' उसे देख कर नायक ठगा-सा रह गया। जिसके दर्शन मात्र से वह अपने जन्म को धन्य मानता रहा, वही आज उसे संकेतों से 'काम' का खुला निमन्त्रण दे रही है—वह पागल नहीं हो जायेगा तो और क्या होगा?—

मृदु मूरति लाड़ दुलार भरी,
अंग अंग बिराजते रंग भई।
घनआनन्द जोबन माती दसा,
छवि छाकत ही मति छाक गई॥
बसी प्रान सलोनी सुजान रही,
चित पै हित हेरनि छाप दई।
वह रूप की रासि लखि तब तें,
सखी आँखिन कै हरतार भई॥

घनानन्द ने सम्भोग से पूर्व और संभोग के समय जिन काम-चेष्टाओं का वर्णन किया है, वे उनके सूक्ष्म-निरीक्षण का परिचय देती हैं। साथ ही इससे घनानन्द के

अन्तर की प्रेमानुरक्ति मुखर हो उठती है। संयोग शृंगार और सम्भोग शृंगार में काम-चेष्टाओं का न जाने कितना वैविध्य हो सकता है, परन्तु घनानन्द ने वैविध्य की अपेक्षा गहराई से काम लिया है और विभिन्नता में उलझने की अपेक्षा कुछ मुद्राओं को ही व्यक्त किया है। सुजान के यौवन का सम्भोग पूर्व निम्न-चित्र उनके आंतरिक भावों की अभिव्यक्ति को मुखर करता है—

सुख स्वेदकनी मुखचन्द बनी,
बिथुरी अलकावलि भांति भली।
मद जोबन रूप छकी अंखियां,
अवलोकनि आरस रंग रली॥
घनआनन्द ओपति ऊंचे उरोजनि,
चोज मनोज के ओज वली।
गति ढीली लजीली रसीली लसीली,
सुजान मनोरथ बेलि फली॥

सुजान को देखकर तथा उसकी सुन्दरता से प्रभावित होकर उनकी काम पिपासा और तीव्र हो उठती है। कामोद्रेक के सूचक स्वेद-बिन्दुओं को उसके मुख पर छलका हुआ देख कर प्राणों की ईर्ष्या, सामीप्य लाभ की तृषा, अपने पीत पट से उसके स्वेद कणों को पोंछने की ललक और सुजान को चूमने का लोभ बढ़ता ही जा रहा है। यह समस्त वर्णन स्थूल और ऐन्द्रिय है, जिसमें भली प्रकार से शरीर को स्पर्श करके चिबुक को पकड़ कर पास खींचने की इच्छा और दांव-घात की इच्छा होते हुए भी हाथों का कांपना आदि सम्मिलित है। नायक की यह चेष्टाएं संभोग पूर्व दशा को अत्यन्त स्वाभाविक रूप से चित्रित कर पाई हैं, परन्तु संभोग एकांगी नहीं, उभय पक्षीय होता है। नायिका स्त्री होने के कारण स्वभाव से लज्जाशील है, परन्तु संभोग की इच्छा उस के मन में भी बराबर बनी हुई है, अतः वह अपनी स्वीकृति संकेतों द्वारा दे रही है सलज्ज भाव से प्रिय को निहार कर मन्द-मन्द हंसी की वर्षा कर रही है, जिससे नायक की काम-वेलि और अधिक प्रफुल्ल हो उठी है—

रति-सुख-स्वेद-ओप्यो आनन बिलोकि प्यारो
प्राननि सिहाय मोह-मदिक महा-छकै।
पीत-पट छोर लै लै ढोरत समीर धीर,
चुंबन की चायनी लुभाय रहै ना सके॥
परसि सरस विधि-रुचिर चबुक त्योंही,
कंपति करन केलि, चाव-दाव ही तकै।
लाजनि लसौं ही चितवनि चाहि जान प्यारी,
सचती आनन्दघन हांसीं सों भरी नकै॥

सुजान के साथ घनानन्द का सम्बन्ध कुछ समय तक अत्यन्त व्यक्तिगत रहा। संभोग पूर्व संभोग और पर सम्भोग के चित्र इसके प्रमाण हैं। चेष्टाओं के साथ ही

वाणी-व्यापार के माध्यम से भी घनानन्द ने अत्यन्त स्वाभाविक सौन्दर्य उत्पन्न किया है। नायिका की यह उक्ति कितनी उद्दीपक और निमंत्रण भरी है कि वह प्रेमी को थोड़ा धैर्य से काम लेने को कहती है। 'रस' अर्थात् कामातुर हो कर वह अपना समस्त धीरज खो बैठा है, परन्तु नायिका उसे प्रबोध देते हुए कहती है, तुम तो बहुत समझदार हो, समय की नाजुकता को पहचानो और कुछ देर अपने पर नियंत्रण रखो—

चातुर ह्वै रस आतुर होहु न,
बात सयान की जात क्यों चूके।
ऐसी अठानिन ठानत हो कित,
धीर धरौ न परौ जिन ठूके।।
देखि जियो, न छियौ, घनआनंद,
को बरे अंग सुजान वधू के।
चोली चुनावट चीन्हैं चुभै चपि,
होत उजागर दाग उतू के।।

घनानन्द ने कृष्ण और राधा के माध्यम से तथा गोपिकाओं के द्वारा भी शृंगार की कामपरक चेष्टाओं का वर्णन किया है। इस दृष्टि से कृष्ण-काव्य-परम्परा में वे सूर के अत्यन्त निकट हैं। राधा कृष्ण पर रीझ कर अनेक प्रकार से लाड़-लड़ाई करती है। घनानन्द ने निम्न कवित्त में नायिका के कटाक्षों और नायक की कामेच्छा को 'दान' के माध्यम से बड़ा ही मनोहर वर्णन प्रस्तुत किया है—

है उनये, सुनये न कछु, उघटै,
कत ऐंड़ अतैंड़ अयानी।
बैन बड़े-बड़े नैनन के बल,
बोलति क्यों है इते इतरानी।।
दान दिये बिन जान न पाइहै,
आइहै जो चलि खोरि बिरानी।
आगे अछूती गई सो गई सो,
घनआनन्द आज भई मनमानी।।

उपर्युक्त वर्णन लगभग रीतिबद्ध कवियों द्वारा चित्रित काम चेष्टाओं के वर्णन का-सा है, परन्तु अन्तर केवल इतना है कि रीतिबद्ध कवि ने काम चेष्टाओं को वासनामय बना दिया। घनानन्द की रचना में उनका स्वरूप किंचित भावपरक अधिक है और अंग-परक कम।

संभोग-वर्णन

संभोग के एक दम नग्न और खुले चित्र बहुत ही कम हैं, फिर भी घनानन्द ने तीन-चार कवित्तों के माध्यम से अपने सुख का निःसंकोच भाव से वर्णन किया है।

संभोग शृंगार में शुद्ध रीति-क्रीड़ा का चित्रण मिलता है, परन्तु उसकी विशेषता यह है कि वह चित्र काव्य-कला से समृद्ध है, केवल रति-क्रीड़ा का प्रदर्शन मात्र उसमें नहीं। कवि ने इस ढंग से उसे चित्रित किया है कि मांसलता होते हुए भी मानसिकता, अनुभूत्यात्मकता उसका आंचल नहीं छोड़ पाई। इस चित्र में नायक और नायिका पर्यंक पर हैं, दोनों अत्यन्त प्रसन्न हैं। किसी प्रकार की शंका, भय तथा अस्वीकृति का कोई स्थान नहीं। नायिका की ओर से पूरी हाँ है और वह आत्मसमर्पण कर चुकी है पर नायक—उसकी मानसिक दशा उस दरिद्र की भाँति है, जिसे एकाएक कुबेर का खजाना हाथ लग गया हो परन्तु स्वभाव से कृपण होने के कारण वह धन को दांतों से पकड़ रहा हो। इसमें उस बिचारे का कोई दोष नहीं, कहाँ तो दर्शन की लालसा में उसकी यह दशा होती थी कि सांझ से भोर तक और भोर से सांझ तक वह प्रिय पथ को ही निहारा करता था और आज अचानक वह प्रिय उसके इतना निकट है कि वह उसकी उत्तप्त श्वास-प्रक्रिया को अनुभव कर सकता है, स्पर्श कर सकता और संभोग करने में भी उसकी ओर से कोई आपत्ति नहीं। आलिंगनबद्ध नायक का मन अभी इन विविध प्रकार की मनोदशाओं में ही चक्कर लगा रहा है। घनानन्द की संभोग शृंगार-परक यह विशेषता यहाँ मन और मानस का संयोग हो गया है, अन्यत्र मिलनी दुर्लभ है—

पौढ़े घनआनन्द सुजान प्यारी परजंक,
धरे धन अंक तऊ मन रंक-गति है।
भूषन उतारि अंग अंगहि सम्हारि, नाना,
रुचि के विचार सों समोय सीझी मति है॥
ठौर-ठौर लै-लै राखैं और और अभिलाखैं,
बनत न भाखैं तई जानै दसा अति है।
मोद-मद-छाके घूमैं रीझि भीजि रस झूमैं,
गहैं चाहि रहैं चूमैं अहा कहा रति है॥

साक्षात् संभोग वर्णन का एक चित्र ऐसा मिलता है जिस में सुजान के माधुर्य-पूर्ण प्रसन्न मुख-मण्डल, उसका काम कला मे प्रवीण होना, चंचल और विशाल नेत्रों में लज्जा का भाव, कामोद्दीप्ति के कारण चमकता हुआ मुख और भाल तथा मन की चंचलता के कारण नेत्रों की चपलता, रति की तरंगों में प्रिय के साथ बहते हुए हृदय की निकटता का अनुभव और उत्साह, तथा काम की ललक मिट जाने के बाद आधी खुली हुई थकी हुए पलकें स्वेद कणों के द्वारा शारीरिक शैथिल्य का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है—

केलि की कला निधान सुंदरि महासुजान,
आन न समान छबि-छांह पै छिपैयें सौनि।
माधुरी मुदित मुख उदित सुसील भाल,
चंचल बिसाल नैन लाज-भीजियै चितौनी॥

पिय-अंग-संग घनआनन्द उमंग हिय,
सुरति तरंग रस-बिबस उर-मिलौनी।
झुलनि अलक आधी खुलनि पलक, स्रम,
स्वेदहि झलक भरी ललक सिथिल ह्वैनी ॥

'सुरति' का एक तीसरा चित्र है जिसमें फागुन मास की मीठी ऋतु में रात्रि में यौवन के रंग में भरे हुए, अंगों में अनंग का उत्साह समेटे, चाव के साथ रति-क्रीड़ा करते हुए नायक-नायिका की प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं है, नायिका के सुन्दर और विशाल नेत्र उस विशेष क्षण में चंचल हो कर और भी अधिक खिल गये हैं और रात्रि में देर तक जागने से तथा काम के अतिरेक के कारण उनमें लाल डोरे पड़ गये हैं -

भरि जोबन-रंग अनंग-उमंगनि,
अंगहि अंग समोय रहे।
उर फागुन-चाव को चाव रच्यौ,
सु मच्यौ खुलि खेलि जु गोय रहे ॥
घनआनन्द चोपहि चोयनि लै,
उर चौंचंद नेकु न सोय रहे।
दृग रावरें छैल खिलार महा,
कहा नीके गुलाल मैं भोय रहे ॥

'सुरति' के ऐसे चित्र बहुत ही कम हैं, परन्तु इन परम्परागत चित्रों के वर्णन के समय कवि का उद्देश्य नग्नता और अश्लीलता का प्रदर्शन नहीं न ही किसी प्रकार की एन्द्रीय उत्तेजना को जन्म देना है। घनानन्द ने तो अपने अन्तर के भाव को प्रतिबिम्बित करते हुए उस उल्लास को रंजित किया है, जो अत्यन्त अल्प मात्रा में उसके भाग्य में लिखा था।

पर-संभोग दशा

पूर्व संभोग और संभोग दशा के समान 'सुरतान्त' के वर्णन भी अधिक मात्रा में नहीं हैं। इन चित्रों के अन्तर्गत कवि ने प्रिय के प्रेम में पगी, रति-सुख से मदमाती नायिका का चित्रण किया है जो रात्रि पर्यन्त प्रिय के साथ विहार और विलास में निमग्न रही है और प्रातःकाल में ही थोड़ा-सा सो पाई है। इस अल्प निद्रा के पश्चात् नायिका जब जागती है तो उसके अंग प्रफुल्ल होने के स्थान पर शिथिल हैं, अतिशय रस से उत्पन्न आलस्य उसके अंग-अंग में छाया हुआ है, पर मुख पर तृप्ति की पूर्ण आभा है। वह अपने अंगों को मरोड़ती है, जम्हाई लेती है उसके मुख पर रात्रि के बिखरे हुए बाल बिखर रहे हैं, नेत्रों में रात्रि भर जागने से और कामासक्ति के कारण अभी तक मद की लाली छाई हुई है, चेहरे पर इतनी आभा है कि करोड़ों चन्द्रमा उसके आगे फीके पड जाते हैं, हृदय प्रिय के अनुराग में पूरी तरह से डूबा

हुआ है। नायिका को कहीं किसी की नजर न लग जाय, इसलिए सखी उस पर तिनका तोड़ती है—

रस-रैनि जगी, प्रिय प्रेम पगी,
अरसानि सों अंगनि मोरती है।
मुख ओप अनूप बिराज रही,
ससि कोटिक वारने को रति है॥
अँखियानि में छाकनि की अरुनाई,
हियो अनुराग लै बोरति है।
घनआनन्द प्यारी सुजान लखें,
डरि डीठि हितु तनु तोरति है।

पर-संभोग के चित्रों में कवि ने कुछ-कुछ इसी प्रकार के वर्णन चित्रित किये हैं जैसा कि मात्र उपर्युक्त पद में है। लगभग सभी वर्णनों में भावानुभूति में समानता है, अन्तर है, तो केवल विभिन्न प्रकार के भावों के क्रम में तथा अनुभावों में। जैसे इस चित्र में भी नायिका अतिशय आलस्य में डूबी हुई है, वह जाग रही है, पर आलस उसके नेत्रों को छोड़ नहीं रहा। वह अंगड़ाइयाँ और जमुहाई इत्यादि ले रही है, बाल उसके बिखरे पड़े हैं और अपने अंग-प्रत्यंग को सलज्ज भाव से निहार रही है, लगता है, प्रत्येक अंग पर कामदेव की पॉलिश हो गई है और वह चमक उठा है। जो बात भी बोलती है, लज्जा के कारण स्पष्ट नहीं बोली जाती और आधी बात मुँह में ही रह जाती है, संभोग-तृप्ति जिस नायिका की हो चुकी है, उसकी शारीरिक और मानसिक दशा कुछ इसी प्रकार की होती है—

रस आरस भोय उठी,
कछु सोच लगी लसें पीक-पगी पलकें।
घनआनन्द ओप बढ़ी मुख औरे,
सुफैली फबीं सुथरी अलकें॥
अँगराति जम्हाति लजाति लखै,
अंग अंग अनंग दिपें झलकें॥
अधरानि में आधियै बात धरें,
लड़कानि की आनि परै छलकें॥

घनानन्द के काव्य में ऐसे जितने चित्रण मिलते हैं वे भावप्रवण हैं, वासनात्मक नहीं। रीतिबद्ध कवि का उद्देश्य केवल मात्र राजा की वासना को उभारना होता था, अतः उसकी दृष्टि ऐसे ही रति चित्रों पर टिकती थी। आश्रयदाता का आश्रय ही उस काल के कवि का जीवन था—कहीं वह रुष्ट न हो जाय, इसी चिन्ता में वह विभिन्न प्रकार की काम-चेष्टाओं का शास्त्रबद्ध (लक्षणबद्ध) वर्णन करता। 'रति' के तात्त्विक विवेचन की व्याख्या ही उसका परम ध्येय है। नायिका कल्पित होती थी, या फिर राधा को ही अध्यात्म के सिंहासन से उतार वासना की कीच में डाल दिया

गया था, अनुभूति के स्थान पर प्रयत्नसाध्य पाण्डित्य-प्रदर्शन तथा उद्देश्य आश्रयदाता की प्रसन्नता रीतिमुक्त काव्यधारा में भी प्रेम किया गया, श्रृंगारिक चेष्टाओं का वर्णन हुआ। यहाँ तक कि भोग के खुले चित्र निःसंकोच रूप से वर्णित हुए। अन्तर इसमें आया कि एक तो इनकी नायिका किराये पर नहीं लाई जाती थी, यह कवि स्वयं प्रेम करते थे, प्रेम की मस्ती और पीड़ा दोनों को इन्होंने अनुभव किया था। घनानन्द हो या आलाम अथवा बोधा, सभी अपनी प्रेमिकाओं को अपने से अधिक चाहते थे। इसी कारण इनके प्रेम व श्रृंगार-वर्णन में वासना की कुरुचिपूर्ण गन्ध का अभाव है। 'काम', 'संभोग' स्वस्थ जीवन की एक नैसर्गिक आवश्यकता है। अतः इसका उसी रूप में वर्णन इन्होंने किया है। यह कवि दरबारी वातावरण से दूर थे और पूर्ण रूप से मुक्त थे। घनानन्द आदि कवियों के श्रृंगार-वर्णन में अनुभूत्यात्मक भाव प्रवणता है। रीतिबद्ध कवि इसकी अनुभूति से कोसों दूर था।

'सुखान्त' एक चित्र में घनानन्द ने सुजान की सोती हुई अवस्था का चित्रण किया है, जो रात-भर प्रिय के साथ रति-क्रीड़ा में व्यस्त रही और भोर के समय श्रम-शिथिल होकर सो गई है। काम के मद से मतवाली होकर उसने संभोग किया। उसकी शारीरिक दशा संभोग की अवस्था का वर्णन करती है, बाल खुले पड़े हैं, गले का हार टूटा पड़ा है और मुख पर तृप्ति की अपार शोभा है—

मद-उन्माद-स्वाद मदन के मतवारे,
केलि के अबार लौं, सँवारि सुख सोये हैं।
भुजनि उसी सो धारि अंतर निवारि,
जानु, जंघनि सुधारि तन मन ज्यौं समोए हैं॥
सपने सूरति पागें महा चोप अनुरागें,
सोय हूं सुजान जागें ऐसे भाव-भोए हैं।
छूटे बार, छूटे हार, आनन अपार सोभा,
भरे रस-सार घनआनन्द अहो ए हैं॥

एक अन्य चित्र—

कन स्वेद भयो सु बिराजत यों,
उडुपो नभ तारनि संग भयो।
मद लाली चढ़ै, अति ओप बढ़ै,
मुख चन्द तें प्रीति-पतंग भयो॥
भयो अदिहि कंज कुमोदनि के,
रति अंत चहै श्रम भंग भयो।
घनआनंद ओज मनोज उमंगनि,
अंगनि अद्भुत रंग भयो॥

सुजान के सामीप्य को कवि ने 'महासुख' का नाम दिया है, ऐसा महासुख, जिसके

उसके अंग-प्रत्यंग भीग उठे हैं, वह स्वाद अवर्णनीय है, उसे जो चखता है, वही जानता है, वह कहने की वस्तु नहीं, अनुभव की है। शुद्ध सामीप्य में दो हृदय मिलकर एक हो गये हैं। रूप की अनुपम तरंगों की बाढ़ से हृदय-प्रेम का प्रवाह भी तीव्र हो गया है, इससे बड़ा सुख और क्या होगा—

मीत सुजान मिलै को महासुख,
अंगनि भोय समोय रह्यौ है।
स्वाद जगे रस रंग पगे आति,
जानत वेद न जात कह्यौ है॥
द्वै उर एक भये घुरि के,
घनआनन्द सुद्ध समीप लह्यौ है।
रूप अनूप तरंगनि चाहि,
तऊ चितचाह प्रवाह बह्यौ है॥

घनानन्द ने संभोग-वर्णन के इन चित्रों के अतिरिक्त कुछ ऐसे कवित्तों की रचना भी की है, जिनमें सम्भोग की मादक अवस्था की स्मृतियाँ हैं। किस प्रकार सुजान के साथ शारीरिक सम्पर्क के समय वह बेसुध रहता था, सुजान के रूप पर भी उस विशेष समय में अतिरिक्त प्रकाश छा जाता, रति की तीव्र इच्छा से प्रेरित होकर वह उसके पैरों को पागलों की भाँति चूमता और कपोलों से उन्हें सहलाता, अंग-प्रत्यंग में काम की ज्वाला तीव्र हो उठती और अमृत-प्राप्ति हेतु वह सुजान के प्रति अखंड लोभ से भर उठता—

मूरति सिंगार की उजारी छवि आछी भांति,
दीठि लालसा के लोयननि लै लै आंजिहौ।
रति-रसना-सवाद पांवड़े पुनीतकारी,
पांय चूमि चूमि के कपोलन सो माँजिहौ।
जान प्रान प्यारे अंग-अंग-रुचि-रंगनि मैं,
कोरि सब अंगनि अनंग दु.ख भाजिहौ।
कब घनआनन्द ढरौंही बानि देखे सुख,
सुधा-हेत मन-घट-दरकनि रांजिहौ॥

एक अन्य उदाहरण में कवि ने शुद्ध ऐन्द्रीय तृषा का वर्णन किया है, उस संयोग की मादक स्मृति आज भी उसे पागल कर रही है और पुनः उसी को प्राप्त करने की उसकी तीव्र इच्छा है। सुजान के रूप की मधुरता का वर्णन तो अनेकानेक छन्दों में हुआ है, जहाँ उसके स्वभाव की मिठास की चर्चा को याद करके वह कहता है कि तुम्हारा स्वभाव इतना मीठा था कि मुझे अब संसार के समस्त स्वाद फीके लगने लगे हैं। हे सुजान ! जब से नेत्रों ने तुम्हारे सलोने मुख को निहारा है, कसम ले लो कहीं और दृष्टि भी पड़ी हो, यह आँखें तुम से लग किसी और से नहीं लग सकतीं। कभी ऐसा

अवसर आये, जब हम रात्रि पर्यन्त निश्चिन्त होकर विहार कर सकें, तो मैं समझूंगा कि मेरे तो भाग्य ही जाग गये। मैं भला ऐसा अवसर कब छोड़ने वाला हूँ, जब तुम संग मिलकर संसर्ग स्थापित कर सकूं, वह तो मेरे जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है—

ह्वै निसिवासिन जात रसौ,
मन तेरे सुभाव मिठासहि पागे।
आन वै जान कहौ तुव आनन,
लागि न आन सों लोचन लागें॥
चैन में सैन करें सब ओर तें,
भावते भाग जौ तो मिलि जागें।
रंग रचै सुठि संग सचैं,
घनआनन्द अंगन क्यों सुख त्यागै॥

उपर्युक्त पर्यालोचन के आधार पर घनानन्द के संयोग श्रृंगार की व्यापकता और गहनता का पता चलता है। यद्यपि उनकी समस्त काव्य रचना में संयोगपरक छन्द बहुत कम हैं, परन्तु उनसे उनकी अभिरुचि का पूरा पता चलता है। सुजान के रूप पर मुग्ध हो यह प्रेम साधना करते रहे, धीरे-धीरे सुजान से प्रेम का प्रत्युत्तर भी इन्हें प्राप्त हुआ और संभोग के कुछ अवसर भी इन्हें प्राप्त हुए, परन्तु कहीं भी बीभत्सता और कुरुचि का भाव नहीं आया। उन्हें अपने प्रेम पर पूरा भरोसा था, अत: सुजान के साथ बिताई हर घड़ी को उन्होंने अपने काव्य में उतार दिया। घोर श्रृंगार का वर्णन करते समय भी मानसिकता को वे छोड़ नहीं पाये हैं, इसी कारण उनका वर्णन ऐन्द्रीय, भोगपरक, मांसल और स्थूल होते हुए वर्णन शैली की दृष्टि से ताजगी लिये हुए है तथा रीतिबद्ध कवियों की अपेक्षा अधिक चित्रात्मक और भावात्मक है। डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा के शब्दों में—"बीभत्सता और कुरुचि का कहीं लेश भी नहीं और मन का भाव, इन्द्रियों की हर वासना पूरे-पूरे तौर से कह दी गई है। सुजान के संभोग-वर्णन में भी संभोग की स्थूल क्रियाओं का वर्णन विशेष नहीं किया गया है, ध्यान अधिकतर कवि की मानसिक दशा के निदर्शन पर केन्द्रित मिलता है। संभोग-वर्णन में वासना और ऐन्द्रिकता का भाव पूरा-पूरा है, बहुत सारा रीझ और आकर्षण उसी से सम्बन्धित है, पूरा-का-पूरा प्रेम व्यापार लौकिक है, सारी रीझ इन्द्रियों की ही है, इन्द्रियों के ही प्रति है, पर गंदी कामुकता और छिछोरापन कहीं नहीं। ऐन्द्रीय रीझ और वासना एकनिष्ठ होकर परिष्कृत और पवित्र हो गई है। कवि की सच्ची प्रीति, लगन और निष्ठा ने उसमें दीप्ति और पुनीतता पैदा कर दी है।"

संयोग में वियोग की अनुभूति

घनानन्द द्वारा वर्णित प्रेम-भावना में, चाहे वह संयोगात्मक स्थिति हो अथवा वियोगात्मक—अभिलाषा का ही प्राधान्य रहा है। यह अभिलाषा वियोग में तो समस्त

सामान्य प्रेमियों को दाहित करती है, परन्तु घनानन्द ऐसे असाधारण प्रेमी हैं, जिन्हें संयोग में भी चैन-शान्ति नहीं मिलती, क्योंकि प्रेमी को संयोग में भी आंतरिक पीड़ा से पीड़ित किये रहती है। घनानन्द की यह अनुभूति समस्त रीतिकाल में कहीं भी किसी कवि में नहीं मिलती है। उनकी इस असाधारण प्रेम-साधना के विषय में आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने अपनी पुस्तक में लिखा है—"घनानन्द की प्रेम-साधना इसलिए चरम साधना के रूप में प्रतिष्ठित है। उनकी चरम साधना सामान्य प्रेम प्रवाह से बहुत आगे है। विरह में मंजिष्ठा रोग हो जाता है, प्रेम का पूरा परिपाक हो जाता है या प्रेम का भोग न होने से वह राशीभूत हो जाता है, यह साहित्य-परम्परा कहती चली आ रही है, पर वहाँ प्रेम की वह चरम साधना दिखाई नहीं देती, जहाँ वियोग में ही नहीं, संयोग में भी वियोग का अनुभव होता है—

यह कैसो संजोग न बूझि परै,
कि वियोग न क्यौं हू बिछोहत है।

प्रिय के वियोग में ही नहीं, संयोग में भी अशांति पीछा नहीं छोड़ती। प्रिय के वियोग की आशंका संयोग में भी बनी रहती है, संयोग में भी वियोग का अनुभव।"

मिश्रजी के इस कथन में वास्तव मे बहुत ही गम्भीरता है। सामान्य प्रेमी तो अपने प्रेम पात्र के दर्शन से ही कृतार्थ हो जाता है, यह एक सामान्य सत्य है, परन्तु घनानन्द की विरहानुभूति हर क्षण जैसे उसकी साँस के साथ जुड़ी हुई है, बिचारा प्रेमी जैसे अभिशप्त है, कहीं भी उसे चैन नहीं। वैसे तो प्रिय के दर्शन ही दुर्लभ होते हैं और कहीं सौभाग्य से हो गये, तो मन घबराकर पहले ही व्याकुल हो उठता है कि अभी उसका प्रिय चला जायगा और वह फिर उसी विरहा के सागर में गोते लगाने लगेगा। यही कारण है कि घनानन्द का प्रेमी हृदय संयोग की स्थिति में भी पूरा-पूरा सुख अथवा आनन्द लाभ नहीं कर पाता। विरह से बिचारे का पिंड कभी छूटता ही नहीं।

घनानन्द ने अनेक छन्दों में इस प्रकार के भाव को अभिव्यक्त किया है, लगता है, वह अपने हृदय के हाथों बहुत ही मजबूर है, चाह कर भी संयोग सुख प्राप्त नहीं कर सकता, दोनों प्रेमी जब मिलते हैं, तो हृदय में इतनी अधिक अभिलाषाएँ होती हैं कि चित्त की गति असामान्य हो जाती है—

मुख चाहनि-चाह-उभाहन को,
घनआनन्द लाग्यौ रहैई झरै।
मनभावन-मीत सुजान-संजोग,
बने बिन कैसे वियोग टरै॥
कबहूँ जो दई-गति सो सपनो सो,
लखौं तौं मनोरथ-भीर भरै।

मिलिहूँ न मिलाप मिलै उन को,
उर की गति क्यों करि च्यौरि परै ।।

मनभावन सुजान को मिलने के लिए हृदय नित नई अभिलाषाएँ करता है। उसके बिना बराबर वियोग बना रहता है। सौभाग्य से यदि वे मिल भी गये, तो लगता है जैसे वह कोई स्वप्न देख रहा हो और 'मनोरथों' की भीड़ उसके चारों ओर लग जाती है। भीड़ में भला कैसे मिलाप हो सकता है? प्रेमी इसी दुहेली स्थिति में घिरा रहता है। एक ओर से प्रेमी को संयोग का सुख और दूसरी ओर से प्रिय-विषयक अभिलाषा घेरे रहते हैं। यह स्थिति शास्त्रीयता के विरुद्ध है। शास्त्र विहित प्रेम में या तो संयोग होता है और या फिर वियोग। हाँ, वियोग की अनेक दशाओं का वर्णन लक्षणाचार्यों ने किया, परन्तु उसमें ऐसी किसी दशा को लक्षणबद्ध नहीं किया, जिसमें एक ही समय संयोग भी हो और वियोग भी; परन्तु एकनिष्ठ प्रेमियों को देखते हुए यह अत्यन्त सहज लगता है। वास्तव में घनानन्द ने अपनी यथार्थ अनुभूतियों से हमें श्रृंगार की उस सहज स्वाभाविक स्थितियों का दर्शन कराया है, जिसकी कल्पना भी कोई काव्य-शास्त्री न कर पाया हो, क्योंकि यह मानते हुए भी शास्त्र-जीवन की नाना स्थितियों की सम्यक् कल्पना करके ही ऐसा मार्ग तैयार करता है, जिस पर सभी चलें, किन्तु फिर भी उसने सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवन स्थितियों अथवा भाव-दशाओं की कल्पना अथवा अनुमान कर लिया होगा, यह सत्य नहीं है। हमारा जीवन असंख्य भाव-दशाओं का अपार संगम है। उसकी भाव-बूंदों की गणना करना असम्भव कार्य है, अतः शास्त्र नियम के स्थूल लक्षणों में घनानन्द के संयोग का यह स्वरूप मिलना कठिन है।

संयोग में भी वियोग की दशा का कवि ने अनेक स्थानों पर अनेक प्रकार से वर्णन किया है। वास्तव में घनानन्द का काव्य मूलतः विरह का काव्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार--"यद्यपि इन्होंने संयोग और वियोग दोनों पक्षों को लिया है, पर वियोग की अन्तर्दशाओं की ओर ही अधिक दृष्टि है। इसी से इनके वियोग सम्बन्धी पद ही अधिक प्रसिद्ध हैं।"

घनानन्द की इस अवस्था में उसकी विचित्र दशा होती है। प्रिय उसके एकदम समीप है, पर हृदय में यह खटका लगा हुआ है कि हाय, अभी चला जायगा, इसी से हृदय दुःख के कारण तेजी से धड़कता है, प्रिय को एकटक निहारकर मन आनन्द सागर में गोते लगाता रहता है, परन्तु आसन्न वियोग की आशंका से त्रसित हो घबरा जाता है। अतः देखकर भी लगता है कि पूरी तरह से देख नहीं पा रहा और मीत के मिलने पर भी बुद्धि पृथकता के भाव से चेतन रहती है, अतः कवि इतना दुःखी हो गया है कि वह स्वयं भी समझ नहीं पा रहा, यह किस प्रकार के संयोग का अवसर भाग्य ने उसे कृपा कर के दिया है, जो संयोग सुख भी वियोगदशा से सम्पृक्त है—

ढिग बैठे हू पैठि रहै उर मैं,
धरकै खरकै दुःख दोहतु है।
दृग आगे तें बैरी कहूं न टरैं,
जग-जोहनि अंतर जोहतु है।।
घनआनन्द मीत सुजान मिलें,
बसि बीच तऊ मति मोहति है।
यह कैसो संजोग न बूझि परै,
जु बियोग न क्यौं हूँ बिछोहतु है।।

घनानन्द के 'संयोग में भी वियोग' की इस विशेषता से उनके काव्य में जो भाव-गाम्भीर्य, प्रेम की गहनता और सत्यता का चित्रण हुआ है, वह प्रशंसनीय है। वास्तव में सच्चा प्रेमी संतुष्ट नहीं हो सकता। दर्शन न हों तो उसकी अभिलाषा दर्शन हो जायें तो नैकट्य की कामना और समस्त सुविधाएं मिल जायें, तो यह आशंका कि प्रिय-मिलन शाश्वत नहीं कुछ ही क्षणों का है--समस्त सुख पर पानी फेर देती है। वैसे तो बिचारा प्रेमी ऐसा अवसर ही कहां पाता है कि सुजान उसे दिख जाय और भाग्य से यदि अवसर आ भी गया तो हाय रे विधाता उसके मिलने से पूर्व ही आंसू भाग कर मिलन हेतु चल पड़ते हैं और वह दर्शन लाभ से वंचित हो जाता है—

जो कहूँ जान लखै घनआनन्द,
तौ तन नैकुं न औसर पावत।
कौन वियोग भरे अँसुवा,
जो संयोग में आगेई देखन धावत।।

इसी बात को अन्यत्र भी कवि ने इसी प्रकार से ही कहा है, अगर कहीं मन-भावन उसे नज़र आ जाता है, तो दृष्टि लाभ अधिक समय तक नहीं हो सकता, क्योंकि यह कमबख्त आंसू आ कर उस अवसर को गला देते हैं —

जौ कहूँ भावतो दीठि परै,
घनआनन्द आंसुनि औसर गारति।

सुजान के रूप-सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए भी कवि ने कहा है कि वह अप्रतिम सुन्दरी है और उसका रूप अत्यन्त मोहक है इसी से मेरा मन उस से हर समय बंधा रहता है। परन्तु यह कैसी अनोखी लगन है कि बिछड़ने पर मिलने की आकांक्षा होती है और मिलने पर वियुक्ति का भय मारे डालता है —

मोहन अनूप रूप सुन्दर सुजान जू को,
ताहि चाहि मन मोहि बसा महा मोह को।
अनोखी यह हिलग दैया! बिछुरे तौ मिल्यौ चाहै,
मिलेहू मैं मारे जारे, खरक बिछोह की।।

एक अन्य चित्र—

हिलग अनोखी क्यों हू धीर न धरत मन,
परि-पूरे हिय में धरक जागियै रहै।
मिले हूँ मिले को सुख न पाय न पलक एको,
निपट बिकल अकुलानि लागियै रहै॥

तथा—

कहा कहौं आनन्द के घन जानराय हो जू,
मिलेहू तिहारे अनमिले की कुसल है।

उपर्युक्त पर्यालोचन से घनानन्द के संयोग श्रृंगार के एक विशेष पक्ष पर प्रकाश पड़ता है। 'संयोग में वियोग' सम्बन्धी कवित्त कवि की अपनी प्रेमानुभूति से संबंधित होने के कारण अत्यन्त मार्मिक, हृदयग्राही, भावप्रवण, स्वाभाविक तथा परम्परामुक्त है। रीतिबद्ध कवि को इस अनुभूति से दूर का भी परिचय नहीं, क्योंकि लक्षण परम्परा में ऐसी किसी भावविभूति का वर्णन लक्षणाचार्यों ने नहीं किया अतः प्रेम तो वे कवि, आचार्य से पूछ कर करते थे तो उनके बताये हुए मार्गों के अतिरिक्त अन्य किसी मार्ग का तो वर्णन वे कैसे करते ?

स्वप्न-संयोग

घनानन्द ने संयोग वर्णन में कुछेक छंद स्वप्न-संयोग से सम्बन्धित भी लिखे हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि हमारी जिस इच्छा की तृप्ति जागृत अवस्था में अथवा चेतन स्तर पर नहीं हो पाती, वह ग्रंथि बन कर अवचेतन में चली जाती है। व्यक्ति जब सो जाता है, तब उसका अचेतन मन सजग हो उठता है और स्वप्न के माध्यम से उस इच्छापूर्ति का सुख लूटता है। घनानन्द ने जो संयोग चेतन स्तर पर नहीं भोगा, उसका वर्णन उन्होंने स्वप्न-वर्णन में किया है, परन्तु वियोग की पीड़ा ने उन्हें सपने में भी चैन नहीं लेने दिया—

साधनि ही मरियै भरियै,
अहराधनि बाधनि के गन छावत।
देखे कहा ? सपनेहु न देखत,
नैन यौं रैन बिना झर आवत॥
जो कहुँ जाय लखै घनआनन्द,
तो तब नैकु न औसर पावत।
कौन वियोग भरे अँसुवा,
जु संयोग में आगेइ देखन धावत॥

भावोद्वेग के कारण स्वप्न में भी भली प्रकार से, निश्चिन्ततापूर्वक निर्बाध मिलन नहीं हो पाता। नींद यदि न भी टूटे तो भी नींद में ही अनेक मुसीबतें हैं, जो

बिचारे वियोगी प्रेमी का पीछा नहीं छोड़ती। मनोरथों की भीड़ सदा उसे घेरे रहती है और मिलन होने पर भी मिलाप नहीं हो पाता क्योंकि हृदय के अन्तर में लाखों मनोरथ, इच्छाएँ, अभिलाषाएँ हैं, जिनके कारण से स्वप्न संयोग दूभर हो जाता है—

कबहूँ जो दई गति सों सपनो,
सो लाखों तो मनोरथ-भीर भर।
मिलहू न मिलाप मिलै तब,
को उर की गति क्यों करि ब्यौरि कर॥

संभोग के वर्णन में कवि ने अपनी इस मनोवृत्ति का परिचय दिया है। सुजान उसके एकदम समीप है, उसे तो यह लगना चाहिए मानो विधाता ने छप्पर फाड़कर उस पर कृपा की है, जो सुजान के नैकट्य का सुख वह भोग रहा है, लेकिन संयोग में वियोग का भाव उसका वहाँ भी पीछा नहीं छोड़ता और संभोग सुख का सारा मज़ा किरकिरा हो जाता है—

पौढ़े घनआनन्द सुजान प्यारी परजंक,
धरे घन अंक तऊ मन रंक गति है।

सपने में भी वह इसी पीड़ा से पीड़ित रहता है और वहाँ भी निर्बाधपूर्वक मिलन नहीं हो पाता। स्वप्न की सम्पदा पर भी इसका पूर्ण अधिकार नहीं। इस सम्बन्ध में डॉ० मनोहरलाल गौड़ ने अपनी पुस्तक घनानन्द और स्वच्छंद काव्यधारा में लिखा है—"प्रेमी प्रिय का निरन्तर ध्यान करने से बौद्धिक वियोग का अभ्यस्त हो गया है। वियोग में हृदय स्थित प्रिय से आलाप सम्भाषण आदि नहीं हो सकता। यह अवस्था संयोग में भी बनी रहती है। संयोग वियोग-तुल्य हो जाता है।

× × ×

इस तरह अभिलाषा, अन्तर्ध्यान, वियोग की अनन्यता तथा प्रिय की उदासीनता आदि कारणों से घनानन्द का संयोग सर्वत्र वियोग-संयुक्त है।

× × ×

अश्लीलता का अभाव तथा रसानुभूति का बौद्धिक रूप घनानन्द की देन माननी चाहिये। इनका श्रृंगार भावात्मक से बौद्धिक रूप में विकसित होता गया है। प्रेरणा कहीं से भी हो, पर अनुभूतियों का स्वरूप अभारतीय नहीं है। वह चिंतन में अपने वर्णनों की परम्परा से संगत प्रतीत होता है।

७ | घनानंद और भक्ति

भक्ति का अर्थ

भक्ति का शाब्दिक अर्थ है 'सेवा करना'। यह शब्द संस्कृत की यज्: सेवयाम: धातु से व्युत्पन्न है। भक्ति वह तत्त्व है, जो ईश्वर के प्रति जीव के की सेवा भावना को प्रकट करती है। भक्ति एक प्रकार से ईश्वर और जीव के बीच का सम्बन्ध है। भक्ति की व्याख्या करने से पूर्व 'भक्त' को यह जान लेना आवश्यक है। डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना के अनुसार—"जब किसी व्यक्ति का हृदय प्रेम की लौकिक सीमा का उल्लंघन करके अलौकिक सीमा में प्रवेश कर जाता है, जगत के सांसारिक बन्धनों को छिन्न-भिन्न करके आध्यात्मिक भाव में लीन हो जाता है, पार्थिव-प्रतिभाओं का त्याग करके अपार्थिव प्रेम में आनन्द-विभोर हो उठता है, भौतिक प्रेम की दीवारों को तोड़ कर दिव्य भावनाओं के अनन्त आकाश में विचरण करने लगता है तथा वैयक्तिक प्रेम की शृंखलाओं में आबद्ध न रहकर अगोचर एवं अरूप सत्ता के पवित्र प्रेम में तन्मय हो जाता है, तब उसे भक्त कहते हैं।" शब्द कोषों में भक्ति से तात्पर्य है—विभाजन, पूजा, उपासना, अनुराग इत्यादि। वैसे भक्ति का सीधा-साधा अर्थ यह हो सकता है, जब व्यक्ति के हृदय में प्रेम की दिव्यानुभूति का उदय होता है, उसी अनुभूति को भक्ति कहा जा सकता है।

भक्ति का स्वरूप

भक्ति के अर्थ के पश्चात् यह आवश्यक हो जाता है कि जिसे साहित्य व दर्शन में 'भक्ति' कहा जाता है, उसका स्वरूप क्या है ? इस सम्बन्ध में स्पष्टीकरण के लिये बहुत पीछे से भक्ति को देखना पड़ेगा। 'उपनिषद-काल' के कुछ बाद से लेकर जब से कि भक्ति के विधिवत् स्वरूप का विश्लेषण होता है—भक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करने के अनेक प्रयत्न हुए हैं। शांडिल्य भक्ति-सूत्र के अनुसार भक्ति 'ईश्वर में अनुरक्ति है नारद भक्ति सूत्र में भक्ति के स्वरूप के विषय में कहा गया है—"भक्ति

के प्रति परम प्रेम रूपा और अमृत-स्वरूपा है। फिर भी महात्म्यज्ञान का विस्मरण नहीं होना चाहिए अन्यथा वह व्याभिचारिणीयों के प्रेम तुल्य हो जाएगी।" श्रीमद्-भागवत में भक्ति के स्वरूप का विश्लेषण इस प्रकार से है –"मनुष्यों के लिये श्रेष्ठ धर्म वही है जिसके द्वारा भगवान कृष्ण में भक्ति हो, भक्ति ऐसी हो जिसमें किसी प्रकार की कामना न हो और जो नित्यप्रति बनी रहे। ऐसी भक्ति से आनन्दस्वरूप भगवान की भपलब्धि करके भक्त कृत-कृत्य हो जाता है।"

मध्वाचार्य के अनुसार "भगवान में महात्म्यज्ञान पूर्वक सुदृढ़ और सतत् स्नेह ही भक्ति है। इससे सरल मुक्ति का कोई दूसरा उपाय नहीं है यह परमप्रेम जो पूर्वज्ञान से उत्पन्न होता है और सदा सर्वत्र विद्यमान रहता है, भक्ति कहा जाता है।"

रूप-गोस्वामी ने 'भक्ति' 'रसामृत-सिंधु' में भक्ति की परिभाषा इस प्रकार दी है—"ज्ञान और कर्म के प्रभाव से रहित होकर किसी प्रकार के फल की इच्छा किये बिना निरन्तर कृत्य का प्रेम पूर्वक ध्यान ही भक्ति है।"

भक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करने लिये से उपर्युक्त दी गई सभी परिभाषाओं में 'परमप्रेम', 'प्रेम', 'प्रेम-तुल्य', 'आनन्दस्वरूप', 'सतत्-स्नेह' और अनुरक्ति आदि शब्दों से यह स्पष्ट होता कि भक्ति के स्वरूप में परिभाषा भेद चाहे हो, परन्तु सभी ने आराध्य की महत्ता को स्वीकारते हुए उसके प्रति हृदय में प्रेम तत्त्व को आवश्यक माना है जब भगवान से 'प्रेम' हो जाता है, तभी उस के प्रति हमारे मन में श्रद्धा का उदय होता है। यही प्रेम व श्रद्धा मिल कर हृदय में एक विशेष भाव को जन्म देते हैं और वह भाव ही भक्ति भाव है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने चिंतामणि भाग एक में लिखा है—"श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। जब पूज्यभाव की वृद्धि के साथ श्रद्धा भाजन के सामीप्य लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई रूपों के साक्षात्कार की वासना हो, तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिये।" आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार—"भक्ति भगवान के प्रति अनन्यगामी एकान्त प्रेम का ही नाम है।"

भक्ति का उदय

घनानन्द रीतिकाल की रीतियुक्त धारा के कवि हैं। घनानन्द में भक्ति का उदय उनके जीवन के उत्तरार्द्ध काल में हुआ। लेकिन भक्ति के उदय की लम्बी गाथा है, जिसके सम्बन्ध में भारतीय व पाश्चात्य दोनों विद्वानों ने अपने मत व्यक्त किये हैं। यहाँ तक कुछ विद्वान तो भक्ति तत्त्व को ही पश्चिम से गृहीत मानते हैं। ग्रियर्सन, वेबर, कीप आदि पाश्चात्य आलोचक व बालगंगाधर तिलक, कृष्ण स्वामी आयंगर आदि भक्ति का उद्भव भारतीय मानते हैं। वैदिक युग में ब्रह्मा, विष्णु और शिव के स्थान पर इन्द्र को अधिक महत्त्व मिला, परन्तु परवर्ती साहित्य में विष्णु प्रधान हो गये। ब्राह्मण ग्रंथों और उपनिषदों में विष्णु का प्रचार और प्रसार मिलता

है। भक्ति के विकास में महाभारत काल एक ऐसा समय है, जब भक्ति के लिए न तो इन्द्र रह गये और न ही विष्णु, अपितु इन दोनों के स्थान पर 'वासुदेव' प्रमुख रूप से पूजे जाने लगे। महाभारत काल में गीता में भक्ति का स्वरूप स्थिर हुआ और मुक्ति के लिए भक्ति को प्रमुख माना जाने लगा। महाभारत काल के पश्चात पुराणों में धर्म और भक्ति के तत्वों को अधिक स्पष्ट रूप से समझाया गया। श्रीमद्भागवत पुराण में सर्वप्रथम राधा-कृष्ण का स्वरूप स्पष्ट होता है और राधा की अपेक्षा कृष्ण ही इसमें अधिक निखर पाये हैं। श्रीमद्भागवत में भक्ति को माधुर्य समन्वित रूप में प्रस्तुत करते हुए भक्ति के नौ रूपों का उल्लेख किया है—

१. श्रवण, २. कीर्तन, ३. स्मरण, ४. पाद-सेवन, ५. अर्चन, ६. वंदन, ७. दास्य, ८. सख्य, ९. आत्मनिवेदन।

विभिन्न सम्प्रदाय व घनानन्द

हिन्दी साहित्य में 'भक्ति' पर विभिन्न युगों में विभिन्न सम्प्रदायों का प्रभाव रहा है। इन भक्तिकालीन विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों का प्रचलन १५ वीं और १६वीं श० में हो चुका था। वैष्णव धर्म सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्त्तक श्री रामानुजाचार्य माने जाते हैं जिन पर शंकराचार्य के अद्वैतवाद का प्रभाव रहा है। रामानुजाचार्य यमुनाचार्य के प्रपौत्र थे और इनका समय १०३७ से ११३७ ई० का है। इन्हें ही वैष्णव सम्प्रदाय की नींव रखने का श्रेय प्राप्त है। वैष्णव भक्ति के क्षेत्र में निम्न सम्प्रदाय प्रसिद्ध —हैं

१. रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतवादी श्री-सम्प्रदाय
२. मध्वाचार्य का द्वैतवादी माध्व-सम्प्रदाय
३. निम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैतवादी निम्बार्क सम्प्रदाय
४. विष्णुस्वामी का शुद्धाद्वैतवादी रुद्र-सम्प्रदाय

इन्हीं चार सम्प्रदायों के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर १९ वीं शताब्दी तक निम्नलिखित पाँच सम्प्रदायों का प्रचलन हो चुका था—

१. रामानन्दी सम्प्रदाय (विशिष्टाद्वैतवादी)
२ वल्लभ सम्प्रदाय या पुष्टिमार्ग (शुद्धाद्वैतवादी)
३. चैतन्य-सम्प्रदाय (भेदाभेदवादी)
४. राधावल्लभीय सम्प्रदाय
५. सखी-सम्प्रदाय

रीतिकालीन भक्ति काव्य पर अथवा यों कहा जाय कि ब्रज-भाषा के कृष्ण भक्ति काव्य पर उपर्युक्त सभी सम्प्रदायों का प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में पड़ा। घनानन्द का जीवन जैसा कि सर्वविदित है, भक्त का जीवन न था। मूल रूप से वे एक रसिक व्यक्ति थे, जो सुजान के प्रेम में सर्वस्व लुटा कर बरबाद हो गये। सुजान यदि उनका साथ देती तो उनके जीवन का नक्शा ही कुछ और होता, परन्तु सुजान

द्वारा किया गया विश्वासघात उनके लिए वियोग और क्लेश छोड़ गया। इसी से उनके काव्य के उत्तरार्द्ध में वैराग्य का भाव पाया जाता है। जीवन के पूर्वार्द्ध में तो वे रस-रंग में डूबे रहे, परन्तु उत्तरार्द्ध में उनके मन में यह भाव आया कि मन इस प्रेम के भँवर मे फंसा ही क्यों? और वह अन्तिम समय में भगवदोन्मुख हो गये। उनके वैराग्य और भक्तिपरक छन्दों की पृष्ठभूमि केवल इतनी ही है। अब प्रश्न यह उठता है कि जब घनानन्द ने अपना लौकिक प्रेम आलौकिक राधा-कृष्ण को समर्पित कर दिया और वे भक्त हो गये तो उनकी भक्ति उपर्युक्त सम्प्रदायों में से किससे अधिक प्रभावित थी? कौन से सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तों को लेकर उन्होंने काव्य रचना की। अधिकतर विद्वान आलोचक उनकी भक्ति को निम्बार्क सम्प्रदाया-नुसारिणी भक्ति मानते हैं। इसमें कृष्ण की चरण-सेवा का महत्त्व सर्वाधिक है। श्री निम्बार्काचार्य ने युगल-उपासना के साथ-साथ भगवान कृष्ण की माधुर्य एवं प्रेम शक्ति राधा की उपासना पर विशेष बल दिया था और इस सम्प्रदाय में उज्ज्वल तथा मधुर भाव को भक्ति के लिये सर्वोत्कृष्ट भाव माना गया है।

घनानन्द के भक्ति-काव्य का यदि सूक्ष्मता से निरीक्षण किया जाय, तो उनके भक्ति-काव्य में लगभग सभी दार्शनिक सम्प्रदायों के तत्त्व कुछ-न-कुछ सीमा तक मिल जाते हैं। इसी से विद्वान् एकमत नहीं हो पाये कि वे मूल रूप से और मुख्य रूप से किस भक्ति सम्प्रदाय के अन्तर्गत आते हैं। श्री शंभुप्रसाद बहुगुणा के अनुसार—'घनानन्द को यदि हम वैष्णव भावनाओं से प्रभावित हुआ भी पाते हैं, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वे मूलतः रहस्योन्मुखी प्रेम-काव्य के कवि हैं और सूफी तथा निर्गुण प्रेमी कवियों के अन्तर्गत मीरा की भाँति आते हैं। घनानन्द ने सम्भवतः निर्गुण प्रेम-भावना के कवियों, सन्तों तथा सगुण रूप-परम्परा के भक्तों के जीवन के तात्त्विक भेद को अपने लिए स्वयं दोनों प्रकार का जीवन बिताकर देख-समझ लिया था और इसी-लिये आगे चलकर वे सम्भवतः रहस्यवादी-प्रेमी कवियों व सन्तों की भावना से हट कर सगुण रसवादी-वैष्णवों की परम्परा में आ जाते हैं।'' आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इन्हें प्रेम-मार्ग का भक्त कवि माना है और उनका विचार है कि—'उन्हें शुद्ध भक्त न मानकर प्रेमोमंग मानने का कारण है। रीतिबद्ध बिहारी, निम्बार्क (राधा-तत्त्व प्रधान) सम्प्रदाय में ही दीक्षित थे। अपनी सतसई में राधा से बाधा-हरण करने की प्रार्थना करके उन्होंने अपना सम्प्रदाय व्यक्त कर दिया है। पर वे भक्तों की श्रेणी में नहीं बैठाये गये। इसका कारण यही है कि उनकी रचना भक्त कवियों की-सी नहीं है। घनानन्द ने अन्त में भक्ति सम्प्रदाय में दीक्षा ले ली थी, पर लौकिक प्रेम का सुजान नाम ये न भूल सके।'' लाला भगवानदीन और डॉ० मनोहरलाल गौड़ ने घनानन्द को सखी सम्प्रदाय का माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार घनानन्द का सम्प्रदाय निम्बार्क सम्प्रदाय है। उन्होंने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखा है—''जब ये चलने लगे, तब सुजान से भी साथ चलने को कहा, पर वह न गई। इस पर इन्हें विराग उत्पन्न हो गया और ये वृन्दावन जाकर निम्बार्क सम्प्रदाय

के वैष्णव हो गये और वहीं पूर्ण विरक्त भाव से रहने लगे।" शुक्लजी ने अपने मत की पुष्टि में यह पद उद्धृत किया है—

गुरनि बतायो, राधा-मोहन हू गायो सदा,
सुखद-सुहायो वृन्दावन गाढ़े गहि रे।
अद्‌भुत अमृत महिमंडन, परे तें परे,
जीवत को लाहु हा हा क्यों न ताहि लहि रे॥
आनंद को घन छायो रहतो निरन्तर ही,
सरस सुदेय सों, पपीहापन बहि रे।
जमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसी,
पावन पुलिन पै पतित परि रहि रे॥

श्रीमती ज्ञानवती त्रिवेदी के अनुसार घनानन्द का झुकाव बल्लभ सम्प्रदाय की ओर था। अपने मत की पुष्टि में वह यह पद देती हैं—

श्री वल्लभ गुण-गान
भोर हौं वल्लभ वल्लभ कहिये।
आनन्द परमानंद श्रीकृष्ण मुख सुमरे अष्ट सिद्धि पइये।
और सुमिरो की विट्‌ठल विट्‌ठल की गिरधर गोविन्द द्विजवर भूप।
श्री बालकृष्ण गोकुल पति रघुपति, यदुपति नवघन श्याम स्वरूप।
पढ़ो सुसार श्री वल्लभ वचनामृत, जपो अष्टाक्षर मंत्र करि नेम।
अन्य कवन कीर्तन तजि निशि दिन सुनो सुबोधिनी धरि जिय गेम।
और सेवो सदा नंद यशोमति-सुत प्रेम भक्ति सहित जिय गान।
अन्याश्रय असमर्पित लेतो असद् अलाप असद् संग हानि।
नयननि निरखो श्री कालिन्दी और निरखो सुखद ब्रजधाम।
यह सम्पत्ति श्री वल्लभ से पैये हरिजन नहिं काहू सो काम।

अन्यत्र एक स्थल पर श्री मनोहरलाल गौड़ ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखा है—"घनानन्द के काव्य में वैष्णव तत्त्व को स्वीकृति प्रदान की है और उनके अनुसार घनानन्द 'सखी-सम्प्रदाय' के थे। अतः उनकी भक्ति मधुरा-भक्ति थी।" श्री वियोगी हरि ने लिखा है—शुक्ल जी के अनुसार घनानन्द वैष्णव थे, यह तो ठीक है, पर उनका सम्बन्ध किस सम्प्रदाय से था, यह नहीं बताया।"

घनानन्द पर किस सम्प्रदाय का प्रभाव था, उपर्युक्त विभिन्न मतों के पर्यालोचन के पश्चात् भी स्पष्ट नहीं होता। कोई उन्हें सखी-सम्प्रदाय का मानता है, तो अन्य निम्बार्क का। इसी प्रकार किसी के मत में वे वल्लभ सम्प्रदाय के अनुगामी थे, तो कुछ आलोचक उन्हें निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित मानते हैं। वास्तव में ऐसा लगता है कि उनका झुकाव किसी एक विशेष सम्प्रदाय की ओर नहीं था। इसी

से किसी भी सम्प्रदाय का विधिवत् सैद्धांतिक विवेचन हमें नहीं मिलता। वे तो हृदय के धनी थे। जब तक सुजान से प्रेम करते थे —उनका प्रेम किसी भी शास्त्रीय कोटि अथवा दशा के अन्तर्गत नहीं रखा जा सका। इसी प्रकार वैराग्य और भक्ति के क्षेत्र में भी वे मुक्त रहे। भावावेश में जिस सम्प्रदाय के जिस सैद्धांतिक प्रवाह में वे बह निकले, उसी की सुनियोजना उनके काव्य में होती गई।

घनानन्द की वैष्णव भक्ति

घनानन्द के जीवन में दो मोड़ ऐसे आये, जहाँ उनका जीवन दो भागों में विभाजित हो गया। पहला मोड़ लौकिक प्रेम का था और दूसरा मोड़ आया भक्ति और वैराग्य का। सुजान को वे आजीवन न भूल पाये। जैसाकि आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में लिखा है कि भगवदोन्मुख होने पर सुजान नाम उनसे न छूटा, इसी से उनकी भक्ति में भी अलौकिक प्रेम, जो राधा व कृष्ण के प्रति है—अधिकतर सुजान नाम से सम्बद्ध है। घनानन्द को अपनी भावनाओं के विस्तार के लिए इस प्रकार के भक्ति-मार्ग की आवश्यकता थी, जो उनके हृदय में उठने वाले विविध भावों को समेट सके। इसके लिए वैष्णव-भक्ति से सुन्दर, सरल और उज्ज्वल अन्य कोई मार्ग न था। अत: उन्होंने मुख्य रूप से वैष्णव भक्ति को अपनाया, जिसमें वे अपने सुजान के प्रेम को राधा-कृष्ण में उंड़ेल सकते थे, मधुरा-भक्ति द्वारा, हृदय की ममता-भरी भावनाओं को कृष्णार्पित कर सकते थे। वात्सल्य भक्ति द्वारा और मित्र-भावना को पुष्ट कर सकते थे, सख्य भक्ति द्वारा। डॉ० मनोहरलाल गौड़ के अनुसार—"उनका दूसरा प्रतिपाद्य भक्ति है, जो वैष्णव-परम्परा की लीला-प्रधान और शृंगार-व्यंजित दो प्रकार की मिलती है। पहली में कवि ने श्रीकृष्ण और राधा की रूप-माधुरी एवं लीलाओं का वर्णन किया है। यह अधिकतर गेय पदों और निबन्धों में है। कवित्त सवैयों में भी यह यत्र-तत्र मिलता है।

× × ×

भक्ति का एक दूसरा रूप और है, जहाँ कवि व्यापक सत्ता के दर्शन पाने के लिए लालायित है। उस सत्ता का अनुभव तो वह सर्वत्र करता है, पर उसके प्रति दर्शन नहीं कर पाता, इसलिए व्याकुल रहता है।"

भक्ति के विविध रूप

नारद भक्ति-सूत्र में दस आसक्तियों का वर्णन है—१. गुण माहात्म्यासक्ति, २. रूपासक्ति, ३. पूजासक्ति, ४. स्मरण सक्ति, ५. दास्यासक्ति, ६. सख्यासक्ति, ७. कान्तासक्ति, ८. आत्मनिवेदनासक्ति, ९. परमविरहासक्ति। इन आसक्ति में सभी को घनानन्द ने अपने काव्य में ग्रहण नहीं किया। घनानन्द में मधुरा भक्ति को अधिक स्थान मिला है—यह निम्बार्क सम्प्रदाय की भक्ति-भावना से मेल खाती है।

१. मधुरा भक्ति

वृन्दावन में आने के पश्चात् घनानन्द निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये और इस सम्प्रदाय में युगल-उपासना का विशेष महत्त्व है। युगल-उपासना में भी कृष्ण की अपेक्षा राधा का महत्त्व अधिक है। घनानन्द ने भी राधा और कृष्ण के प्रति अपनी गहन आस्था, उत्कट श्रद्धा और अक्षय विश्वास को प्रकट किया है। माधुर्य भाव की भक्ति में भक्त प्रभु की विभिन्न लीलाओं का स्मरण और वर्णन करता है। इसे उज्ज्वल रस की भक्ति भी कहा जाता है। इसी से घनानन्द ने राधा-कृष्ण की श्रृंगारिक चेष्टाओं, हास-विलास की लीलाओं का खुलकर वर्णन किया है। राधा-कृष्ण की श्रृंगारिक चेष्टाओं, कामजन्य हाव-भावों के वर्णन में अश्लीलता का लेश-मात्र भी आभास नहीं होता, क्योंकि यह श्रृंगार लौकिक न होकर आध्यात्मिक श्रृंगार होता है। घनानन्द ने माधुर्य भक्ति सम्बन्धी पद बहुत बड़ी संख्या में लिखे हैं। 'पदावली' में अनेक छन्दों में राधा-कृष्ण की सुरति का वर्णन है। युगल उपासना का एक चित्र—

> वृन्दावन सोभा नई नई रसमयी सोभा,
> कहत बनै ना स्याम-नैन पहचानहीं।
> राधिका वरस कों सुदेश आदरस याही,
> चाह्यौई करत जब-जब जैसे जानहीं॥
> ऐसे रंग मूरति बसे हैं एक संग दोऊ,
> रूप की भरीचैं घनआनन्द बितानहीं।
> जमुना के तीर देखौं प्रकट दुरयौ है अति,
> निगम अगम ताहि लेखेंई बखानहीं॥

कृष्ण के असीम अनुराग और उनके रूप-सौन्दर्य के लुभावनेपन की ओर आकर्षित होकर घनानन्द ने उनके प्रति अपने अनन्त प्रेम को प्रकट किया है। जिसमें कहा है कि वे मधुर सौन्दर्य से परिपूर्ण, छैल-छबीले, बाँके नेत्रों वाले मेरे द्वार के पास से कल गाते हुए चले गये। उनका मुस्काता रूप देखकर मेरा चित्त भ्रमित हो गया। तब से मुझे चैन नहीं पड़ रहा, मेरा धीरज खो गया है, अचानक ही मैं उन्हें देखकर लट्टू हो गया हूँ—

> नंद को नवेलो अलबेलो छैल रंग भरयो,
> कालिह मेरे द्वार ह्वै कै गावत इतै गयौ।
> बड़े बाँके नैन महाशोभा के सु ऐन आली,
> मृदु मुसक्याव भुरि सो तन चितै गयौ॥
> तब ते न मेरे चित्त चैन कहूँ रंचको है,
> धीरज न धरैं सो, न जानौ धौं कितै गयौ।
> नेकु ही मैं मेरो कछु मो पै न रहन पायौं,
> औचक ही आई भटू-लूट सी बितै गयौ॥

जिस प्रकार बिहारी ने राधा की स्तुति करते हुए अपनी भव-बाधा-हरण की प्रार्थना की थी, उसी प्रकार घनानन्द भी गहन आस्था, अतुलित श्रद्धा से राधा के प्रति अपना भक्ति-भाव व्यंजित करते हैं—

चांपत चरन तनक झुकि झाऊँ। छुवैं सीस राधा के पाऊँ॥
राधा धरयो बहु गुनी नाऊँ। टरि लगि रहौ बुलाए जाऊँ॥
राधा की जूठन ही जियौं। राधा को प्यासनि ही पियौं॥
राधा को सुख सदा मनाऊँ। सुख दै दें हौं सुख ही पाऊँ॥

घनानन्द के काव्य में राधा-कृष्ण के श्रृंगार-सम्बन्धी कवित्त बहुलता से पाये जाते हैं। कवि की रचना में मधुरा-भक्ति के तत्त्व पूर्ण रूप से मिल जाते हैं, जिनमें राधा-कृष्ण के प्रति प्रेम के साथ-साथ ब्रज-प्रदेश, वृन्दावन भूमि का भी यशोगान हुआ है—

मन पारद कूप लौं रूप चहै,
उमहै सुरहैं नहि जेतो गहौ।
गुन गाउनि जाय परै अकुलाय,
मनोज के ओजनि सूल सहौ॥
घनआनन्द चेटक धूम में प्राण,
छुटैं न छुटैं गति कासों कहौं।
उर आवत यों छवि छांह ज्यौं हौं,
ब्रज छैल की गैल सदाई रहौं॥

इस प्रकार ब्रज की गैल भी कवि को उतनी ही प्रिय है—जितना कि ब्रज का कन्हैया। और हो भी क्यों न। जहां प्रिय बसे, प्रिय की हर वस्तु, वस्तु का हर रूप और वह मग तक प्रिय हो जाता है, जिस रास्ते से होकर उसका प्रिय गया है। मधुर के सभी अंगों में घनानन्द ने राधा और कृष्ण की विलास चेष्टाओं का भी वर्णन किया है। निम्न छन्द में विलास-क्रीड़ा का अत्यन्त सुन्दर चित्र है, जहां श्याम व राधा दोनों प्रसन्नता में सराबोर होकर हंसते हुए बातें कर रहे हैं, जिन्हें देख हृदय में प्रेम की उमंग और बढ़ जाती है।

हँसि हँसि करैं बातैं रंगीले दोऊ मदमाते
भौंर स्याम अभिराम अंग हिय उमंग बाढ़ी गाढ़ी
× × ×
नई तरुनाई को ओप भई मुख सुख समोह पुलकाते
रीझि चोप आनंदघन बरसत मिलत हार करि हाते।

अन्यत्र कवि ने राधा और कृष्ण के संयोगजन्य विलास का भी चित्रण किया है, जिसमें केलि के समय समस्त आभूषणों का उतारना और उन्हें यथास्थान रखना, इत्यादि वर्णित है। इस सुख को केवल अनुभव किया जा सकता है, यह वर्णन करने

की वस्तु नहीं और वर्णन हो भी कैसे ? वाणी में इतनी शक्ति ही नहीं है। घनानन्द ने राधा-कृष्ण की रति का जो चित्र दिया है, वह इस प्रकार है—

भूषण उतारि अंग अंगहि सम्हारि नाना,
रुचि के बिचार सों समोय सीझी मति है।
ठौर ठौर लै लै राखें औरे और अभिलाखें,
बनत न भाखें तेई जनि दसा अति है।
मोद मद छाके घूमैं रीझि भीजि रस चूमैं,
गहैं चाहि रहैं चूमैं अटा कहा रति है ॥

लौकिक शृंगार में जिस प्रकार संयोग और वियोग दोनों माथे का चित्रण होता है, उसी प्रकार माधुर्य भक्ति में राधा कृष्ण संयोग और संभोग वर्णन के समान ही कान्ता भाव से भी राधा द्वारा कृष्ण की उपासना करायी है। जिसमें कृष्ण राधा से वियुक्त होकर चले गये हैं और उनके विरह में राधा के नेत्र पथ जोहते-जोहते थक कर क्षीण हो गये हैं। जीभ कृष्ण का नाम रटते-रटते थक गई है। अत्यन्त आर्त हो कर वह हृदय का दीप जला कर कृष्ण को प्रेम से स्मरण करती है और रूप के उज्ज्वल खजाने श्रीकृष्ण की आने की राह देखती है। राधा अपने हृदय के भावों से मजबूर है—

नेह सों भोय संजोय धरी हिय-दीप दसा जु भरी अति आरति।
रूप उजयारे अकू ब्रजमोहन सौंहनि आवनि ओर निहारति ॥
रावरी आरति बावरी लौं घनआनंद भूलि वियोग निवारति।
भावना-धार हुलास के हाथनि यौं हित मूरति हेरि उतारति ॥

घनानन्द की माधुर्य भक्ति में भक्तिकालीन कवियों जैसे सूर और मीरा जैसी भावुकता पाई जाती है। सूर की गोपियों के समान ही घनानन्द की राधा कृष्ण को प्रेम करती है, विरह में व्याकुल होती है। यही भाव मीरा में भी मिलता है। कृष्ण की दीवानी मीरा में जो लगन है, तड़प है लगभग वैसी ही श्रद्धा, तन्मयता तथा मार्मिकता राधा के विरह-परक छंदों में मिलती है। घनानन्द ने मधुरा भक्ति को अपने काव्य में अधिक स्थान दिया है, इसी से अधिकतर आलोचक उन्हें निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्तर्गत रखते हैं।

२. सख्य भक्ति

घनानन्द ने जिस संख्या में मधुरा भक्ति के पद लिखे हैं उतनी बड़ी संख्या में भक्ति भाव के अन्य विविध भावों का वर्णन वे नहीं कर पाये। सख्य भाव की भक्ति में सूर के समान कवि बराबरी करता हुआ अधिकार के साथ मैत्री-भाव की बातें करता है। भगवान कृष्ण को इन पदों में एक मित्र के रूप में, सखा रूप में मान कर सख्य-भाव से उपासना की है। यहाँ पर दीनता और विनती को त्याग कर रौब से बात करता है। एक साथ दो भावों का मिश्रण है—विनती का और अधिकार

का। अपने उद्धार की बात करते समय विनीत न हो कर बड़े अधिकार पूर्ण स्वर में कहता है—

अब मेरी तुमसों पुकार है हो,
ब्रजमोहन-प्रान आधार पुकार है हो।
कान खोल किनि सुनियै हा हा,
सुंदर सुखद सुजान उदार॥
बरस दुखारे नैन बिचारे,
तरसत बरसत सांझ सबार।
दीन पपीहन के आनंदघन,
आन लीजिये बेगि सम्हार॥

सख्य भक्ति के अन्तर्गत कवि ने अपने प्रिय कृष्ण को उपालम्भ भी दिया है और कृष्ण की मुस्कराती हुई मूर्ति के आगे वह कह उठता है हे कृष्ण तुमने दर्शन देने का वादा क्यों किया था, इस प्रकार हँस-हँस कर मुझे देखा अब मिलते क्यों नहीं, क्या तुम भी सांसारिक मनुष्यों की भांति हो जो प्यार करके धोखा दे देते हैं?

क्यों हँसि हेरि हर्‌यौ हियरा,
अरू क्यों हित कै चित्त चाह चढ़ाई॥

× × ×

मीत सुजान अनीत की पाटी,
इतै पै न जानै कौन पढ़ाई॥

श्री मनोहर लाल शर्मा के विचार में—"घनानन्द की सख्य भक्ति की विशेषता यह है कि उनमें दास्य-भाव भी बराबर बना रहता है और ऐसा होना स्वाभाविक भी है क्योंकि भगवान् तो भगवान् ही है और भक्त, भक्त। ऐसा लगता है कि प्रिय सखा रूठ गये हैं, कभी हँस कर बोलते ही नहीं। घनानन्द के अधोलिखित पद से लगता है मानो सखा, सखा को दीन भरी पुकार में मना भी रहा है और हल्के उपालम्भ से उसकी धृष्टता को भी चुनौती दे रहा हैं।" अपने मत की पुष्टि के लिये उन्होंने निम्न उदाहरण दिया है—

आवों वो आंवो ओ मैंडे कोल।
तैन्डे नाल जिन्द लगी मुझ वो निमाणी दे सिमाणी दे मान गुमाणी—
कदी तो हम हँस-हँस बोल।
सांवली सूरति पर घोल-घोल चत्ती बँदी हां बिन मोल।
प्रान पपीहों दे आनन्दघन दिल दी घुंडी खोल॥

(पदावली)

घनानन्द की सख्य भक्ति को कुछ लोग सखी-सम्प्रदाय के साथ जोड़ते हैं जो कि उचित नहीं। सखी सम्प्रदाय में दार्शनिक रूप से यह विशेषता पाई जाती कि वहां

भक्त स्त्री हो या पुरुष राधा की सखी बन कर भक्ति करता है कृष्ण की नहीं जबकि घनानन्द ने कृष्ण को अपना मित्र माना है। डॉ० मनोहर लाल गौड़ के शब्दों में —"जितना कुछ वर्णन इस भाव का इनकी रचनाओं में मिलता है, वह प्रियनर्मवयस्य सखाओं का है। 'ब्रज-व्यहार' में दानलीला के प्रसंग में सखाओं का वर्णन किया गया है। गोपियाँ दधि लेकर जंगल से निकलती हैं। गायों को देखने के लिए श्रीकृष्ण पर्वत पर चढ़ते हैं। मन में दानलीला का चाव है। सुबल, सुबाहु, तोप और मधु-मंगल जो उज्ज्वल प्रेम में चतुर हैं तथा अन्य सखा श्रीकृष्ण के साथ हैं।.........इतनी अधिक रचनाओं में सख्य-भाव का प्राप्त होना तो स्वाभाविक ही है। पर कवि का अनुराग इस भाव के साथ दिखाई नहीं देता। वह तो मधुर या शान्त भाव के साथ ही है।"

३. वात्सल्य भक्ति

श्रृंगार की भावना के समान वात्सल्य भी एक ऐसा भाव है, जो प्रत्येक प्राणी में मिलता है। यह एक अत्यन्त व्यापक भाव है। शिशु के पालन-पोषण में माता स्वयं को सौभाग्यशाली समझती है, बच्चे द्वारा दिये गये कष्टों के प्रति उसकी बदले की भावना नहीं होती। अन्य प्रकार के भावों से इसकी यह विशेषता है कि यह विशेषता है कि यह निस्वार्थ होता है। भक्ति साहित्य में कृष्ण के प्रति वात्सल्य भक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण सूरदास हैं। उन्होंने वात्सल्य भक्ति का अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया है। कृष्ण की बाल चेष्टाओं को, उनकी मधुर भंगिमाओं को सूर की बन्द आंखों ने जितना निहारा है, अन्य कवियों ने नहीं। घनानन्द ने अपनी रचनाओं में बाल कृष्ण की क्रीड़ाओं को अंकित किया है। सख्य भाव की भांति वात्सल्य भाव भी घनानन्द में अधिक नहीं मिलता। डॉ० मनोहर लाल गौड़ के शब्दों में "घनानंद जी मुख्य रूप से मधुरा भक्ति के भक्त तथा स्वच्छंद प्रेम के कवि हैं। इनकी रचनाओं में वात्सल्य भाव के दर्शन अत्यन्त अल्प मात्रा में तथा अपरिपुष्ट रूप में होते हैं।"

घनानन्द की रचनाओं में कृष्ण की बाल चेष्टाओं के कुछ उदाहरण हैं, जिनसे उनकी वात्सल्य भक्ति का परिचय मिलता है—

> जसोमति आरती उतारै उमगि अहनो जियौ वारै।
> चित्त चही रही ललन की बन तै गोधन लै घर आवनि।
> अति आरति सौं बदन निहारै।
> लै बलाय मुख आँचर पोंछनि प्रेम पुचकरनि बरसति प्यारै।

यहाँ गोचरण के बाद कृष्ण जब घर को लौटे हैं, तो यशोदा मैया के हृदय में वात्सल्य की बाढ़ सी आ गई है और कृष्ण पर वह अपना हृदय न्योछावर करती है। बड़ी लालसा से उनका मुख देखती है, बलैया लेती है और प्रेम से उनका मुख पोंछती है। उनके मुख को चूम कर पुचकार कर उन पर अपने प्यार की स्नेह की वर्षा करती है।

अन्य उदाहरण में वह कृष्ण को सामान्य बालक की भाँति आँचल ढक कर दूध पिलाती है कि किसी की बुरी नजर उनके बेटे को न लग जाय। गोद में लेकर प्यार से दुलारती हुई मैया का यह वर्णन सूर से किसी भाँति कम नहीं --

भागनि भरी जसोदा-मैया मन को मोद कहौं।
गोद लियें लालहि दुलरावति यह सुख देखि रहौं॥
सुकुमार बैस मनमोहन ब्रजजन जीवन-प्राण।
ऐसे सुत के मुखहि सपूती देति-पयोधर-पान॥
मुसकत पियत जियत अरु ज्यावत जननी जिय आधार।
प्रबल मोद की उमंग तरंगिनी द्रवित दूध की धार॥

इस प्रकार के वर्णनों के साथ-साथ घनानन्द ने बधाई के पद भी लिखे हैं। उनमें उनके वात्सल्य भाव की झलक मिलती है, इनमें कवि ने कृष्ण के साथ-साथ राधा के प्रति भी अपने वात्सल्य भाव की भक्ति को अभिव्यक्त किया है। माता कीर्ति राधा की लाड़ के साथ झाँकी पुजाती है, चंदन-रोली से पूजा आदि करती है, घनानन्द ने अपनी रचना 'गिरि-पूजन' में कृष्ण के प्रति अपनी भक्ति निवेदित की है। कृष्ण के शैशव-काल का भी थोड़ा-बहुत वर्णन इसमें मिलता है। बलराम और श्याम दोनों की जोड़ी अत्यन्त सुशोभित हो रही है, जो भी दर्शन पा रहा है, उन्हें नेत्र लाभ हो रहा है। कृष्ण अन्य बाल-ग्वालों के साथ मिल कर जा रहे हैं और थोड़ी देर में अपनी माता यशोदा और रोहिणी जहाँ हैं, वहाँ भाग कर पहुँच जाते हैं। माँ से मिठाई ले कर अपनी झोली भर लेते हैं और वहाँ दूसरे बच्चों में बाँट देते हैं, नाचते फिरते हैं—

स्याम राम की जोट सुहाई। सबके मन नैनीन सुखदाई।
रंगन करत ग्वालन संग। ब्रज मोहन सब को सब अंग।
रोहनि जसुमति को समाज जहाँ। दौर जात हैं कान्ह कंवर तहाँ।
गोद भराय फिरत कछु बाँटत। मधु मंगल लै लै फिर बाँटन।
गिरधर पायनि पायनि पायन। उदरि चलत भरि गोधन मायन।

४. दास्य भक्ति

दास्य भाव में भगवान् और भक्त का जो सम्बन्ध होता है, उसमें भगवान को स्वामी समझकर भक्त उनकी सेवा करता है। दास्य भाव की व्याख्या करते हुए श्री वल्लभाचार्य ने लिखा है कर्म के फल की प्राप्ति न होने पर भी दास भक्तों को पश्चाताप का अवसर नहीं आता। वह तो सेवक ही है, अन्य कुछ नहीं। लौकिक स्वामियों की तरह श्रीकृष्ण को नहीं देखना चाहिये। सेवक का तो यही धर्म है कि स्वामी अपना धर्म स्वयं निबाहेगा।" दास्य भाव की भक्ति में भक्त के दैन्य और आराध्य के महत्त्व का वर्णन होता है। भक्त अपनी दीनता, कुटिलता और दोषों का बार-बार वर्णन करता है और परमात्मा से विनय, याचना, दैन्यनिवेदन उनके क्षमा-

वान रूप आदि का वर्णन करता है। तुलसी ने भी कहा—'मों सम कौन कुटिल खल कामी।' भक्त संसार की समस्त वस्तुओं को छोड़कर भगवत् कृपा की ओर दृष्टि लगाये रखता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य की भूमिका में दास्य भाव की भक्ति की व्याख्या करते हुए लिखा है—"दास्य-भाव में ऐश्वर्य बोध का होना बहुत आवश्यक है। इसलिए भक्ति के लिए भक्त को भगवान के तीन रूपों पर बहुत जोर देना पड़ता है। उनका—१. क्षमावान रूप, २. शरणागतवत्सल रूप, ३ करुणायतन रूप। इन स्वरूपों के द्वारा उनके सामने जाते ही करोड़ों जन्मों के के पाप नष्ट हो जाते हैं, उनकी शरण में जाने पर भक्त कृतकृत्य हो जाता है और उसके सभी परिताप जाते रहते हैं। दास्य-भाव से भजन करने वालों को लिए ऐश्वर्य भाव बहुत जरूरी है। जब तक भगवान के ऐश्वर्य को वह सदा स्मरण नहीं करता रहता, तब तक उसमें दैन्य आदि भाव तीव्र रूप में प्रकट नहीं होते।"

घनानन्द के काव्य में दास्य भाव की भक्ति के यह तीनों रूप मिल जाते हैं।

१. क्षमावान रूप

परमात्मा के अनेक गुणों में उनका क्षमावान होना भी है। भक्त सच्चे मन से अपनी भूल को स्वीकार ले तो प्रभु अवश्य ही उसे क्षमा कर देते हैं। घनानन्द ने अपनी कृति 'कृपाकन्द' में परमात्मा के क्षमावान् रूप की ओर स्वयं को घोर कुटिल होने की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यंजना की है। वे कहते है—

> भूले-भरे की सुरति करौ।
> अपघौ गुन-निधानता उर धरि यो अनेक औगुन बिसरौ।
> या असोच को सोच कीजिए हा हा हो हरि सुढर ढरौ।
> कृपा कन्द आनन्द कन्द हौ पतित पपीहा-तपति हरौ।

२. शरणागतवत्सल रूप

भक्त को भगवान् के शरणागतवत्सल होने का पूर्ण विश्वास है, वे इतने उदार हैं कि अशरण को शरण देते हैं। और जो भी व्यक्ति जिस रूप में भी उनके पास, उनकी शरण में आ जाय, वे कभी दुत्कराते नहीं। घनानन्द को भी अपने कृष्ण के ईश्वर होने में, सर्वशक्तिमान होने में पूर्ण विश्वास है। वे अपने दोषों को दूर करने की और इस संसार सागर से पार उतरने के लिए ही प्रभु की शरण में आये हैं। याचना करता हुआ भक्त कवि कहता है—

> आयौ सरन बिकार भरयौ।
> तुम सरबज्ञ अज्ञ हौ बहु विधि जु कछु न करिबै सु कछु करयौ।

इसी प्रकार अन्यत्र एक स्थल पर वे कहते हैं तुम तो समस्त जगत का उद्धार करने वाले हो, मुझे भी पार लगा दो। तुम पर मुझे पूरा भरोसा है, मेरी बाँह पकड़ कर तुम अवश्य मेरा उद्धार करोगे। मैं आरम्भ से तुम्हारे गुण सुनता आया हूँ कि तुम

असरण को भी अपनी शरण में ले लेते हो और मैंने केवल इसी बात को याद रक्खा है और सब कुछ भूल गया हूँ। हे प्रभु! तुम सब समय, सब स्थान पर नित्य प्राणों के संग लगे रहते हो अतः हे। प्रभु मुझ दीन जन का उद्धार करो—

जगतारन पारन हो मोहूँ पार करियै।
नाथ को भरोसो भारी अब तो कर पकरियै।।
असरन के सरनदायक धुर तें सुनि आयौ।
यहै बाति सुराति राखि सब कुछ बिसरायौ।।
सकल ठौरे सबै समै प्रानसंगी नित के।
आनन्द घन जीवन घन दीन जननि हित के।।

३. करुणायतन रूप

प्रभु के करुणादायक रूप पर भक्त घनानन्द को असीम आस्था है। वह जानता है कि प्रभु करुणा के सागर हैं जो भी पतित भटक कर उनकी शरण में गया उनके चरणों से लग गया, उसे वे कभी दूर नहीं करते अपितु प्यार से सम्भाल लेते हैं—

लै राखो अपने पायनि तर,
यह मन भटकि आयौ जग,
कृस्न कमल लोचन करुनाकर।

'कृपाकन्द' में कवि ने लिखा है कि भगवान् कृष्ण के प्रति उन्होंने अनन्य आस्था लगा रखी है। मैं तो पापी हूँ ही, पर कृष्ण करुणा के सागर हैं, वे अवश्य ही अपने नाम की लाज रखेंगे। घनानन्द ने ऐसे जग का उद्धार करने वाले प्रभु, करुणा के सिंधु के प्रति श्रद्धा-भक्ति भाव से स्तवन करते हुए लिखा है—

जगतारन करुणा सिंधु मुरारी,
दीन सम्हारनि लेत सम्हारि।
अधम उधारन बहुविधि सुख बिस्तारन,
स्वामी दयाल बन—
पूरन पालन व्रतधारी।।

घनानन्द ने ईश्वरकी कृपा के प्रति ही अपनी दृष्टि लगा रखी है और संसार की समस्त वस्तुओं से उसे कोई सरोकार नहीं। 'कृपाकन्द' काव्य-निबन्ध उनकी भक्ति-रस से पूर्ण रचना है। साम्प्रदायिक दृष्टि से इस कृति पर वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग का प्रभाव लक्षित होता है। पुष्टिमार्ग में भगवान् का 'अनुग्रह' प्रमुख है और घनानंद ने सर्वत्र परमात्मा के सभी रूपों से उस अनुग्रह की याचना की है। वे कहते हैं—हे माधव, मेरी पुकार पर हर समय इसी की कामना करता है—

जिहि जिहि ठौर जाहि जाहि भाँति जानराय
जुगनि जुगनि जगमगे हो जनन कौं।

पूरन-कृपा-पियूष पालत रहे हो सदा,
प्रानन तें प्यारे अपनैन के पनन को।
गोविन्द गुंसाई त्यों ही मांगत हो गोद-गेह,
गिरा अगराई गुन-गरिमा गजन कों।।
मन घनआनन्द तिहारी चोप चातक ह्वै,
चाहत है संनिधि सदावनि सनन कों।।

घनानन्द की भक्ति : प्रमुख विशेषताएं

प्रभु में अनन्य-आस्था

घनानन्द का भक्ति काव्य प्रभु के प्रति असीम अनुराग, श्रद्धा और अनन्य प्रेम से परिपूर्ण है। उन्होंने एकनिष्ठ होकर प्रभु स्मरण किया। लौकिक जीवन से पूर्ण रूप से निराश होने के पश्चात् उन्होंने अपना समस्त ध्यान ईश्वर की ओर लगा दिया—

'सब ओर तें ऐंच के कान्ह किसारे मैं,
राखि भलो थिर आस करैं।'

भगवान् कृष्ण के प्रति स्वयं को समर्पित करके वे जैसे समस्त दुःखों से छुटकारा पा गये हैं। अब तो कृष्ण ही गति है, वे ही गति हैं, वे ही उनके स्वामी हैं और सर्वस्व हैं। परमात्मा पर उन्हें इस बात का पूरा भरोसा है, वे उस जैसे गुण-हीन व्यक्ति को सहारा देंगे। उनकी भक्तवत्सलता की यही विशेषता है कि गुण-हीनों को वे अपनी शरण में ले लेते हैं। अतः चातक के समान वे एकटक उनकी कृपा के लिए उन्हें निहार रहे हैं—

तुमही गति हो तुमही मति हो,
तुमही पति हो अति दीनन की।।
नित प्रीति करौं गुनहीनन सौं,
यह रीति सुजान प्रवीनन की।।
बरसौ घनआनन्द जीवन कों,
सरसौं सुधि चातक छीनन की।
मृदु तौ चित के पन पै वृत के,
निधि हो हित के रुचि मीनन की।।

घनानन्द को भगवान् के प्रति उत्कट आसक्ति, गहन आस्था और तीव्र अनुरक्ति है। उनके प्रति घनानन्द का हृदय असीम श्रद्धा से भरा पड़ा है। प्रभु-प्रेम ने उनमें भक्त होने का विश्वास जगा दिया है। (प्रभु का स्मरण उन्होंने हर रूप में किया है— दास बन, सखा बन, पतित बन और परमात्मा को अपना पुत्र मानकर।) भक्ति के यह सब रूप मिलने इस बात का प्रमाण हैं कि भक्त-कवि घनानन्द को

परमात्मा की असीम सत्ता पर विश्वास है और वह इसी कारण उद्धार करने की प्रार्थना करता है। यह धोखे, छल, कपट से भरा हुआ विश्व उसे रास नहीं आया। कृष्ण ही इस माया-मोह से उसे छुटकारा दिलायेंगे। संक्षेप में भगवान् कृष्ण पर उन्होंने अपना असीम अनुराग और अनन्य आस्था को प्रकट किया है।

लौकिक जीवन के प्रति उदासीनता

जैसा कि सर्वविदित है, घनानन्द ने परम-सुन्दरी अलबेली-सुजान से प्रेम किया और उसके तिरस्कार के परिणामस्वरूप दिल्ली नगरी को छोड़कर वृन्दावन में आकर पूर्ण वैराग्य ले लिया। प्रेम का मंत्र उन्होंने सुजान से ही लिया, परन्तु उस मंत्र से जाप राधा-कृष्ण का ही हुआ। डॉ० मनोहरलाल गौड़ ने लिखा है—"घनानन्द के प्रेम का उदय अवश्य सुजान के शरीर से हुआ था, पर उसकी परिणति सुजान (सु + ज्ञान) परमेश्वर में हुई थी।" इनके जीवन का उत्तरांश वैराग्य-परक जीवन का जीता-जागता नमूना है। सुजान के नाम में नर्तकी सुजान के स्थान पर अलौकिक, अपार्थिव सुजान का निवास था। लौकिक स्नेह संबंध की असारता को देख उन्होंने सबसे मुँह मोड़ लिया और 'नंद के नवेले अलबेले छैल' से प्रेम कर बैठे। श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस सम्बन्ध में अपना मत देते हुए लिखा है—"स्वच्छन्द कवियों सूफियों के सम्पर्क से ओटे प्रसाद के कारण कहीं-कहीं रहस्य की झलक भर मिलती है। अपनी भावना में मेल खाती हुई इन कवियों की वृत्ति कृष्ण-भक्ति-भावना में लीन हुई। बात यह थी कि इन कवियों में कई अपने व्यक्तिगत जीवन में प्रेम की स्वीकृति उचित परिमाण में न पाकर उसमें किसी प्रकार की लौकिक बाधा उत्पन्न हो जाने के कारण ये संसार से विरक्ति हो गये × × × अतः इन्होंने सगुण में अपनी स्वच्छन्द वृत्ति लीन की। रसखान और घनानन्द दोनों ने ही प्रेम-मार्ग या भक्ति-मार्ग की इस विशेषता का उत्कीर्त्तन किया।" घनानन्द सभी लौकिक प्राणियों से अपना सम्बन्ध तोड़कर एकमात्र कृष्ण रूपी चन्द्र के चकोर हो गये और भौतिक स्नेह, भौतिक-ऐश्वर्य और धन-धाम आदि की घोर निंदा करते हुए अपनी वैराग्य-भावना का परिचय दिया --

देह सो सनेह सो तो ह्वै है खेह-छिन ही में,
नाते सब हाते परि रहै गो नहीं रे नाम।
फूलै भ्रम भूलै कित झूलै मोह फंदनि तू,
तन को सम्हारै किनि प्रानन के संगी स्याम॥
जागत इ सोवै खोवै समय सो रतन बौरे,
पाय घनआनंद तचै अचेत काम धाम।
आएँ औधि-औसर उसासहू उसरि जै है,
धरेई रहैंगे धनधाम धंधे धूमधाम॥

कई स्थलों पर घनानन्द ने परमतत्त्व का प्रिय के रूप में ध्यान किया है और

उसी ध्यान में उनका ध्यान लौकिक संसार से हट गया है। उसे बादलों की भाँति प्रिय ही सर्वत्र छाया हुआ दीखता है। प्रेमी चातक की भाँति उसी ओर देखता रहता है—

मन जैसे कछु तुम्हें चाहत है, सु बखानियै कैसे सुजान हो हो।
इन प्राननि एक सदा गति रावरे, बावरे लौं लगियै नित लो॥
बुधि औ सुधि नैननि बैननि में, करि बास निरंतर अंतर गो।
उघरो जग छाय रहे घनआनंद, चातक त्यौं तकियै अब तो॥

राधा-कृष्ण के प्रति प्रेम

मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार से निष्कासित होने के उपरान्त घनानन्द वृन्दावन चले आये। वहाँ आकर वे निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये। इस सम्प्रदाय की यह विशेषता है कि इसमें राधा व कृष्ण दोनों के प्रति मधुर-भाव की, उज्ज्वल भाव की भक्ति को सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। इसे इस सम्प्रदाय में युगल-उपासना का नाम दिया गया है और भगवान् कृष्ण की माधुर्य और प्रेम शक्ति राधा की उपासना में ही भक्त अपने जीवन की सार्थकता समझता है। घनानन्द ने सम्भवत: इसी से राधा-कृष्ण के प्रति अपनी गहन आस्था, उत्कट श्रद्धा और असीस विश्वास को प्रकट किया है। उन्होंने स्थान-स्थान पर राधा को अपनी उपासना का केन्द्र बनाया है —

आछी तानहि गाय रिझाऊँ,
रीझि रीझि राधाहि रिझाऊँ।

यमुना की महत्ता भी राधा के अंगों का स्पर्श करने के कारण ही है—

राधा को रस यमुना जानै,
भानु नन्दिनी नातो मानै।
जमुना-हृदय रहत नित राधा,
जमुना लखै टरै भव-बाधा॥

घनानन्द ने राधा व कृष्ण दोनों के प्रति अपनी भक्ति भावना को प्रकट किया है, जो कहीं तो स्वतन्त्र रूप से केवल राधा के गुण-गान में चित्रित हुई है और जिसमें राधा कहीं आराध्य है तो कहीं नायिका के रूप में चित्रित हुई है। ऐसे छन्दों में लौकिकता का आभास होने लगता है क्यों सौंदर्य वर्णन में कवि ने सामान्य नायिका जैसा वर्णन किया है। इसी प्रकार कृष्ण की महानता, उनके सौन्दर्य और भक्तवत्सलता का चित्रण भी अनेक स्थलों पर राधा विहित है। पर अधिकतर संख्या ऐसे छन्दों की है जिनमें युगल-मूर्ति की उपासना को महत्त्व देते हुए ब्रज की रमणीक पृष्ठभूमि चित्रित की गई है—

राधा-रमन की बलि जाऊँ।
गौर स्याम ललाम संपति रमि रहि द्रुम बेलि।
महा अनुपम रूप शोभा लहलहानि रस झेलि॥
आपु बन घन आपु तन मय है रहत निसि भोर।

डॉ० मनोहर लाल गौड़ के अनुसार—"इनकी रचनाओं में या तो ब्रज प्रेम का वर्णन है या फिर श्रीकृष्ण और राधा के मधुर रस का।" राधा का चित्रण कहीं कृष्ण की शक्ति के रूप में किया है तो कहीं स्वयं बहुगुनी नाम रख के राधा की सखी बनकर। एक स्थल पर उन्होंने राधा को पूर्ण युवती के रूप में भी चित्रित किया है—

सारी सुरंग चह चही निपट पहिरैं राधा गोरी।
साँबके बरन गोल कपोलनि हिलिमिलि खिलै॥
झूलै जोबन उमंग रंग बोरी।

घनानन्द का राधा-कृष्ण के प्रति अनेक स्थलों पर, अनेक छन्दों में विविध प्रकार से अभिव्यंजित हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है मानो भक्त-कवि हृदय राधा की प्रशंसा करते हुए अघाता नहीं है। राधा का रूप-चित्रण और राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन करते हुए कवि लिखता है दोनों में इतना प्यार है, कि क्षण भर को भी वे विलग नहीं होते और यदि संयोग से हो जायें तो व्याकुल होकर एक-दूसरे को खोज लेते हैं—

ऐरी रूप अगाधे राधे, राधे राधे राधे राधे।
तेरे मिलिवे को ब्रजमोहन, बहुत जतन है साधे॥
उनके निसि दिन लगी रहै जक तू त धरति पल आधे।
आनन्दघन प्रिय चातक चोंपिन हा राधे आराधे॥

ब्रज प्रदेश के प्रति असीम अनुराग

ब्रज-प्रदेश के प्रति घनानन्द को असीम अनुराग था। दिल्ली से आकर वे बृन्दावन में बस गये, वहीं पर आजीवन रहे। ब्रज की महिमा का गुणगान करने के लिए उन्होंने 'ब्रज-प्रसाद', 'ब्रज-स्वरूप', 'धाम चमत्कार', 'ब्रज-विलास', बृन्दावन-मुद्रा', 'यमुना-यश', 'गोकुल-गीत', गिरि-पूजन', आदि कृतियों का सृजन किया। ब्रज प्रसाद घनानन्द ने अत्यन्त भक्ति-विह्वल भाव में से ब्रज का माहात्म्य गान किया है। ब्रज की प्रशंसा करते हुए वे लिखते हैं कि यह ऐसी भूमि है जहाँ नित्य सुख का सागर हिलोरें लेता रहता है और ब्रज भूमि के चन्द्रमा अर्थात् श्री कृष्ण इधर-उधर डोलते रहते हैं। इस जीवन का यदि कुछ लाभ है तो ब्रज-भूमि के दर्शन में निहित है, जिसे करके भक्त कवि का तन-मन प्रेम से सराबोर हो उठता है। मेरे बड़े ऊँचे भाग्य थे कि मैंने इस जन्म में ब्रज-भूमि का दर्शन पाया है। मैं इसे छोड़कर जाना नहीं चाहता—

यह ब्रज नित सुख सिंधु कलोलै,
ब्रज को चन्द सदा ब्रज डोलै।
आँखिन को सुख ब्रज दरसन है,
आनन्दघन बरसन सरसन है।
अहो भाग यह ब्रज को लखौं,
ब्रज की सींव न कबहूँ नखौं।

घनानंद की मति सोच-सोचकर थक गई है कि वह ब्रज की तुलना किससे करे। वास्तव में समस्त उपमाएँ छोटी पड़ती हैं। अब तो यही होगा कि मैं हर समय ब्रज की लीला भूमि का गुणगान करूँ और प्रिय ब्रज-प्रदेश की बलि जाऊँ।

या ब्रज सों यह ब्रज ही आहि,
ब्रज की बटतर दीजै काहि।
ब्रज वृन्दावन की बलि जैये,
ब्रज वृन्दावन लीला गैयै।
ब्रज बेलनि की कृपा मनैयै,
याही ते ब्रज रज पैयै।

घनानंद के हृदय में ब्रज के प्रति अपार अनुराग है और साथ ही पूज्य भाव भी। जिस ढंग से भक्ति विह्वल होकर वह ब्रज-भूमि का, वहाँ के वन पर्वत का, प्राकृतिक सुषमा का वर्णन करता है, उसे पढ़कर ऐसा लगता है कि हर प्राणी को इस ब्रज-मण्डल में रहना चाहिए। अपने ग्रंथों में उन्होंने ब्रज-मण्डल के रमणीय, मनोहारी वृन्दावन, गोकुल, यमुना, बरसाना, गोकुल की छवि, अगम अगोचर ब्रजरस आदि का वर्णन बड़ी तत्परता से और तन्मयता से किया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं—

(क) ब्रज-बीथिन ब्रज-बागनि फिरौं, छको थकौं ब्रज हेरौं हिरौं ।।
(ख) यह सुख मुख ह्वै को उच्चरै। सुख ही निज सुख बरनन करै ।।
(ग) गैल घाट ब्रज के रसभसे। ब्रजमोहन की लीला लसे ।।
(घ) गोकुल छवि आँखिन ही भावै। रहि न सकै रसना कछु गावै ।।
(च) सब ते अगन अगोचर ब्रजरस। रसना कहि न सकतियाको जस ।।
(छ) तीर-भूमि बनि रह्यौ सदा बन। जै जमुना जै जै वृन्दावन ।।
(ज) रूप माधुरी पीवत ध्यावत। ब्रज-जीवन यों जीव जिवावत ।।

ब्रज-महात्म्य पर घनानन्द ने बहुत-कुछ लिखा। भक्त हृदय को ब्रज में आकर शान्ति मिली और ब्रज की महिमा का वर्णन करके उसने अपनी लेखनी के भाग्य को सराहा। राधा-कृष्ण के प्रति असीम अनुराग का ही यह परिणाम था कि ब्रज-भूमि की प्रशंसा करते वे अघाते न थे और थकते भी क्यों? यह तो उनके परम-प्रिय युगल सरकार राधा-कृष्ण का धाम जो था।

अलौकिक भावाभिव्यक्ति

घनानन्द के काव्य में भक्ति के प्राय: सभी रूप मिल जाते हैं। परमात्मा को प्रेम करने के लिए पाँच दिव्य भाव माने गये हैं—वात्सल्य सख्य, दास्य, दाम्पत्य एवं शान्त। जहाँ प्रभु को पुत्र अथवा अपनी सन्तान मानकर प्रेम किया जाय, वहाँ वात्सल्य भक्ति प्रभु को सखा मानकर भजा जाय तो सख्य भक्ति, जहाँ उन्हें अपना स्वामी मान कर और स्वयं को उनका दास कहकर भक्ति की जाय, वहाँ दास्य भक्ति और जहाँ

उन्हें अपना प्रिय पति मानकर दिव्य भाव प्रकट किये जायें वहाँ दाम्पत्य-भाव की भक्ति और जहाँ ईश्वर को सर्वव्यापक तथा सच्चिदानन्द कहकर परम आसक्ति प्रकट की जाय वहाँ शांति भाव की भक्ति होती है। घनानन्द के भक्तिपरक काव्य में लगभग सभी दिव्य भावों की अभिव्यक्ति मिलती है, परन्तु इन सब में वे मधुरा-भक्ति अर्थात् दाम्पत्य भाव के प्रति अधिक आकृष्ट लगते हैं। अतः जिस परिमाण में उन्होंने दाम्पत्य भाव को अभिव्यक्त किया है, अन्य को नहीं। वात्सल्य-भाव से प्रेरित होकर कवि का भक्त-हृदय कह उठता है—

नन सुकुमार बेस मनमोहन ब्रज जन-जीवन प्रान।
ऐसे सुत को मुखहि सपूती देती पयोधर-प्रान॥
सुसकत पियत जियत अरु ज्यावत जननी जिय आधार।
प्रबल मोह की उमंग-तरंगिनि द्रवित दूध की धार॥

सख्य भाव की भक्ति में वे साधिकार अपने कृष्ण को अपने पास बुलाते हैं—

आंवी ओ आंवी मंडे कोल।
तैंडे नाल जिन्द लगी मुझ वो निमाणी दें, मान गुमाणी—
कवी तो हम हँस हँस बोल॥
सांवलि सूरत पर घोल घोल छवी बंदी हां बिन मोल।
प्रान पपीहों दे आनन्दघन दिल दी घुंडी खोल॥

दास्य भाव में दैन्य की प्रधानता होती है। घनानंद अपने दैन्य को प्रकट करते हुए कहते हैं—

भूले-भरे की सुरति करो।
अपनी गुननिधानता उर-धरि मो अनेक औगुन बिसरो॥
या असोच को सोच कीजियै हा हा ही हरि सुढर ढरो।
कृपाकन्द आनन्दकन्द हो पतित पपीहा तपति हरो॥

शान्त-भाव में भक्ति और ज्ञान की प्रधानता रहती है। 'भक्त' प्रभु को सम्पूर्ण चराचर में सर्वव्यापक देखता है और उन्हें पाने का प्रयत्न करता है। घनानन्द ने भी व्यग्र होकर भगवान् को पुकारा है—

अन्तर हो किधौं अन्त रहो दृग फारि फिरौं कि अभागिनी भीरौं।
आगि जरौं अकि पानि परौं अब कैसी करौं हिय का बिधि धीरौं॥
जो घनआनन्द ऐसी रुचि तो कहा बस है अहो प्राननि पीरौं॥
पाऊँ कहाँ करि हाय तुम्हें, धरती में धसौं कि आकसहि चीरौं॥

दाम्पत्य भाव की भक्ति ही 'मधुरा-भक्ति' कहलाती है। इसमें भक्त भगवान् को पति मानकर प्रेम से उपासन करता है। घनानन्द ने इस भाव के अन्तर्गत राधा-कृष्ण की युगल-उपासना की है—

ऐरी रूप अगाधे राधे, राधे राधे राधे राधे।
तेरे मिलिवे को ब्रजमोहन, बहुत जतन है साधे॥

कृष्ण के वियोग में तड़पती हुई आत्मा का चित्रण बहुत सुन्दर है। जहाँ कृष्ण के विरह में आत्मा रात-दिन घुटती रहती है—

रैन दिना घुटिबो करें प्रान झरें अँखियाँ दुखियाँ झरना सी।
प्रीतम की सुधि अन्तर में कसकें सखि ज्यौं पसरीन मैं गाँसी॥

निर्गुण सन्तों का प्रभाव

घनानंद की भक्ति की आलोचना करते हुए विद्वानों ने विभिन्न मत व्यक्त किये हैं। कुछ के अनुसार वे निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित थे। अन्य उन्हें सूफी धारा से प्रभावित मानते हैं। घनानन्द पर निर्गुण सन्तों का प्रभाव कहीं-कहीं अवश्य लक्षित होता है। वैसे तो वे राधा-कृष्ण की सगुण मूर्ति के उपासक थे, परन्तु विरह में साधना करते हुए उन्होंने कुछ इस प्रकार के पद्य लिखे हैं, जिनमें निर्गुण भक्ति शाखा का प्रभाव लक्षित होता है। श्री शम्भू प्रसाद बहुगुना ने घनानन्द को कबीर और नानक की परम्परा में स्थान दिया है। निम्न पद्य में यह प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है—

आयु जो वायु तौ धूरि सबै सुख जीवन मूरि सम्हारत क्यों नहीं।
ताहि महागति तोहि कहा गति बैठे बनैगी बिचारत क्यों नहीं॥
नैमनि संग फिरै भटक्यो पल मूंद्रि सरूप निहारत क्यों नहीं।
स्याम-सुजान-कृपा-घनआनन्द प्रान पपीहनि पारति क्यों नहीं॥

लेकिन कुछ छन्दों के आधार पर उन्हें निर्गुण सम्प्रदाय के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। समग्रत: वे सगुण भक्त हैं। राधा-कृष्ण की युगल जोड़ी की उपासना उनका लक्ष्य है और सुजान नाम को उन्होंने राधा-कृष्ण में मिला दिया है। वास्तव में उनका सम्बन्ध वैष्णव भक्ति से ही है।

घनानन्द पर सूफी-प्रभाव

घनानन्द पर निर्गुण भक्ति का प्रभाव सूफी प्रभाव की तुलना में बहुत कम है। वास्तव में यदि किसी विदेशी परम्परा को उन्होने ग्रहण किया है तो वह 'सूफी' ही है। उनकी इश्कलता पूर्ण रूप से सूफी प्रभाव से प्रभावित है। सूफी भाव में आत्मा पुरुष है और परमात्मा स्त्री -इस दार्शनिक विपर्यय को तो उन्होंने अस्वीकार किया परन्तु आत्मा की तड़प, बेचैनी, व्यग्रता, अन्तर की टीस, चोट आदि जो सूफी काव्य-धारा में विरह-गत प्रमुख विशेषताएँ हैं, उनको घनानन्द ने सहर्ष स्वीकार किया। 'वियोगबेलि' और 'इश्कलता' में यह फारसी प्रभाव की झलक यत्र-तत्र मिलती है—

लिखौं कैसे पियारे प्रेम पाती। लगं असुंवन झरि हैं टूक छाती।
दसा है अटपटी पिय आय देखो। न देखो तो परेखो है परेखो॥

सूफी काव्य धारा में माशूक का बेदरद होना, उसके आँखों के तीर से घायल होना, हृदय पर दिलजान द्वारा छुरे चलाना, आरी से कटना, कलेजे को चीरना, रक्त के आँसू बहाना आदि व्यापारों का वर्णन प्रमुख होता है। घनानन्द ने कहीं तो प्रिय को यार कह कर सम्बोधित किया है और कहा है कि वह उसे क्यों इस कदर तरसा रहा है—

दिल पसन्द दिलदार यार तू मजनूं को तरसांदा है।
रत्ति विहाड़े तलब तुसाडी अक्कल इलम उड़ांदा है।
× × ×
आस लगी अँखियां नू यारा दीजै झांकी प्यारी है।
महर लहर ब्रजचन्द यार दी जिंद असाडी जारी है॥

—इश्कलता

विरह की पीड़ा को दिखलाते हुए इस शैली का व्यवहार घनानंद ने किया है, जिसमें विरह का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन हुआ है जैसे—

(क) पाती मधि छाती-छत लिखि न लिखाये जाँहि,
काती लै विरह छाती कीने जैसे हाल हैं।
आँगुरी बहकि तहिं पाँगुरी किलकि होति,
ताती राती दसनि के जाल ज्वाल माल हैं॥

(ख) विरहा रवि सों घट व्योम तच्यौ,
बिजुरी सो खिचैं इकलो छतियां।
नित सावन दीठि सु बैठक में,
टपकै बरुनी तिहिं ओलतियां॥

सूफी और फारसी काव्य धारा से घनानन्द ने 'प्रेम की पीर' का प्रभाव ग्रहण किया। सूफियों की प्रेम-भावना की मूल विशेषता है, लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम के उच्चतर सोपान पर पहुँचना—इश्क मजाजी द्वारा इश्क हकीकी की उपलब्धि का सिद्धान्त घनानन्द पर पूरी तरह से लागू होता है।

घनानन्द भक्त अथवा शृंगारी

घनानन्द रीतिकाल की रीतिमुक्त धारा के शिरोमणि कवि हैं। रीतिकाल में काव्य का प्रधान विषय प्रेम रहा और प्रमुख रस शृंगार। मज़ेदार बात यह है कि शृंगार की अभिव्यक्ति के लिये सामान्य नायक और नायिका की रति को चित्रित करने के स्थान पर कवियों ने भक्तिकालीन राधा-कृष्ण का प्रयोग किया। केशव ने तो साफ ही कह दिया—

'आगे की सुकवि रीझिहैं तो कविताई,
न तो राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।'

राधा-कृष्ण छाप श्रृंगार काव्य परिमाण में इतना मिलता है कि उसकी तुलना में भक्ति और नीति और वीर-परक काव्य-कृतियां नगण्य-सी लगती हैं। बिहारी हों या घनानंद अथवा अन्य प्रख्यात कवि – सबके कृतित्व पर भक्ति के नाम पर प्रश्नचिह्न लगा हुआ मिलता है। अभी तक इस विषय में आलोचक एकमत नहीं हो पाये कि घनानन्द पूर्णतः भक्त कवि हैं अथवा विशुद्ध श्रृंगारिक कवि। इस विवाद का मुख्य कारण कृष्ण काव्य की मूल-चेतना को लेकर है। यहाँ हमारे सामने तीन प्रमुख समस्याएं हैं। १. इस काव्य की अन्तःधारा भक्ति है, २. भक्ति होते हुए भी इसमें श्रृंगार की प्रधानता है, ३. राधा कृष्ण कृष्ण काव्य धारा में सामान्य नर और नारी के प्रतीक हैं। कृष्ण काव्य की इन तीन परिसीमाओं को दृष्टि में रखकर देखा जा सकता है कि अमुक कवि भक्त कवि है अथवा श्रृंगारी कवि।

घनानन्द के व्यक्तिगत जीवन को देखते हुए उनकी जीवनगत परिस्थितियों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। उनके जीवन का पूर्वार्ध सुजान नामक वेश्या के प्रेम, रूप सौन्दर्य में बीता, लेकिन मुहम्मदशाह रंगीले द्वारा दरबार से निष्कासित किये जाने पर वे वृन्दावन चले गये और वहाँ जाकर निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये। इस प्रकार सुजान की प्रेम-परक पीड़ा को राधा-कृष्ण के प्रेम में डुबो दिया। वाल्मीकि और तुलसी की भाँति उनका प्रेम भी साहित्य में अमर हो गया। घनानंद की राधा-कृष्ण के प्रति इतनी तीव्र आसक्ति थी कि उनके भक्ति सम्बन्धी पद किसी भी तरह सूर से कम नहीं बैठते। वात्सल्य में वही लाड़, दैन्य में वही घिघियाता हुआ भक्त-हृदय और सखा-भाव में पूर्ण अधिकार से भगवान् के सान्निध्य की कामना। वे वास्तव में भक्त हैं अथवा श्रृंगारी कवि—विद्वानों के मत इस प्रकार हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखा है, "वह दरबार से निकाले जाने के उपरांत वैराग्य धारण करके वृन्दावन आये और निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव हो गये और वहीं पूर्ण विरक्त भाव से जीवन-यापन करने लगे। उन्होंने अपनी कविताओं में बराबर सुजान को सम्बोधित किया है, जो श्रृंगार में नायक के लिए और भक्ति भाव में भगवान् कृष्ण के लिए प्रयुक्त मानना चाहिये। कहते हैं इन्हें अपनी पूर्व प्रेयसी सुजान का नाम इतना प्रिय था कि विरक्त होने पर भी इन्होंने इसे नहीं छोड़ा। यद्यपि अपने पिछले जीवन में घनानन्द विरक्त-भाव से वृन्दावन जा रहे, पर इनकी अधिकांश कविता भक्ति काव्य की कोटि में नहीं आयेगी, श्रृंगार की ही कही जायगी। लौकिक प्रेम की दीक्षा पाकर ही यह पीछे भगवत् प्रेम में लीन हुए।" डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा ने लिखा है—"घनानंद प्रेमी होने के साथ-साथ उच्चकोटि के भक्त भी थे। यह भक्ति उनके उत्तरकालीन जीवन में परिस्थितियों की विवशता के कारण आई। प्रेम ही उनके जीवन का सर्वस्व था, परन्तु उस क्षेत्र में अपार नैराश्य और कोरे अन्धकार ने कालान्तर में उनके जीवन की धारा ही मोड़ दी थी। वियोग और क्लेश

के आतिशय्य से घनानंद में जगह-जगह वैराग्य का भाव पाया जाता है × × × × वह अन्तिम समय में निराश हो भगवदोन्मुख हो गया अवश्य लगता है।'

श्री परशुराम चतुर्वेदी ने घनानंद की भावाभिव्यक्ति को भक्त तथा श्रृंगारी दोनों कहा है। वे लिखते हैं—"घनानंद की पुस्तकों को देखने और उन पर विचार करने से कवि का परिचय हमें एक सच्चे प्रेमी और भक्त कवि के रूप में मिलता है।" आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है—"अन्त में ये वृन्दावन चले गये और निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये पर 'सुजान' नाम इन्होंने कभी नहीं त्यागा। भगवद्-भक्ति में इस शब्द का व्यवहार श्रीकृष्ण और राधिका के लिए अपनी रचना में बराबर करते रहे। × × × उन्हें शुद्ध भक्त न मानकर प्रेमोमंग का कवि मानना चाहिए। रीतिबद्ध बिहारी निम्बार्क (राधा-तत्त्व-प्रधान) सम्प्रदाय में ही दीक्षित थे। अपनी सतसई में राधा से बाधाहरण की प्रार्थना करके उन्होंने अपना सम्प्रदाय व्यक्त कर दिया है। पर वे भक्तों की श्रेणी में नहीं बैठाये गये। इसका कारण यही है कि उनकी रचना भक्त कवियों की-सी नहीं है। घनानंद ने अन्त में भक्ति सम्प्रदाय में दीक्षा ले ली थी, पर लौकिक प्रेम सुजान का नाम ये भूल न सके।" डॉ० मनोहर लाल ने इनके प्रेम तत्त्व की चर्चा करते हुए 'भौतिक प्रेम का आध्यात्मिक प्रेम में विकास' कहकर अतीन्द्रिय सौन्दर्य के रहस्यमय संकेतों के विद्यमान की बात कही है। प्रेम का प्रारम्भिक रूप शारीरिक है। डॉ० मनोहर लाल गौड़ का कथन भी इनके श्रृंगारी रूप पर ही अधिक बल देता है।" डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी घनानंद की गणना भक्त कवियों में की है। द्विवेदी जी के समान डॉ० सावित्री सिन्हा ने अपने शोधप्रबन्ध में घनानंद को भक्त कवि माना है, श्रृंगारी नहीं। डॉ० ओमप्रकाश ने घनानन्द के काव्य की आलोचना करते हुए अपनी पुस्तक हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य में लिखा है—"घनानन्द के ऐतिहासिक व्यक्तित्व पर विचार न किया जाय तो उनके साहित्य में उनके जीवन के दो रूप हैं, क्योंकि उनमें कालक्रम का सम्बन्ध है, इसीलिए उनको पूर्वांश तथा उत्तरांश कहा जा सकता है। साहित्यिक जीवन के पूर्वांश में कवि का हृदय सांसारिक प्रेम में असफल होकर उसकी टीस से तड़पता, बिलबिलाता हुआ करुण क्रन्दन कर रहा था। साहित्यिकों की दृष्टि से प्रेम की पीड़ा का यही काव्य घनानंद को श्रृंगारी फुटकल कवियों का मुकुटमणि सिद्ध कर देता है।"

उपर्युक्त आलोचकों के मतों से एक बात तो स्पष्ट है कि घनानन्द के काव्य की मूल प्रेरक शक्ति सुजान ही है। उसी के प्रेम में वे जीवन-पर्यन्त लगे रहे, उसी के विरह में तड़पते रहे और वृन्दावन जाकर भी सम्प्रदाय में दीक्षा के उपरान्त भी वे सुजान को भुला न सके। उनका मूल स्वर विरह का रहा। प्रेम के उस उदात्त, निर्मल रूप को सहज ही आध्यात्मिक रंग प्रदान किया जा सकता है। सुजान के मिलन की आशा अंतिम समय तक उनके साथ लगी रही। निम्न छन्द में—

बहुत दिनानि की अवधि आस पास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जानि कों।

अधर लगे हैं आनि करि कै पयान प्रान,
चाहत चलन ये संदेसो लै सुजान को।

घनानन्द स्वच्छन्द धारा के कवि हैं। प्रेम के क्षेत्र में जो स्वच्छन्दता उन्होंने दिखाई वही भक्ति के क्षेत्र में भी है। स्वच्छन्द होने से ही उनका प्रेम व भक्ति किसी भी सीमा में बंधी हुई नहीं है। जीवन के उत्तरांश में उनका लौकिक प्रेम विकसित होकर पारदर्शी आध्यात्मिक प्रेम में परिवर्तित हो गया। उस रूप में उसे सृष्टि के प्रत्येक कण में भगवान के दर्शन होने लगे। आंतरिकता की भक्ति का सर्वप्रमुख गुण है। जिस प्रकार आत्मविभोर होकर उन्होंने सुजान के रूप का चित्रण किया, संयोग-वियोग की पीड़ा को चित्रित किया, उसी प्रकार भक्ति में भी उनकी भावात्मकता स्पष्ट लक्षित होती है—

अन्तर मैं बासी पै प्रवासी कौ सो अन्तर है,
मेरी न सुनत दैया अपनीयौ न कहौ।
लोचननि तारे ह्वै सुझावौ सब सूझौ नाहिं
बूझो न परति ऐसे सोचनि कहा दहौ।
हौ तौ जानराय जाने जाहु न अजान यातें,
आनंद घन के छाय छाय उघरे रहौ।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि घनानन्द प्रमुख रूप से एक शृंगारी कवि ठहरते हैं। उनका प्रमुख वर्ण्य शृंगार है, जिसकी प्रेरणा सुजान है। जीवन के जो अधिकांश वर्ष उन्होंने काव्य-रचना में बिताये, उसको दो भागों में विभाजित किया जा सकता है - १. सुजान के साथ संयोग के समय रची गई शृंगारपरक रचनाएं, २. सुजान से वियुक्त होकर उसके विरह में व्याकुल होकर लिखा गया विरह काव्य। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने भक्तिपरक काव्य का सृजन भी किया, परन्तु वह भक्ति तो एक प्रतिक्रिया मात्र थी। यह एक साधारण-सी बात है कि प्रेम में पगा हुआ प्रेमी-हृदय अपने प्रिय पात्र से वियुक्त हुआ, तो जैसे आसमान से गिर पड़ा। कहाँ तो वह संयोग सुख—जब उसे हार भी पहार लगते थे और कहाँ दैव का घोर कठोर न्याय या कहना चाहिये अन्याय कि बीच में 'पहार' आ पड़े। प्रेमी को संभलने में कुछ समय तो लगा ही होगा। यह तो हो ही नहीं सकता कि उधर सुजान ने तिरस्कार किया और इधर वे निम्बार्क-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये। कुछ वर्ष वे सुजान के विरह में तड़पते रहे। जीवन के कुछ अंतिम वर्षों में उन्होंने अपने प्रेम को कृष्णार्पित कर दिया और हरि-लीला में खो गये। इस प्रकार उनके जीवन का तीन भाग सुजान-प्रेम में बीता और एक भाग—अंतिम भाग भगवद् प्रेम में। यह बात उनके काव्य के परिमाण से भी सिद्ध होती है। यदि उनके सम्पूर्ण कृतित्व को देखा जाय, तो हिन्दी साहित्य में उनकी ख्याति का कारण उनका शृंगारपरक काव्य ही है—भक्तिपरक नहीं। यदि उन्होंने केवल भक्ति काव्य ही लिखा होता, तो सम्भवतः

उन्हें खोज से ही जाना जाता, परन्तु—

रीझ सुजान सची पटरानी, बची बुद्धि बावरी ह्वै करि दासी।

तथा

अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।

अनेक प्रसिद्ध पंक्तियों ने उन्हें हिन्दी साहित्य का वह चमकता हुआ सितारा बना दिया, जो आभा में ध्रुव है—सबसे अलग है। अतः घनानन्द का काव्य प्रेम रस से ओत-प्रोत शृंगार काव्य है और वे भक्त की अपेक्षा शृंगारी कवि ही अधिक ठहरते हैं।

८ घनानन्द और काव्य-शिल्प

रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा के अग्रगण्य कवि घनानन्द के काव्य में अनुभूति और अभिव्यक्ति— दोनों स्तर पर लीक से हटकर चलने की परम्परा स्पष्ट लक्षित होती है। उनकी कविता उनके व्यक्तित्व से पूर्णत: मेल खाती है। उनका कथन —

'लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।'

उनके सम्पूर्ण काव्य पर घटित होता है। कविता हृदय की स्वाभाविक भावनाओं का सहज उच्छलन है। उसे उसी रूप में कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त करने में ही कलाकार की सफलता है। घनानन्द ने जैसा देखा, अनुभव किया—उसे उसी रूप में अभिव्यक्त कर दिया।

काव्य-शिल्प की दृष्टि से यदि घनानन्द के काव्य का आकलन किया जाय, तो सर्वप्रथम दृष्टि भाषा पर जाती है। रीतियुग ब्रजभाषा के परिमार्जन का युग रहा। इस समय ब्रजभाषा की कलात्मकता अपेक्षाकृत अधिक हो गई थी। उसमें जो मार्मिकता, लाक्षणिकता और भावप्रवणता है, वह अपने युग की विशेष देन मानी जानी चाहिये – इसे शुक्लजी ने भी स्वीकार किया है। घनानन्द को विरासत में विकसित ब्रजभाषा मिली। अतः उन्होंने पूर्ण साहित्कि ब्रजभाषा का प्रयोग किया। सूर यदि ब्रजभाषा का वाल्मीकि कहा जाता है, तो घनानन्द सहज ही इसके कालिदास या माघ कहे जा सकते हैं। तत्कालीन स्वीकृत काव्य-भाषा का अत्यन्त साफ-सुथरा और प्रांजल रूप हमारे समक्ष घनानन्द ने प्रस्तुत किया। डॉ० रामफेर त्रिपाठी के शब्दों में—"उस (भाषा) में क्या नहीं था—वह साहित्यिक, लाक्षणिक, रसानुकूल, व्याकरणिक, व्यवस्थानुकूल, संगीतात्मक, ध्वन्यात्मक, मुहावरे एवं लोकोक्तियों से भरी कोमल, सरस तथा सजीव थी।"

इस प्रकार साहित्यिक भाषा में जितने गुण होने चाहिये, कविता की भाषा की समृद्धि के समस्त उपकरण घनानन्द की काव्य-भाषा में मिलते हैं। वे भाव और कला के धनी थे। प्रायः देखा जाता है कि अनेक कवियों के पास विचारों का अत्यन्त

समुन्नत खजाना होता है, पर भाषा के अभाव में वह खर्च नहीं हो पाता। दूसरी ओर कुछ कवि ऐसे भी होते हैं, जो साधारण-सी बात को अपनी सुन्दर और सशक्त भाषा में लिखकर अमर हो जाते हैं। कबीर इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। उन्होंने तो 'मसि कागद' भी नहीं छुआ और साहित्य-जगत् को वे अमूल्य रत्न प्रदान कर गये, जिनके कारण साहित्य असंख्य काल तक उनका आभारी रहेगा।

घनानन्द की काव्य-भाषा ब्रज थी। ब्रजभाषा में उनसे पूर्व अनेक महारथी रीतिबद्ध और रीति सिद्ध 'रीति' में काव्य-रचना कर चुके थे। इसके बावजूद भी उनकी रचनाओं में वह लालित्य मिलता है, ऐसी मधुरता घुली हुई है, जो उनके पूर्व नहीं मिली। घनानन्द के प्रशस्तिकार 'ब्रजनाथ' ने उनके सम्पूर्ण काव्य का अत्यन्त सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए लिखा है—

नेही महा ब्रजभाषा प्रवीण औ सुन्दर तानि के भेद कों जानै।
जोग-वियोग की रीति मैं कोविद भावना भेद स्वरूप को ठानै।
चाह के रंग मैं भीज्यौ हियो, बिछुरें-मिलें प्रीतम सांति न मानै।
भाषा-प्रवीन सुछन्द सदा रहै, सो घन जी के कवित्त बखानै।

'ब्रजनाथ' का उपर्युक्त पद्य घनानन्द के काव्य की लगभग समस्त विशेषताओं को अपने में समेट लेता है। घनानन्द ऐसे 'नेही' थे, जो सर्वप्रथम तो ब्रजभाषा में पारंगत थे। इसी से सरसता की धारा उनके काव्य में आद्योपान्त प्रवाहित लक्षित होती है। नई-नई भाव-भंगिमाओं द्वारा उन्होंने ब्रजभाषा का जो रूप सजाया, वह असाधारण और अद्वितीय जान पड़ता है। डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने घनानन्द की काव्य-भाषा की आलोचना करते हुए लिखा है—'घनानन्द का भाषा पर इतना अधिकार दिखाई पड़ता है कि वह कवि की वशवर्तिनी होकर उनके इशारे पर नाचती है, उनके कहने पर चलती है और उनके आदेश पर कार्य करती है। ऐसा जान पड़ता है कि घनानन्द ब्रजभाषा की नाड़ी को पहचानते थे, उसके निश्चित प्रयोगों को जानते थे और उसकी नस-नस से परिचित थे। इसीलिए घनानन्द ने बड़ी स्वच्छता और सुन्दरता के साथ ब्रजभाषा का प्रयोग किया है, उसके एक-एक शब्द की स्थापना की है और उसे अपने अभीष्ट लक्ष्य की पूर्ति के लिये गति प्रदान की है। ब्रजभाषा पर ऐसा असाधारण अधिकार अन्य किसी हिन्दी कवि का दिखाई नहीं देता। घनानन्द की भाषा प्राकृतया साफ-सुथरी और अत्यन्त निखरी है तथा उसमें भावों के निरूपण की अनन्त शक्ति भरी हुई है।"

घनानन्द की प्रमुख भाषा ब्रजभाषा है। ब्रजभाषा के ठेठ रूपों का प्रयोग उन्होंने काव्य में किया। परन्तु इसके साथ-ही-साथ अन्य भाषाओं के शब्द भी उसमें मिलते हैं। जैसे पंजाबी, अरबी, राजस्थानी, खड़ीबोली, संस्कृत आदि। इसका कारण उनका भाषाप्रवीण होना है। विभिन्न भाषाओं के शब्द-समूह के आ जाने से उनकी भाषा में कोई दोष नहीं आया अपितु इससे उनकी भाषा और अधिक समृद्ध हो गई है।

घनानन्द की भाषा का स्वरूप साहित्यिक होते हुए भी ठेठ ब्रजभाषा के शब्दों से युक्त है। ब्रज में बहुत काल तक रहने के कारण ही उनकी भाषा पर ठेठ ब्रज का भी प्रभाव पड़ा। ऐसे अनेक शब्द हैं जैसे औटपाय (उपद्रव), आवस (भाप), औंड (गहरी), सल (पर्ता), सहारि (सहारे से), तेह (क्रोध), दुहेली (दुःखपूर्ण), आवरो (व्याकुल), औपचारयौ (मनमानी), न्यार (चारा), सौंज (सामग्री), डेल (ढेला), सर्‌यो (चुक गया), भभक (ज्वाला), हेली (खेल करने वाले), भोयौ (भीगा हुआ), गुरझिन (गाँठ), अगिलाई (अग्नि-दाह)। ब्रजभाषा के इन ठेठ शब्दों से उनकी काव्य-भाषा अत्यन्त समृद्ध हो उठी।

ब्रजभाषा के ठठ रूप के साथ ही घनानन्द ने नये और अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया है जैसे—ऊक (लुक), गादरौ (शिथिल), अंगेट, सौनि (कुंदन का लाल वर्ण), विरचें (विमुख होना), दिनदानी, भकभूर, अवलोकिवें, कोंवरे (कोमल), हटतार (एकटक देखने की प्रवृत्ति, सिलसिला अथवा हठपूर्वक दृष्टि बाँध कर देखना), रयौ (लीन होना), चाड़ (इस शब्द का प्रयोग बहुतायतन से हुआ है अर्थ है उत्कण्ठा), उखिल (अपरिचित), मरक (सिंचाव), बहीर (सेना का सामान), अतन-अलात (कामदेव का अलात-चक्र), इकों से (अकेले), तवै (तपना), सवादिली (स्वादिष्ट), निरौठी (मस्त), उलाहू (उल्लास), गहर (गहराई) इत्यादि।

भाषा-प्रवीण घनानन्द ने संस्कृत के तत्सम भी खूब प्रयोग किये हैं—मीन, पंकज, खंजन, प्राण, विष, कुंज, कुरंग, मलय, विभाकर, हृदय, अर्क। संस्कृत शब्दों की संख्या तद्भव शब्दों से अपेक्षाकृत कम हैं। घनानन्द ने अपने काव्य में सर्वाधिक प्रयोग तद्भव शब्दों का किया है। कुछ शब्द इस प्रकार हैं—जतन, निसि, दिनेश, कटाच्छ, ईछन-तीछन, निसान, ससी, छिनकौ नेह नदी, विरह, सजीवन, मूरत, तपति, उसांस, उचारियां, फंदनि, सुखानि, सुमिरैं, सुदेशु, सुख-रासि, राति, मसाल, दसनि, पाती, प्रकास, जूरे, बिसासी, सदई, पन-सिंधु, निरदई व इत्यादि। अरबी-फारसी के शब्दों को देखा जाय तो उनकी संख्या भी कम नहीं। घनानन्द मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार के मीरमुंशी थे। इस कारण फारसी साहित्य का और अरबी भाषा का उन्हें गम्भीर ज्ञान था। तत्कालीन दरबार का शाही कामकाज इसी भाषा में होता था। उनकी भाषा में इन शब्दों के आने का यही कारण है। अरबी और फारसी शब्दों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—यार, हुस्न, चस्का, दिलदार, मजनूं हुकम, आशिक, इश्क तथा इस्क, बेदरद, कमाने-तीर, चेपीर, चस्मौं, दिलपसन्द, दिलदार यार, महर लहर, खुशी, तलब, तरसौंदा, कहर, दुसाला, इश्कमजाजी, हक्क, शराबी, दरदबन्द, दिलराजी, कहर, जरद, फुर, नशा, पाक, चस्मदा, सैन-कटारी, चश्म, मारू, भादा, छेद, दिल-दर्द, चिमन, चमन, तकसीर, तकदीर, तदबीर, बेनिसाफ आदि शब्द विशेष उल्लेखनीय हैं।

तत्सम, तद्भव, ब्रजभाषा का ठेठ रूप, नये और अप्रचलित शब्दों तथा अरबी-

फारसी भाषा के चुने हुए शब्दों से जहाँ घनानन्द ने अपनी भाषा को समृद्ध किया, वहीं उनकी काव्य-भाषा पंजाबी शब्द-समूह को भी अपने में समाहित किये हुए है जैसे लेंदा, सोहणां, गल्ला, जिन्द, असाड़ी, तुसाड़ी, नाल, दिन, दिहाड़े, कीता, जाणदा, हिक, हुण, तैनु-वेखाँ, किस्थे, इन्नाड़ूँ, नूँ, लग्या, करद, छोलियै, निमाणी, बेदरद आदि।

घनानन्द के शब्द-भंडार की आलोचना से एक बात तो एकदम स्पष्ट हो जाती है कि इन्हें भाषा का पूरा ज्ञान था। ज्ञान होना और समझकर तथा सँभलकर उसका प्रयोग करना दूसरी बात है। घनानन्द ने इस बारीकी को खूब समझा और हर एक शब्द को इस आभूषण में जड़े नगीने की तरह अपने काव्य में सजाया। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

ठेठ ब्रज-भाषा

अति सूधो सनेह को मारग है,
जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपुन पौ,
झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं॥
घनआनन्द प्यारे सुजान सुनो,
यहाँ एक ते दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो लला,
मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥

नये और अप्रचलित शब्द

(क) अनखि चढ़े अनोखी चित्त चढ़ि उतरै न,
मन-मग मूँदै जाको बेह सब ओर तें।
कोंवरी सुठौन कौन रंग भीनी हौं न जानौ,
लाड़नि सु लसि हुलसति मति चोर तें॥

(ख) ताकें तो उदर घनआनंद सुजान प्यारो,
ओछी उपलाल को गह्वर ओरे लौं गरै।

(ग) रातें तरवानि तरें चूरे चोप-चाड़-पूरे,
पाँवड़े लौ प्रान रीझि है कनावड़े गिरें।

संस्कृत के तत्सम शब्द

खंजन ऐसे कहा मनरंजन,
मीननि लेखौं कहा सरवार सौं।
कंजनि लाज को लेस नहीं,
मृग रुखे, सने ये सनेह के सार सौं॥
भौतिन के ये पानिप-जोतिन,
बार जिवाई न जानत मार सौं।

मीत सुजान सिरावत तो दृग हैं,
घनआनंद रंग अपार सों ॥

तद्भव शब्द

अन्तर-आंच उसास तचै अति,
अंग उसीजै उदेग की आवस।
ज्यौं कहलाय मसोननि उमस,
क्यों हूँ सु धरै नहीं ध्यावस ॥
नैनउ धारि विये बरसै,
घनआनंद छाई अनोखियै पावस।
जीवन मूरति जान को आनन,
है बिन हेरे सदाई अमावस ॥

अरबी-फारसी के शब्द

यारां गोकुलचन्द सलोने दिया चस्मदा धक्का है।
ढोरि दिया घनआनंद जानी हुसन सराबी पक्का है ॥
सैन-कटारी आसिक-उर पर तैं यारा झुक झारी है।
महर-लहर ब्रजचन्द यार दी जिंद असाडा ज्यारी है ॥

पंजाबी शब्द

(क) मुरली वाले ने असाडा दिल लीता नी।
रत्त-दिहाड़े किथाई न लगदा की जाणां क्या कीत्ता नी।
सांवली सूरति भाँभो 'अक्खीं' डाढा चेटक बीता नी।
आनंदघन बल होया पपीहा इस्क पियाला पीता नी ॥
(ख) दिलपसन्द दिलदार यार तूं मजनूं की तरसांदा है।
रत्ति-दिहाड़े तलब तुसाडी अक्कल इलम उडांदा है ॥

घनानंद की भाषा में लय और पद-संघटना

घनानन्द का सम्पूर्ण काव्य ब्रजभाषा में लिखा हुआ है। ब्रजभाषा की प्रमुख विशेषता है—कोमल-कान्त-पदावली और मसृणता। अपनी कविता की भाषा को कवि ने इस गुण से पूरी तरह समृद्ध किया है। कवित्त और सवैयों की मधुरता का कारण कोमल वर्ण-योजना है। प्रसिद्ध है कि घनानन्द एक बहुत अच्छे संगीतज्ञ थे। इसी संगीत के कारण ही उन्हें घर से बेघर होना पड़ा और अपनी जान सुजान से भी वे हाथ धो बैठे। संगीतकार होने के कारण वे प्रत्येक वर्ण के प्रयोग को, उसके वजन को पहचानते थे। इसी से उनके काव्य में स्वर-लालित्य अप्रतिम हो उठा है। साधारण-से-साधारण कवित्त भाषा के मर्म को पहचान पाने से अपने आप में विशेष है। ब्रजभाषा की मधुर पद-संघटना की दृष्टि से यह छन्द—

ऐरी बीर पौन, तेरो सब ओर गौर, बीरी,
तो सो और कौन, मनैं ढरकौहीं बानि है।
जगत के प्रान, ओछे बड़े सो समान घन,
आनन्द-निधान, सुखदान दुखियानि है।
जान उजियारे गुन मारे अन्त मोही प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे पीठि पहचानि है।
बिरह-बिथाहि मूरि, आँखिन मैं राखो पूरि,
धूरि तिन पायन की हा हा! नेकु आनि है।

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। संगीत तत्त्व के बोधक अनेक शब्द इसमें मिलते हैं जैसे—बीर पौन, गौन, बीरी, बानि, समान-घन, जान-उजियारे, मोही प्यारे, पीठि-पहचानि, आनन्द-निधान, हाला नैक, आनि आदि। इस पद की विशेषता इसकी वर्ण-संगति है। पूरा-का-पूरा पद लय से युक्त है, इसी से विरह-वेदना की अभिव्यक्ति अत्यन्त सफल हुई है। घनानन्द की भाषा शक्ति से प्रभावित होकर शुक्ल जी ने अपने इतिहास में लिखा है—"इनकी-सी विशुद्ध सरस और शक्तिशालिनी ब्रजभाषा लिखने में और कोई कवि समर्थ नहीं हुआ। विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता भी अपूर्ण है।" भाषा की मसृणता की दृष्टि से घनानन्द का कोई भी कवित्त उठाकर देखा जाय तो मधुरता के अतिरिक्त उसमें कुछ न मिलेगा। उनकी भाषा इतनी मधुर है, लगता है वेदना भी अपनी चरम-सीमा पर पहुँचकर उन्हें प्रिय हो उठी है, तभी तो उलाहना देते हुए कवि कहता है। अब मुझ गरीब की वह दशा क्यों कर रही हो—पहले तुम्हीं ने तो प्रेम करना सिखाया था, प्रेम का अमृत पिलाया था। अब यह अनीति क्यों—

क्यों हँसि हेरि लियो हियरा,
अरु क्यों हित के चित्त चाह बढ़ाई।
काहे को बोलि सुधा सने बैननि,
चैननि मैन-निसैन चढ़ाई॥
सो सुधि-मो हिय मैं घनआनंद,
सालति क्यों हूँ कढ़ै न कढ़ाई।
भीत सुजान अनीति की पाटी,
इतै पै न जानियै कौन पढ़ाई॥

यहाँ सम्पूर्ण पद्य में लय का तथा वर्ण-मैत्री का सौन्दर्य विद्यमान है। हँसि, हेरि, हर्यो, हियरा, हित—अनुप्रास का सौंदर्य सायास नहीं, अपितु घनानन्द की भाव-विह्वलता से अनायास ही झलक उठा है। शुक्ल जी के शब्दों में—

अलंकार

काव्य में अलंकारों का प्रयोग कथन में चारुता एवं भव्यता लाने के लिये होता है। संस्कृत साहित्य में इसकी विशद् परम्परा मिलती है और पूरा-का-पूरा अलंकार-

सम्प्रदाय ही है। वामन और दण्डी ने अलंकारों को महत्त्व देते हुए कहा—'सौंदर्यम्-लङ्कारा' तथा 'काव्य शोभाकरान् धर्मानलङ्कारा प्रचक्षते' कहा। रीतिकाल में कवियों ने अलंकारों को सर्वाधिक महत्त्व दिया। केशव कवि ने तो यहाँ तक कह दिया—

'जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिन न बिराजई कविता बनिता मित्त॥'

काव्य में अलंकारों के महत्त्व पर हर युग में भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार व्यक्त होते रहे हैं, फिर चाहे वह संस्कृत साहित्य का युग रहा हो या हिन्दी साहित्य का अथवा पाश्चात्य विद्वानों का अभिमत हो। पश्चिम में अलंकार को अभिव्यंजना का अभिन्न अंग माना गया है।

घनानन्द के काव्य का अलंकार की दृष्टि से विवेचन विश्लेषण किया जाय तो सबसे प्रमुख बात यह सामने आती है कि उन्होंने लगभग सभी अलंकारों का प्रयोग किया है, परन्तु अलंकार उनके काव्य में भावों को तीव्रता प्रदान करने के हेतु ही प्रयुक्त हुए हैं। कहीं पर भी अलंकार प्रदर्शन के लिए अलंकारों की योजना नहीं की गई। केशव के समान वे उनकी सजावट और प्रदर्शन करने के इच्छुक न थे। कहीं पर भी —"यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि भाषा पर जैसा अचूक अधिकार इनका था, वैसा और किसी कवि का नहीं। भाषा मानों इनके हृदय के साथ जुड़कर ऐसी वशवर्तिनी हो गई थी कि ये उसे अपनी अनूठी भावभंगिमा के साथ-साथ जिस रूप में चाहते थे, उस रूप में मोड़ सकते थे। इनके हृदय का योग पाकर भाषा को नूतन गतिविधि का अभ्यास हुआ और वह पहले से कहीं अधिक बलवती दिखाई पड़ी। जब आवश्यकता होती थी, तब ये उसे बँधी प्रणाली से हटाकर अपनी नयी प्रणाली पर ले जाते थे। भाषा की पूर्ण अर्जित शक्ति से ही काम न चला कर, इन्होंने उसे अपनी ओर से नयी शक्ति प्रदान की है। घनानन्द जी उन बिरले कवियों में से हैं, जो भाषा की व्यंजकता बढ़ाते हैं। अपनी भावनाओं के अनूठे रंग-रूप की व्यंजना के लिए भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करने वाला हिन्दी के पुराने कवियों में दूसरा नहीं हुआ। भाषा के लक्षक और व्यंजक बल की सीमा कहाँ तक है—इसकी पूरी परख इन्हीं को थी।"

उन्होंने कविता कामिनी को अलंकारों के बोझ से नहीं लादा। यह अलंकार उनकी कलात्मक उच्चता, प्रतिभा के परिचायक बनकर हमारे सामने आये हैं। घनानन्द कविता के सृजन के समय इस बात के प्रति पूर्ण सचेत थे, अतः अपने मत को उन्होंने स्पष्ट ही व्यक्त कर दिया, जिससे किसी भी उनके काव्य की आलोचना करते समय भ्रम न हो—

तीछन ईछन बान बखान सौं,
पैनी दसान लै सान चढ़ावत।
प्राननि प्यासे, मरे अति पानिप,
मायल घायल चोप चढ़ावत॥

यों घनआनंद छावत भावत,
जान संजीवन ओर तें आवत ।
लोग हैं लागि कवित्त बनावत,
मोहि तौ मेरे कवित्त बनावत ।।

उपर्युक्त कवित्त से घनानन्द की काव्य-दृष्टि एकदम साफ हो जाती है। उन्होंने जहाँ भी और जब भी कुछ कहना चाहा, वह सायास नहीं कहा, अपितु उनके हृदय की सहज भावाभिव्यक्ति सरल और निश्छल रूप में प्रकट हुई। "काव्य में अलंकारों के दो कार्य होते हैं - एक तो वे जो भावों का उत्कर्ष दिखाते हैं और दूसरे वस्तुओं के रूपानुभव, गुणानुभव और क्रियानुभव को तीव्रता प्रदान करते हैं।" अलंकार रस और भाव के अनुकूल हों, तभी उनसे काव्य में सरसता आती है। घनानन्द के काव्य में यह सरसता हमें चरम उत्कर्ष पर पहुँची दिखाई देती है। घनानन्द ने आचार्यों द्वारा निर्धारित दोनों प्रकारों के अलंकारों को अपनाया है—शब्दालंकार और अर्थालंकार। यों तो लगभग सभी अलंकार उनके काव्य में मिल जाते हैं, उन्होंने 'विरोधमूलक और साम्यमूलक' अलंकारों का प्रयोग अधिक किया है, परन्तु जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, यह पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए नहीं, अपितु भावों के उत्कर्ष-हेतु किया है।

शब्दालंकार

शब्दालंकारों का सम्बन्ध शब्द-शिल्प से है। विशेष शब्दों से यहाँ काव्य में सौन्दर्य लाने का प्रयत्न किया जाता है - वहाँ वह सौन्दर्य शब्दालंकारगत सौन्दर्य कहलाता है। घनानन्द के काव्य में निम्न शब्दालंकार प्रमुख रूप से प्रयुक्त हुए हैं—

अनुप्रास

अनुप्रास में वर्णों की आवृत्ति होती है। अतः यह अलंकार वर्ण-मैत्री के लिए प्रसिद्ध हैं। इससे काव्य में लालित्य की वृद्धि होती है। इसके पाँच भेद हैं—१. वृत्यानुप्रास, २. श्रुत्य अनुप्रास, ३. लाटानुप्रास, ४. छेकानुप्रास, ५. अन्त्यानुप्रास, घनानन्द के काव्य में अनुप्रास ने दोहरा कार्य किया है। एक तो वे काव्य-सौन्दर्य में सहायक हुए हैं और दूसरा संगीत की सृष्टि इनसे और अधिक सजीव हो गई है।

१. छेकानुप्रास

इसमें एक या अधिक वर्णों की दो बार आवृत्ति होती है—

मंजुल-बंजुल-पुंज-निकुंज अछेह छबीलो महा रस मेह तें।
द्योस में रैन सो चैन को ऐन, पै जोति जग्यौ जगि दंपति-देह-तें ।।

२. वृत्यानुप्रास

इसमें एक या अनेक वर्णों की आवृत्ति एक से अधिक बार होती है -

क्यों हँसि हेरि लियौ हियरा,
अरु क्यों हित के चित्त चाह बढ़ाई।

काहे को बोलि सुधासने बैननि,
चैननि मैन-निसैन चढ़ाई ।।
सो सुधि मो हिय मैं घनआनंद,
सालति क्यों हूँ कढ़ै न कढ़ाई ।
मीत सुजान अनीति की पाटी,
इतै पै न जानियै कौन पढ़ाई ।।

३. श्रुत्य अनुप्रास

जब ध्वनि-यंत्र के एक स्थान से उच्चरित होने वाले वर्णों की समानता होती है, जैसे—

मंगल मुकुट मिन मनोरथ-कल्पतरु,
उदार अति अद्भुत उमेद के ।
ललित लीला बलित, सम्पदा-संकुलित,
अतुल जय अमल जगबंद के ।।

४. अन्त्यानुप्रास

कंत रमैं उर-अंतर मैं सुलहै नहीं क्यों सुख-रासि निरंतर ।
दंत रहैं गहैं आंगुरी, ते जु वियोग के तेह तचे परतंतर ।
जो दुख देखति हौं घनआनंद रैन दिना बिन जान सुतंतर ।
जानैं वेई दिन-राति बखानै ते जाय परैं दिन-राति को अंतर ।

श्लेष

घनानन्द के काव्य में वर्णित प्रमुख अलंकारों में एक अलंकार श्लेष है। 'सुजान' शब्द और 'घनानन्द' शब्दों को प्राय: श्लिष्ट रूप में ही प्रयुक्त किया है —

(क) घनआनंद प्यारे सुजान सुनो,
जिहिं भांतिन हौं दुख सूल सहौं ।

(ख) घनआनंद जीवनदायक हौ,
कछु मेरियौ पीर हिय परसो ।

(घनानन्द—आनन्दघन और आनन्द के बादल, जीवन—जीवन और जल)

(ग) घनआनंद प्यारे सुजान सुनो, इत एक ते दूसरो आंक नहीं ।
तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटांक नहीं ।।

यमक

शब्दालंकारों में श्लेष और यमक का विशेष महत्त्व होता है। घनानन्द ने इनका खूब प्रयोग किया है ।

(क) जरि बरि धार हूँ न जाय हाय ऐसी बँस,
चित्त चढ़ी मूरति सुजान क्यों उतारियै।
कठिन कुवायँ आय घिरि हूँ आनंदघन,
रावरि बसाय तो बसाय न उजारियै।।

(ख) काहू कलपाय हैं सु कैसे कल पाय हैं।

वीप्सा

दुःखाधिक्य में विरही कवि एक ही भाव को व्यक्त करने के लिए एक शब्द का दो बार प्रयोग करता है, इससे प्रभाव में तीव्रता आ जाती है और अभिव्यक्ति में सौन्दर्य—

इतै पै रोष कै रसीली हियौ पौढ़ौ करौ,
तो हू न कहूँ ठौर जीबे हू को झगरौ चुक्यौ।
ऐसे सोच आँचनि आनंदघन सुख निधि,
लपट कढ़ै न नेकौ हा हा जात क्यौं फूक्यौ।।

पुनरुक्ति प्रकाश

भाव को संवेदनशील करने के लिये किसी शब्द की कई बार पुनरावृत्ति होती है। इस अलंकार का घनानन्द ने पर्याप्त प्रयोग किया है—

(क) जान प्यारे लागौ न गुहार तौ जुहार करि,
जूझिहै निकसि टेक गहैं पनधारे की।
हेत-खेत धूरि चूर-चूर ह्वै मिलैगो तब,
चलैगी कहानी घनआनंद तिहारे की।।

(ख) जहाँ ते पधारे मेरे नैनन ही पाँय धारे,
वारि ये बिचारे प्रान पंड-पंड पै मनो।

अर्थालंकार

घनानन्द ने शब्दालंकारों के समान अर्थालंकारों का प्रयोग अपने काव्य में किया है। अर्थालंकार—जैसा कि शब्द से ही स्पष्ट है अर्थ पर आधारित होते हैं, अर्थात् इनसे काव्य का सौन्दर्य द्विगुणित होता है—परन्तु व्याख्या करने के बाद। घनानन्द ने उपमा, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, प्रतीप, रूपक, विरोधाभास, सन्देह, निदर्शना, अपह्नुति, दीपक, दृष्टान्त, परिकरांकुर और असंगति आदि अर्थालंकारों का प्रयोग किया है। इनके प्रयोग से उनका काव्य कितना निखर गया है यह निम्न उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है—

उपमा

घनानन्द कवि थे, अतः भावप्रवण और कल्पनाप्रवण तो थे, साथ ही वे एक प्रेमी भी थे। अपनी प्रेमिका सुजान के रूप-सौन्दर्य के लिये जहाँ एक ओर उन्होंने

असंख्य उपमाएँ दी हैं, वहीं विरह की तीव्रता को अभिव्यक्त करने के लिये विभिन्न उपमानों को जुटाया है।

(क) सुनिरी सजनी रजनी की कथा इन नैन-चकोरन ज्यौं बितई।
मुख चंद सुजान सजीवन को लखि पाएँ मई कछु रीति नई।।
अभिलाषनि आतुरताई-घटा तब ही घनआनंद आनि छई।
सु बिहाति न जानि परी भ्रम सी कब ह्वै बिसवासिनि बीति गई।।

(ख) चातक लौं चाहै घनआनंद तिहारी ओर।

(ग) पीर की भीर अधीर भई, अँखियाँ दुखियाँ उमगीं झरना सी।

(घ) नेह भीज्यौ जीव, तऊ गुड़ी लौं उड़्यौ रहै।

उत्प्रेक्षा अलंकार

(क) लट लोल कपोल कलोल करै,
कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अंग अंग तरंग उठै दुति की,
परिहै मनो रूप अबै धर च्वै।।

(ख) बीच बीच मंजुल मरीचि-रुचि फलि फबी,
केलि समै उपमा लसति बिसे-बीस की।
मानो घनआनंद सिंगार रस सां सांवरी,
चिक में बिलोकति बहन रजनीस की।।

अपह्नुति अलंकार

(क) जारत अंग अनंग की आँचनि,
जोन्ह नहीं सु नई अगिलाई।

यथासंख्य अलंकार

बिछुरे मिले मीन पतंग दसा,
कहा ओ जिय की गति को परसै।

व्यतिरेक

(क) खंजन ऐसे कहा मन रंजन, मीनन लेखौ कहा रस ढार सो।
कंजनि लाज को लेस नहीं, मृग रूखे सने ये सनेह के सारसो।।
देखें अनदेखे तहाँ अटक्यौ आनंदघन,
ऐसी गति कहा कहौ चुम्बक और लोह की।

(ख) हीन भये जल मीन आधीन, कहा कछु मो अकुलानि समानै।
नीर सनेही को लाय कलंक, निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।।

निदर्शना

सुधा तें स्रवत विष फूल मैं जनत सूल,
तम उगिलत चन्दा, भई नई रीति है।

जल जारै अंग, और राग करै सुर भंग,
सम्पति विपति पारै, बड़ी विपरीत है ।।

असंगति

नैनन में लागै जाय, जागै सु करेजे बीच,
या बस ह्वै जीव धीर होत लोट-पोट है ।

तद्गुण

बसन दमक फैलि हियें मोतीमाल होति ।

प्रतीप

मीन-कंज-खंजन-कुरंग-मान-भंग करैं,
सोचे घनआनंद खुले संकोच सों मढ़े ।
पैने नैन तेरे से न हेरे मैं अनेरे कहूँ,
छाती बड़े काती लिये छाती पै रहैं चढ़े ।।

दृष्टान्त अलंकार

चन्द चकोर की चाह घटै घन—
आनंद स्वाति पपीहा को धावै ।
त्यों तसरेन की ऐन बसें रवि,
मीन पै दीन ह्वै सागर आवै ।।

अतिशयोक्ति अलंकार

पाती-मधि छाती-छत लिखि न लिखाये नहिं,
काती लै विरह घाती कीने जैसे हाल हैं ।
आंगुरी बहकि नहीं पांगुरी किलकि होती,
ताती राती दसनि के जाल ज्वाल माल हैं ।

अर्थातरन्यास

मोहिं तुम एक तुम्हें मों सम अनेक आहिं,
कहा कछु चन्दनि चकोरन की कमी है ।

अनन्वय

मिहदी लगी पायनि रंग लहै सुठि सोंधो सुअंगनि संग बसै ।
तरुनाइयै कोक पढ़ै सुघराई सिखावति है रसिकाई रसै ।।
घनआनंद रूप अनूप भरी हित फंदनि मैं गुन-ग्राम गसै ।
सब भांति सुजान समान न आन कहा कहौं आपु ते आपु लसै ।।

परिकरांकुर

परकाजहिं देह को धारि फिरौ
परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ ।

विभावना

नीर भीज्यौ जीव तऊ गुड़ी लौं उड़्यौ रहै ।

रूपक अलंकार

घनानन्द ने लगभग सभी शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों का प्रयोग किया है, परन्तु अर्थालंकारों में दो अलंकार उन्हें विशेष रूप से प्रिय थे —रूपक अलंकार और विरोधाभास। रूपक अलंकार के समस्त भेदाभेदों को असाधारण कौशल से प्रस्तुत किया है। सांगरूपकों की अभिव्यक्ति में सर्वाधिक सफल रहे हैं। उनमें कृत्रिमता और श्रमसाध्यता का लेश नहीं है। वे कवि के हृदय से एकदम उच्छलित हुए हैं—

बिरहा रवि घट व्योम तच्यौ
बिजुरी सी खिवै इक लौं छतियाँ।
हिय सागर तें दृग मेघ भरे
उघरे बरसैं दिन औ रतियाँ॥
घनआनंद जान अनोखी दसा,
न लखौं दई कैसे लिखौं पतियाँ।
नित सावन पीठि सु बैठक मैं,
टपकै बरुनी तिहि ओलतियाँ॥

एक अन्य उदाहरण

नेह से मोय संजोय धरी हिय दीप,
दसा जु भरी अति आरति।
रूप उज्यारे अजू ब्रजमोहन,
सौंहनि आवनि ओर निहारति॥
रावरी आरति बावरी लौं,
घनआनंद भूलि वियोग निवारति।
भावना-थार हुलास के हाथनि,
हित-मूरति हेरि उतारति॥

विरोधाभास अलंकार

विरोधाभास घनानंद का सबसे प्रिय अलंकार है। शायद ही कोई ऐसा कवित्त हो, जिसमें इस अलंकार का प्रयोग न किया गया हो। उक्ति वैषम्य उनकी प्रकृति की सहज देन है। डॉ० कृष्णचन्द वर्मा के शब्दों में "स्पष्ट ही उनके काव्य में विरोध ने जिस आलंकारिक सौन्दर्य की सृष्टि की है, उसका मूल उत्स उनका हृदय, उनके विचार उनका जीवन है, जो विषमता का कोष था। जीवन विषम परिस्थितियों और मनः-स्थितियों का केन्द्र हो गया था, इसलिए अपने प्रेम को बिना बाँकपन के, बिना स्थिति वैषम्य के निदर्शन के और कुछ नहीं तो बिना शब्द विरोध के वे व्यक्त ही नहीं कर

पाते थे। यही कारण है कि विरोधाभास ही उनकी आलंकारिक सौन्दर्य चेतना का केन्द्र-बिन्दु हो गया है।" घनानन्द के काव्य में इस विरोध मूलक चमत्कार का कारण उनके जीवन की पृष्ठभूमि है, परन्तु जिस कौशल से वह उनके काव्य में चित्रित हुआ है, उसे उनका अप्रतिम कला-कौशल ही कहा जायगा। उन्होंने प्रेम किया, असंख्य प्रेमियों के समान उनका हृदय भी टूटा, लेकिन प्रेम की पीर को उन जैसी अभिव्यक्ति सम्भवतः कहीं नहीं मिली। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "प्रेम की अनिर्वचनीयता का आभास घनानन्द ने विरोधाभासों द्वारा दिया है। उनके विरोधमूलक वैचित्र्य की प्रवृत्ति का कारण यही समझना चाहिए। × × × विरोधमूलक वैचित्र्य भी जगह-जगह बहुत सुन्दर मिलता है।" 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में कुछ उदाहरण भी उन्होंने दिये हैं जो इस प्रकार हैं—

(क) झूठ की सचाई छाक्यो, त्यों हित कचाई पाक्यो,
ताके गुन गान घनआनंद कहा गनौ।

(ख) उजरनि बसी है हमारी अँखियानि देखो,
सुबस सुदेस जहाँ रावरे बसत हो।

(ग) गति सुनि हारि देखि थकनि मैं चलि जाति,
थिर चर दसा कैसी ढकी उघरति है।

घनानन्द के काव्य में विरोधाभास की प्रवृत्ति की बहुलता को देखते हुए आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने लिखा है—" 'विरोधाभास' के अधिक प्रयोग से घनानन्द की सारी रचना भरी पड़ी है। साहसपूर्वक यह कहा जा सकता है कि जिस पुस्तक में कहीं भी यह प्रवृत्ति दिखाई न दे, उसे बेखटके घनानन्द की कृति से पृथक किया जा सकता है और जहाँ यह प्रवृत्ति दिखाई दे, उसे निःसंकोच इनकी कृति घोषित किया जा सकता है।"

विरोधाभास अलंकार के कुछ प्रसिद्ध उदाहरण दृष्टव्य हैं -

(क) कहौ कछु और, करौ कछु और, गहौ कछु और, लखावत औरे।
निलौ सब रंग कहूँ नहीं संग, तिहारी तरंग तकें मति बौरे।

(ख) रोवनि आँसू न नैननि देखें अरु,
मौन मैं व्याकुल प्रान पुकारे।

(ग) हाय बिसासी सनेह सों रूखे,
रुखाइ सो हूँ चिकने अति सोहौ।

(घ) पौन सो जागति आग सुनी ही पै,
पानी सो लागति आँखिन देखी।

(च) - देखिये दसा असाध अँखियाँ निपेटिनी की,
भसमी बिथा पै नित लंघन करति है।

(छ) मति दौरि थकी न लहै ठिक ठौर,
अमोही के मोह मिठास ठगी।

घनानन्द का छन्द विधान

रीतिकाल का समय साहित्य रचना की दृष्टि से छन्द-बद्ध काल रहा है। राजा महाराजा रसिक तो थे ही, अतः कविगण अपने आश्रयदाता की रसिकता की वृद्धि के लिए गाकर, तान व लय से युक्त अपनी रचनाओं का पाठ किया करते थे। रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि घनानन्द काव्य-रचना की इसी छन्दोबद्ध सीमा में आते हैं। वे कवि होने के साथ-साथ एक अच्छे संगीतकार भी थे, अतः उनकी रचनाएँ छन्द विधान से पूर्णतः सम्पृक्त हैं। काव्य में चारुता लाने के लिए तथा उसे भव्य बनाने में छन्द का योग सर्वाधिक होता है। काव्य को सहृदय संवेद्य बनाने में भी छन्द का बहुत हाथ होता है। यही कारण है कि छन्दबद्ध कविताएँ जितना प्रभाव सुनने वाले के हृदय पर जमा सकती हैं, छन्द-विहीन नहीं। घनान्द का सम्पूर्ण काव्य छन्दोबद्ध है। उन्होंने अधिकतर कवित्त का प्रयोग किया है। यह भी कहा जा सकता है उनका प्रिय छन्द ही कवित्त है और 'घनानन्द-कवित्त' नाम उनकी इस छन्द विशेष के प्रति रुचि को सहज ही प्रकट करता है। कवित्त के मुख्यतः दो भेद होते हैं—१. मनहर २. घनाक्षरी। कवित्त के प्रयोग के साथ-साथ घनानन्द ने जिन विविध छन्दों का प्रयोग किया है, वे हैं—सवैया, त्रिलोकी, ताटंक, निसानी, सुमेरु, त्रिभंगी, शोभन, दोहा, चौपाई, दुर्मिल, मुक्तहरा, मतगयंद, अरसात इत्यादि उपर्युक्त सभी छन्दों को उन्होंने लिया, लेकिन जैसा कि पहले कहा जा चुका है मुख्यता इनमें कवित्त की ओर उसके पश्चात् सवैया छन्द की ही है। घनानन्द का सवैया छन्द तो हिन्दी साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्ध है। इधर कवित्त छन्द वीर-रस के अधिक उपयुक्त है, परन्तु घनानन्द का कौशल देखिए, इस छन्द में उन्होंने संयोग और वियोग शृंगार की मार्मिक अभिव्यक्ति की है।

सवैया

सवैया छन्द का प्रयोग घनानन्द ने अनेक प्रकार से किया है। इस छन्द के प्रमुख भेदों में जो उनके काव्य में मिलते हैं, वे इस प्रकार हैं—

किरीट सवैया

इसमें केवल आठ भगण होते हैं और कुल चौबीस वर्ण होते हैं। इसका प्रयोग घनानन्द ने अत्यन्त सुन्दर किया है—

SII SII SII SII SII SII SII SII
मोहन सोहन जोहन की लगि यै राह आँखिन के उर आरति।

दुर्मिल सवैया

इसमें आठ सगण होते हैं और कुल चौबीस वर्ण होते हैं—

ISI ISI ISI I SI I IS IIS II S I IS
पहिलें घनआ नन्द सी चि सुजीं न कहीं बतियाँ अति प्या र पगी।

मतगयन्द सवैया

इसमें सात भगण और अन्त में दो गुरु होते हैं तथा कुल वर्ण तेईस होते है। इस छन्द का प्रयोग भी घनानन्द ने सुन्दरता और सफलता के साथ किया है—

SII S II SII SI I S II S II SII S S
रैनदि ना घुटि बोकर प्रान झ रें अँखि याँ दुखि याँ झर ना सी

अरसात सवैया

इसमें भगण और अन्त में एक रगण होता है तथा कुल वर्ण चौबीस होते हैं। जैसे—

रावरे रूप की रीति अनूप, नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारियै।
त्यों इन आँखिन बानि अनोखी, अघानि कहूँ नहीं आनि तिहारियै।
एक ही जीव हुतो सो वारयो, सुजान सकोच औ सोच सहारियै।

SI I SII SII SII SII SII SII SII
रोकि र है न द है घन आनन्द बावरी रीझ के हाथनि हारियै

मुक्तहरा सवैया

इसमें आठ जगण होते हैं और कुल मिलाकर चौबीस वर्ण होते हैं। घनानन्द के काव्य में इस छन्द का प्रयोग भी बहुत सुन्दर हुआ है—

IS I ISI ISI ISI ISI ISI ISI ISI
नई सु धि अंग भई म तिपंग नई क छु बात ज ताव ति हो न

सवैया के समान ही जो दूसरा छन्द उनके काव्य में प्रमुख रूप से मिलता है, वह कवित्त है। कवित्त ऐसा छन्द है, जिसका प्रयोग विशेषतया या तो वीर-रस के लिए उत्साहवर्द्धन हेतु होता है या फिर मादक भावों की अभिव्यक्ति के लिए। कवित्त के लिए भाव समृद्धि विशेष रूप से मादक होनी चाहिए, तभी यह छन्द सफल हो पाता है। घनानन्द के कवित्तों के लिए श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'घनानन्द-कवित्त' नाम दिया है और उसका प्रथम छन्द 'मनहरण कवित्त' है। मिश्र जी ने लिखा है—"कवित्त शब्द का प्रयोग व्यापक है। इस संग्रह का नाम 'घनानन्द कवित्त' है।"

मनहरण कवित्त

इसके प्रत्येक चरण में १६, १५ के विश्राम से ३१ वर्ण होते हैं। अन्तिम अर्थात् इकत्तीसवाँ वर्ण सदा गुरु होता है। इसे घनाक्षरी भी कहते हैं—

> लाजनि लपेटी चितवनि भेद भाय भरी,
> लसति ललित लोल चख तिरछनि मैं
> छबि के सदन गोरो बदन, रुचिर भाल
> रस निचुरत मृदु मीठी मुसक्यानि मैं।
> दसन दमक फैलि हियें मोति माल होति,
> पिय सों लड़कि प्रेम-पगी बतरानि मैं।

घनाक्षरी कवित्त

इसमें १६, १६ वर्णों के विराम से प्रत्येक चरण में ३२ वर्ण होते हैं और अन्त में लघु आता है। यद्यपि यह छन्द इतना सफल नहीं, जितना कि पहला है, किन्तु फिर भी गति, यति का विधान नियमित है—

> जहाँ जों सन्देसों ताको बड़ोई अन्देसो आरि,
> म्हालें मन वारे की कहै अब को सुनै सु कौन।
> निधरक जा अलबेले निखरक और,
> दुखिया कहै या कहा तहाँ की उचित हो न॥

१६, १६, वर्ण, अन्त में लघु

ताटंक

इस छन्द में १६ और १४ की यति से प्रत्येक चरण में ३० मात्राएँ होती हैं। घनानन्द ने 'इश्कलता' में इसी छन्द का प्रयोग किया है—

> नन्द महर या कुँवर कन्हैया। मैंडा जीवन जाती है।
> बिसरै नहीं रैनदिन जी से। प्यारा प्रीतम प्रानी है।

१६ + १४ मात्राएं—३

सोरठा

यह अर्धसम मात्रिक छन्द है। इसके पहले और तीसरे चरण तथा दूसरे और चौथे चरण समान मात्रा के होते हैं। यदि सभी चरण समान हों तो सम छन्द, दो दो चरण समान हों तो अर्धसम छन्द होता है।

> I I S I I IISI IS S S I I S I II
> घनआनंद रसऐन कहौ कृपानिधि कौन हित।
> III ISS SI IIS S IIS IS
> मरत पपीहा नैन, बरसौ पै बरसौ नहीं॥

दोहा

इसमें प्रथम और तीसरे चरण में १३-१३ और दूसरे और चौथे चरण ११-११ मात्राएँ होती हैं। घनानन्द ने दोहा छन्द का प्रयोग भी खूब किया है—

१३— SS SI ISI S IS ISS SI =११

मोही मोह जनाय कै, अहे अमोही जोहि।
सो ही मोही सौं कठिन, क्यौं करि सोही तोही।

१३— S S SS S III IS II SS SS =११

चौपाई

इसके प्रत्येक चरण में १६-१६ मात्राएँ होती हैं। घनानन्द ने इस छन्द का प्रयोग अधिकतर भक्ति की रचनाओं में किया है, जैसे 'गोकुल-गीत', 'वृषभानु पुर, सुषमा-वर्णन ब्रज-स्वरूप इत्यदि।

II IIS II II II SS
जब लखियै तब तब मन भायो।
II SII SSS SS
ब्रज भीजन चौमासो आयो॥

छप्पय

छप्पय छन्द छ. चरणों का होता है। उसमें प्रथम चार चरण रोला के तथा अन्तिम दो उल्लाल छन्द के होते हैं। इस प्रकार छप्पय छन्द में कुछ १५६ मात्राएँ होती हैं—

महो दूध सम गनै हंस बक भेद न जानै।
कोकिल-काक न ज्ञान कांच-मनि एक प्रमानै।
चन्दन ढाक समान रांग-रूपो सम तोल।
बिन बिबेक गुन-दोष मढ़-कवि ब्योनि न बोलै।
प्रेम नेम हित चतुरई, जे न बिचारत नेकु मन।
सपनेहु न बिलंबियै, छिन तिन ढिग आनंदघन।

निसानी

इसमें १३ और १० की यति से प्रत्येक चरण में २३ मात्राएँ होती हैं। इसके अन्त में दो गुरु होते हैं। इसे उपमान छन्द भी कहते हैं। घनानन्द ने इसका प्रयोग इश्कलता में किया है—

क्या कहियै ब्रज मोहना। तू मानै नाहीं। =१३+१०=२३
तू ही जानेगा अबै। अपने दिल मांही। =१३+१०=२३
अन्त में दो गुरु।

बंगाली—बिलावला छन्द

कहाँ अब कोन सों बिरहा-कहानी।
न जानी हो न जानी हो न जानी॥
लिखौं कैसें पियारे प्रेम-पाती।
लगै अँसुवन झरी है टूक छाती॥

सुमेरु

इसमें १२ और ७ अथवा १० और ९ की यति पर प्रत्येक चरण में १९ मात्राएँ होती हैं। विरह भाव के लिए सर्वाधिक उपयुक्त छन्द सुमेरु है वियोग-बेलि में कवि ने इसका प्रयोग किया है —

सनेही हो तुम्हें सब गाँव जानें— $१२+७=१९$
सबै मिलि रावरे। गुन को बखानें— $१०+९=१९$

पद

घनानन्द कवि होने के साथ-साथ एक अच्छे संगीतकार भी थे। संगीत का सूक्ष्म ज्ञान होने के कारण पदावली में चुन-चुनकर शब्द रखे हैं और उनकी कोमलता का ध्यान राग-रागनियों के समान ही रखा है। यह पद विभिन्न प्रकार के रागों में निबद्ध हैं, जैसे मल्हार राग, राग टोढ़ी, बिलावल, रामकली, सारंग, गोरी, गन्धार आदि। मल्हार राग का एक उदाहरण दृष्टव्य है। यह राग वर्षा-कालीन वातावरण को मार्मिक रूप से अभिव्यक्त करने में समर्थ है—

बदरा उनै आए बरसन लागे रस हो रस।
ब्रजमोहन संग हौं बन भीजी रीझि परी उनके बस।
अन्तर निपट भिजे घर पठई रुकत नहीं हारी बहुत कस।
उघरि घुरोंगी आनंदघन सों अब सब तजि सजि पटवस॥

मुहावरे और लोकोक्तियाँ

जब किसी बात को सीधे ढंग से न कहकर सांकेतिक शब्दावली में कहा जाय, वहाँ भाषा का रूप लाक्षणिक हो जाता है। इस प्रकार किसी भी बात कहने के दो प्रभाव होते हैं प्रथम उसमें रोचकता आ जाती है और दूसरा कथ्य को बल मिलता है।

घनानन्द की काव्य भाषा का अवलोकन करने से पता चलता है कि उन्होंने अपने कवित्तों में जमकर मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। वैसे उनकी काव्य शैली का मूल स्रोत अरबी-फारसी रहा है। फिर भी घनानन्द द्वारा प्रयुक्त मुहावरे अरबी-फारसी अभिव्यंजना शैली से बहुत दूर हैं। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के शब्दों में—"घनानन्द ने मुहावरे के प्रयोग की पद्धति निश्चय ही फारसी की प्रेरणा से ग्रहण की है। पर फारसी के मुहावरों की योजना नहीं की, जैसा उर्दू वालों ने

किया ।" कवि के सम्पूर्ण काव्य का सौन्दर्य लक्षणा के चमत्कार के कारण है - ऐसा अधिकतर आलोचकों का विचार है, परन्तु यह बात सही होते हुए भी पूर्ण रूप से उनके काव्य पर लागू नहीं होती । लक्षणा के मर्म को घनानन्द पहचानते थे, लेकिन मुहावरे और लोकोक्तियों के सफल प्रयोग से लक्षणा का सौन्दर्य द्विगुणित हो उठा है ।

फारसी व उर्दू में जिन मुहावरों का प्रयोग किया जाता है, दरबारी वातावरण के प्रभाव वश वे उससे अछूते न रह सके । कहीं-कहीं तो फारसी के मुहावरों का हिन्दी अनुवाद मात्र करके रख दिया है । परन्तु इससे उनकी काव्य प्रतिभा पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता । आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शब्दों में—'घनानन्द ने हिन्दी मुहावरों का प्रयोग करके, उसके चलते मुहावरों का विनियोग करके जो चमत्कार उत्पन्न किया है, साथ ही जिस भावना तक सहृदय को पहुँचाया है, वह स्थान स्थान पर दर्शनीय है —

रावरे पेट की बूझि परै नहीं रीझि पचाय के डोलत भूखें"

इस एक ही उदाहरण से उनके प्रयोग की विशेषता स्पष्ट हो जायगी ।" श्री द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने भी कुछ इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं—"घनानन्द की भाषा को सुसज्जित करने में विविध मुहावरों का बड़ा हाथ रहा है । घनानन्द मुहावरों के प्रयोग में अत्यन्त निपुण हैं और उन्होंने कविता को सजीव एवं मार्मिक बनाने के लिए विविध प्रकार के मुहावरों को बड़ी तत्परता के साथ अपनाया है, जिनमें उक्ति सौन्दर्य के साथ-साथ अर्थ-गाम्भीर्य भी भरा हुआ है ।"

घनानन्द ने लोकक्तियों की अपेक्षा मुहावरों का प्रयोग अधिक किया है । कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

१ वह रूप की रासि लखि तब तें सखि
 आँखिन मैं हटतार भई ।

२. रूप रस चाखि, आँखें मधुमाखी ह्वै गई ।

३. रैन बिना घुटिबो करै प्रान, झरैं अँखियाँ दुखिया झरना सीं ।

४. रस प्याय के प्यास बढ़ायकै आस,
 बिसास में यौं बिस घोरियै जू ।

५. तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला,
 मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं ।

६. आँखिन मांझ सांझ सी फूली ।

७. दृग छाकत हैं छवि ताकत ही ।

८. जब तें तुम आवनि औध बदी,
 तब से अँखियाँ मग मापति हैं ।

९. बवरा बरसै ऋतु मैं घिरि कै,
१०. चातक रे घातक ह्वै तू हू कान फोरि लै।
११. बिननि के फेर मोहि तुम मन फेरि डारयो।
१२. घर कौं उजार कै बसन बन जाय है।
१३. उधरि नीचे हैं लोक लाज सों बचे हैं।
१४. सुनि है कि नाहीं यह प्रकट कहावत जू,
काहू कलपाई है सु कैसे कल पाइ है।
१५. फूटि-फूटि टूक-टूक ह्वै कै उड़ि जाय हियो।
१६. तैं तो आनाकानी ही सों, बांध्यौ बीठि तार है।
१७. झूठ की सचाई छाक्यौं, त्यौं हित कचाई पाक्यौ।

लोकोक्तियाँ

१. आगे न विचारयो अब पाछे पछताय कहा।
२. जों दुख देखति हो घनआनंद, रैन दिना बिन जान सुतन्तर।
जाने बेई दिन राति, बखानैं ते जाय दिन राति को अन्तर ॥
३. पौन सो जागति आगि सुनी ही पै, पानी सो लागति आँखिन देखी।
४. अब तो सब सीस चढ़ाय लई,
जु कछु मन भाई सु कीजिये जू।
५. सुनि है कि नाहीं, यह प्रकट कहावति जू,
काहू कलपाय हैं सु कलपाय है।
६. रुई दिये रहौं गे कहां लौ बहराइबे की,
कबहूँ ते मेरियै पुकार कान खोलि लै।
७. करौं किंत वैत ओर रहौं तो लहो न ठोर,
घर को उजारि कै बसत बन जोय है।
८. फेरियै क्यौं दुहूँ हाथ सकोरियै जो बिधना घर बैठे दयो बित्त।
९. भीति की दौरनि खोरनि है,
सठता हठ औरनि समझै बिन।

उपसंहार

घनानन्द के काव्य के विभिन्न आयामों के अन्वेषण के बाद हम उसके काव्य का मूल्यांकन करने की स्थिति में आ जाते हैं। घनानन्द का काव्य अपने गुणों के कारण इतिहास में विशिष्ट स्थान रखता है, लेकिन उसके काव्य-दोषों की चर्चा किए बिना उसका सही मूल्यांकन भी सम्भव नहीं हो सकता।

काव्य-दोषों में पुनरावृत्ति घनानन्द के काव्य का सबसे बड़ा दोष है, एक ही भाव को बार-बार कहना चुभने लगता है। हीनोपमा तथा दूरान्वय अन्य दोष हैं। कहीं-कहीं लयभंग भी हुई है। जैसे

'जान परी जन प्यारी निकाई की निधि है।'

इस पंक्ति में 'निकाई की निधि है' में लयभंग दोष विद्यमान है। घनानन्द सहज अभिव्यक्ति के लिए प्रसिद्ध हैं, लेकिन कहीं-कहीं क्लिष्ट अर्थ वाली पंक्तियों अथवा पदों में क्लिष्टार्थ दोष आ गया है। उदाहरण के लिए—

सर्म के सरूप को जथराथ है बोध जाति,
आए सो हरष औ विषादइ न गत को।
प्यारी घनआनन्द सुजान छायो आँखिन मैं,
रस छाके ताके वाहि ठगिया ठगत को।
ताही न्यारो मिल्यो जो बिचारो सो तौ ताहू मधि,
ताहि रंग ढंग रागै सुमन पगत को।

इसी कवित्त में आगे भी लिखा है—

ऐसी दसा भाग जाग्यो
जागैं जो जगाय भेंटैं।
प्रेम में जगत जिहि,
खेम मैं भगत को॥

उनकी कविता में न्यून पदत्व तथा च्युत संस्कृति आदि दोष भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं।

अश्लीलता उनके काव्य का एक बड़ा दोष माना जाता है, लेकिन साहित्यिक दृष्टि से कुछ भी अश्लील नहीं होता। अश्लील होती है पढ़ने या देखने वाले की दृष्टि। इसलिए हम अश्लीलता के आरोप या दोष को स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि घनानन्द के काव्य की मधुर कल्पनाओं को अश्लील कहना उनके साथ अन्याय लगता है—

दोष विवेचन के उपरान्त उनके काव्य का मूल्यांकन हो सकता है। घनानन्द के सम्पूर्ण काव्य के आधार हैं प्रेम तथा भक्ति। लेकिन उनके भक्ति-भाव पर उनका कवि रूप हावी है। इसलिए वे भक्त होने से पहले एक कवि हैं। प्रेम की सूक्ष्म अभिव्यंजनाओं के कवि, प्रेम की मधुर कल्पनाओं के कवि, उनका भक्ति भाव भी सूर की दासता नहीं, बल्कि प्रेम से परिचालित है। सूर के भक्ति भाव की अपेक्षा घनानन्द का भक्ति भाव अधिक उन्मुक्त है, लेकिन व्यापकता की दृष्टि से वे सूर से बहुत पीछे पड़ते हैं इसी प्रकार तुलसी के भक्ति-भाव के सामने भी घनानन्द का भक्ति भाव कम व्यापक है। सूर और तुलसी दोनों ही आराधना भाव से अनुप्रेरित हैं, जबकि घनानन्द अभिभूत होकर भक्ति करने की क्षमता जुटा पाते हैं।

शृंगार-रचना में उनकी तुलना विद्यापति से की जा सकती है। विद्यापति की शृंगारिक अभिव्यंजना अधिक मांसल, स्थूल और वासनापरक है, जबकि घनानन्द के शृंगार का आधार शुद्ध भावात्मक और प्रेम की पीर से युक्त है।

अपने समकालीन कवियों जैसे केशव, बिहारी, मतिराम और भिखारीदास की तुलना में घनानन्द का काव्य अधिक पैना है। वे रीतिकालीन अन्य कवियों के शास्त्र-बद्ध होकर लिखने की अपेक्षा मुक्त-भाव से लिखना अधिक पसन्द करते थे। उन. शास्त्रों के लक्षणों, नायक-नायिका भेद आदि का कमाल केशव आदि कवियों से भले ही कम है, लेकिन उनकी प्रतिभा का जो रूप प्रेम की सशक्त अभिव्यंजना में उभरा है, उसका दावेदार सम्भवतः और कोई भी रीतिकालीन कवि नहीं हो सकता।

उनके काव्य-शिल्प में मुहावरे, लोकोक्तियों आदि का जिक्र हम कर ही चुके हैं। उनका सटीक प्रयोग कविता को निखारता है। विरोधाभास उत्पन्न करके कविता की धार तेज की है और लक्षणा का प्रयोग घनानन्द के काव्य का अन्यतम वैशिष्ट्य है। घनानन्द कवि-परम्परा में सूर से सर्वाधिक प्रभावित लगते हैं। विद्यापति के प्रभाव से भी वे बच नहीं पाए, अपने उत्तरवर्ती कवियों को तो उन्होंने प्रभावित किया ही है, उनकी कविता रसिकों के लिए आज भी एक क्रेज है। ब्रजनाथ ने घनानन्द के काव्य में जो कहा है, वह अत्यन्त सटीक है और उसका यहाँ उल्लेख करना प्रासंगिक लगता है—

बिनती कर जोरि कै बात कहौं,
जो सुनौ मन कान है देत सौं जू।

कविता घनआनन्द की न सुनो,
पहचान नहीं उहि खेत सों जू।
जू पढ़े बिन हूं रह्यो न परें,
तो पढ़ो चित्त मैं करि चेत सों जू।
रस-स्वादहि पाय विषाद बहाय,
रहो रमि कै इहि नेत सों जू।

किसी काव्य-रचना की सबसे बड़ी कसौटी शास्त्र नहीं, समय होता है। समय काव्य का मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन करता है। सैकड़ों साल गुजरने के बाद भी कविता जिन्दा रहती है, रसिकों को आह्लादित करती है, उनके भावों का उन्मेष भी है और निरन्तर बदलते युगों के साथ नए आयाम खोलती है, वस्तुत. वही कविता कविता है और वही कवि जैनुइन कवि है। इस दृष्टि से घनानन्द आज भी ताजा लगते हैं, भाषा भले ही बदल गयी है, स्थितियाँ भी बदली है, परिवेश बदला है, लेकिन जीवन के मूल भाव (प्रेम आदि) आज भी वही हैं। वही कविता के साथ सीधे जुड़ते हैं। घनानन्द की कविता आज भी प्रेमी हृदय के साथ जुड़ती है, उसके दु:ख-सुख की राजदार बनती है। कहीं रुलाती है, कहीं सहलाती है और कहीं रोमांच पैदा करती है। उनकी कविता जिन्दा है, लगातार नए अर्थ देती है। इसलिए हम कह सकते हैं कि घनानन्द अपने समय के एक सशक्त और समर्थ कवि हुए हैं और साहित्य के इतिहास में उनका रचना-संसार पूरी जगमगाहट के साथ विद्यमान है।